दिनकर एवं माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय चेतना का तुलनात्मक अध्ययन

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल. उपाधि के लिए प्रस्तुत)
शोध-प्रबन्ध

★

प्रस्तुतकर्त्री
(श्रीमती) रेखा श्रीवास्तव

★

निर्देशक
डा० प्रेमकान्त टण्डन
रीडर, हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

★

हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

सन् १९९४

::=- भूमिका -=::

हिन्दी के प्राय: सभी समर्थ आलोचकों ने दिनकर के काव्यों को राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक काव्य धारा के सन्दर्भ में ही देखा है और दिनकर को राष्ट्रीय धारा का प्रमुख कवि स्वीकार किया है । यद्यपि दिनकर ने उर्वशी जैसी काम एवं सौन्दर्य चेतना से अनुप्राणित सशक्त रचना भी हिन्दी साहित्य को दी है, तदपि उनका वास्तविक रूप 'कुरूक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'रेणुका', 'हुंकार' जैसे राष्ट्रीय विचार धारा के काव्यों के माध्यम से ही व्यक्त हुआ है । चक्रवाल की भूमि-का में कवि ने स्वीकार किया है कि राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी भावनाओं के प्रवाह में उनका सारा अस्तित्व समाज और राष्ट्र की अनुभूतियों के आधीन हो गया । दिनकर-साहित्य के समग्र अनुशीलन से यही स्पष्ट होता है कि अन्य भावनाओं के साथ राष्ट्रीय भावना ही कवि के कवि-कर्म की प्रधान भावना रही ।

युगचेता दिनकर जी की काव्य-कृतियों पर समीक्षात्मक साहित्य पर्याप्त मात्रा में लिखा गया है । इसमें कहीं उनकी काव्य कृतियों का विवरणात्मक परिचय दिया गया है तो कहीं उनके व्यक्तित्व को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है । अनेक समीक्षकों ने दिनकर की काव्य कृतियों का काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से विवेचन किया है । दिनकर जी की काव्यभाषा का विश्लेषण का भी प्रयास हुआ है । दिनकर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का पुनर्विचार तथा काव्य-कला की कसौटी पर उनका पुन-मूल्यांकन भी किया गया है ।

इन सब के पश्चात 'जन कवि दिनकर' 'दिग्भ्रमित कवि दिनकर' आनन्द अनेक छोटे-बड़े आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकट हुए हैं और किसी ने कवि के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनकी प्रशस्ति की है तो किसी ने दिग्भ्रमित कहकर उनकी कटु आलोचना की है। परन्तु उनके काव्य सृजन के प्रबल पक्ष राष्ट्रीयता का विवेचन जिस मात्रा में होना चाहिए था उतना अभी नहीं हो पाया। मैंने अपने शोध प्रबन्ध में दिनकर की राष्ट्रीय भावना को विशेष रूप से उद्घाटित करते हुए उन्हें राष्ट्र कवि के रूप में ही देखने-परखने का प्रयास किया है।

दिनकर जी के पूर्व मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सोहन लाल द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवियों ने ओजपूर्ण रचनाएं की है। परन्तु दिनकर जी की विशेषता यह है कि उन्होंने अपने क्रान्ति परक विचारों में बौद्धिकता का पुट देकर उन्हें जनमानस में संप्रेषित करते हुए राष्ट्रीयता को एक विशिष्ट व्यापकता एवं उदात्तता प्रदान की। दिनकर की इसी युगानुकूल उदात्त राष्ट्रीय भावना का समग्र विशद् अनुशीलन ही मेरा उद्देश्य रहा है। मेरे विचार से दिनकर जी की राष्ट्रीयता की इतिहास प्रकारांतर से राष्ट्रीय जीवन का इतिहास है। 'राष्ट्र सर्वोपरि है' इस उदात्त भावना से जनमानस को उत्प्रेरित करके उसे राष्ट्रीय धरातल पर पहुँचाने का श्रेष्ठतम सफल कार्य दिनकर ने किया है।

राष्ट्र देवता के चरणों में समर्पित हो शत-शत भावों में अध्यात्मिक अनुभूतियों को मुखरित करने वाले तथा विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से जन-जन का जीवन अभिव्यक्त करने वाले हिन्दी साहित्य के मानस मन्दिर में पं० माखन लाल चतुर्वेदी का व्यक्तित्व अत्यन्त ओजस्वी एवं प्रकाशमान रहा है उनका जीवन अथ से इति तक राष्ट्रीयता से परिस्फूर्त रहा है। यद्यपि वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे, किन्तु गद्य-पद्य, नाटक, निबन्ध, संपादकीय टिप्पणियों में जहाँ कला का विलास साहित्य सौन्दर्य का उल्लास प्रकट करता हुआ लक्षित होता है वहीं समग्रजीवन-चिंतन में उनके साहित्य-दर्पण में राष्ट्रीयता निर्बंध हो प्रतिबिम्बित-परिलक्षित होती है। पं० माखन लाल चतुर्वेदी प्रफुल्लित एवं प्रशान्त सरस्वती देवी के परम उपासक न होकर साहित्य की दुर्गा के आराधक रहे हैं जो राष्ट्र के सिंहासन पर समासीन रहती है। संस्कृति के आभूषण धारण करती है उथल पुथल के राजदण्ड अपने हाथों में सम्हाले रहती है, राजमुकुट को ठुकराकर किसी जाति के संकल्पों का गरीबों के बगीचे में उगे हुए फूलों का हार अपने जूड़े में बाँधती है और समस्त राष्ट्र के निवासियों की आत्मा का वस्त्र पहनकर क्रियाशीलता के साथ बैठ जाती है।

कवि के राष्ट्रीय स्वरों में ऐसी अनेक प्रेरक बातें सहज रूप से अभिव्यक्ति हुई हैं जो जन-जीवन का प्रतिनिधित्व साहित्यिक धरातल पर करती है। बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ होते ही कवि साहित्यिक

जीवन में पदार्पण कर चुका था। प्रसिद्धि का मुख्य कारण वह राष्ट्रीय चेतना थी, जिसने उदात्त भावनाओं में पुंजीभूत होकर सहज आवेगों में राष्ट्र देवता के चरणों में बलि हो जाने के लिए शंखनाद किया था। माखन लाल जी की इसी समर्पण भावना का समग्र अनुशीलन ही मेरा ईप्सित रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में एक शोधार्थी की निष्पक्ष दृष्टि से दिनकर तथा माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय भावना का तुलनात्मक अध्ययन करने का मेरा प्रयास रहा है। भारतीय राष्ट्रीयता के उद्भव एवं विकास के परिप्रेक्ष्य में दिनकर तथा माखनलाल चतुर्वेदी की समग्र काव्य कृतियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीयता एवं उसके विविध पक्षों एवं पहलुओं को लेकर विशद विवेचन मेरा मौलिक प्रयास अवश्य है।

यह प्रबन्ध नौ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में राष्ट्र शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ द्वितीय अध्याय में राष्ट्रीयता का अर्थ, परिभाषा, राष्ट्रीयता के मूल तत्व, राष्ट्रीयता के साधक तत्व, बाधक तत्व तथा राष्ट्रीयता के प्रतीक की विवेचना की गयी है। यद्यपि राष्ट्र राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीयता के मुख्य तत्व आदि का विवेचन मेरा प्रतिपाद्य नहीं है, परन्तु पृष्ठभूमि के रूप में उनका विवेचन मुझे आवश्यक प्रतीत हुआ। इसी परिप्रेक्ष्य में दिनकर तथा माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीयता का मूल्यांकन आगे के अध्यायों में क्रमशः किया गया है।

तीसरा अध्याय दो भागों में विभाजित है । प्रथम भाग में दिनकर का व्यक्तित्व चित्रित है । इसमें दिनकर की संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत की गयी है । द्वितीय भाग में दिनकर की समग्र काव्य-कृतियों का विवरणात्मक संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

दिनकर केकाव्य में वर्णित राष्ट्रीय भावना का विभिन्न पहलुओं को लेकर विशद विवेचन पांचवे अध्याय में किया गया है ।

छठा अध्याय भी दो भागों में विभाजित है । प्रथम भाग में पं० माखनलाल चतुर्वेदी का संक्षिप्त व्यक्तित्व चित्रित है । द्वितीय भाग में चतुर्वेदी जी की समग्र काव्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

सप्तम अध्याय में पं० माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में वर्णित राष्ट्रीय भावना का विवेचन किया गया है ।

आठवें अध्याय में दिनकर एवं माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय चेतना का तुलनात्मक अध्ययन विभिन्न पहलुओं को लेकर किया गया है ।

उपसंहारात्मक नवें अध्याय में आज के परिप्रेक्ष्य में कविवर दिनकर एवं माखनलाल चतुर्वेदी का मूल्यांकन करते हुए उनकी काव्य कृतियों में वर्णित राष्ट्रीयता की स्थापना की गयी है और समग्र अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है कि दिनकर जी की एवं माखनलाल जी की उदात्त राष्ट्रीयता तत्कालीन राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल थीं, जिसने भारतीय जन-मानस

की आन्दोलित किया । जन जागरण का शंखनाद करते हुए कवि दिनकर एवं माखनलाल चतुर्वेदी ने राष्ट्र कल्याण में अपना अपूर्ण योगदान दिया है । दिनकर एवं चतुर्वेदी जी की काव्य कृतियों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर एवं चतुर्वेदी जी वास्तव में राष्ट्रीयता के भावों से परिपूर्ण राष्ट्रीय कवि थे ।

हमें यह विश्वास है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता के उद्भव एवं विकास के इतिहास में एक कड़ी के रूप में स्वीकृत किया जायेगा ।

परिशिष्ट के अन्तर्गत दिनकर जी की एवं माखन लाल चतुर्वेदी की काव्यकृतियों एवं सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची दी गयी है ।

आभार :—

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के स्वरूप निर्धारण से लेकर शोधकार्य सम्पन्न होने तक श्रद्धेय गुरूवर डॉ0 प्रेम कान्त टन्डन (रीडर हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय) ने जो आत्मीयतापूर्ण निर्देशन किया हैतथा शोधकार्य को सुचारू रूप से सम्पन्न होने की निरन्तर प्रेरणा प्रदान की है वह शब्दा-तीत है । उनके अतिशय उदार व्यक्तित्व की छाया में ही मैं सब कुछ कर सकी हूँ । मैं उनके इस मानवतावादी उदार व्यक्तित्व तथा अपार पांडित्य के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता एवं श्रद्धा निवेदित करती हूँ तथा यह विश्वास करती हूँ कि सदैव उनका इसी प्रकार मार्ग दर्शन मुझे मिलता रहेगा ।

मैं अपने पिता श्री सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव (प्रवक्ता अर्थशास्त्र रणवीर इण्टर कालेज रामनगर) एवं स्वर्गीया माता श्रीमती गायत्री श्रीवास्तव के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने मुझे शोध कार्य करने की प्रेरणा दी ।

मैं अपने पति, सास, ससुर तथा दोनों देवरों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिनके सहयोग को अपने अधिकार की सीमा में समझकर मैं उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना उचित समझती हूँ ।

मैं अपनी अनुजा डॉ० मन्जुला श्रीवास्तवा , रन्जना एवं अन्जना के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने इस प्रबन्ध को लिखने के क्रम में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में मेरी सहायता की है ।

मैं उन सभी व्यक्तियों के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने शोध प्रबन्ध लेखन में मुझे सहायता पहुँचाई है ।

रेखा श्रीवास्तवा

:::-विषय सूची-:::

अध्याय-1

राष्ट्र शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ :-

'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। साहित्य का समाज और राष्ट्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी कारण मूलतः 'राष्ट्र' शब्द राजनीतिशास्त्र का हैवाच्य साहित्य से भी वह घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। समय-समय पर देश या राष्ट्र में जो कुछ भी समायिक राजनैतिक परिवर्तन हुए है और उससे साहित्य जिस रूप में प्रभावित हुआ है उसका ज्ञान हमें तत्कालीन साहित्य के अध्ययन से होता है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में 'राष्ट्र' शब्द विविध अर्थों में प्रयुक्त होतारहा है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से राष्ट्र शब्द 'रासृ' या 'राजृ' धातु तथा 'ष्ट्रन' प्रत्यय के योग से बना है। राष्ट्र शब्द का अर्थ है- "रासन्ते वाहूँ शब्दं कुवते जनः यस्मिन् प्रदेशे विशेषे तद् राष्ट्रम्"- अर्थात जिस प्रदेश विशेष में लोग विशिष्ट भाषा में विचार विनिमय करते हैं, वह राष्ट्र है।

"संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ"[1] में राष्ट्र शब्द की व्युत्पत्ति 'राजृ' या 'रासृ' धातु से तथा 'ष्ट्रन' प्रत्यय के योग से बताई गई है। यह शब्द राज्य साम्राज्य, देश मुल्क प्रजा, जाति या 'नेशन' के अर्थ को घोषित करता है।

---

1. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ--पृ0 943

'वाचस्पत्यम्' के अनुसार राष्ट्र शब्द न राज् (धातु) 'ष्ट्रन' (प्रत्यय) के योग से उत्पन्न हुआ है।"[1]

"मानक हिन्दी कोश" के अनुसार--"राष्ट्र का अर्थ है देश' [2] किसी निश्चित या विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले लोग, जिनकी एक भाषा, एक से रीति-रिवाज तथा एक सी विचार धारा होती है राष्ट्र कहलाते हैं।

"मोनियर विलियम्स कोश" [3] में 'राष्ट्र' को-- A kingdom realm, empire, dominion, district, country, a people, nation, subjects आदि शब्दों में व्याख्यायित किया गया है।

"एक अन्य कोश [4] में 'राष्ट्र' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है। (राज + ष्ट्रन) A kingdom, relem, empire राष्ट्र दुर्ग बलानि च सामदण्डौ प्रशंसति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये-- A district, territory, country, region as in ** महाराष्ट्र नगराणि च राष्ट्राणि धन धान्ययुतानि च, स्व राष्ट्रे न्याय वृतः स्यात् The people, nation, subjects तस्य प्रकुप्य ते राष्ट्रः ष्ट्रः-ष्ट्रम् Any national or public, calamity अभिवृद्धि increase of a kingdom कर्षणम् distressing a kingdom तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयते राष्ट्रः।

"वर्ल्ड डिक्शनरी" के अनुसार--"वह जन समुदाय जो एक ही देश में बसता हो

---

1. वाचस्पत्यम् (षष्ठी भाग) पृ० 4806
2. रामचन्द्र वर्मा- मानक हिन्दी कोश पृ० 505
3. मोनियर विलियम्स- संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी (Ox-ford) पृ० 879
4. पी०के० गौड़ तथा सी०जी० कार्वे--संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी भाग-2

अथवा एक ही राज्य शासन के अन्तर्गत एकताबद्ध ही राष्ट्र की संज्ञा से अभिहित किया जाता है ।"

भारत के प्राचीन वाङ्मय में भी 'राष्ट्र' शब्द का व्यापक मिलता है । वेदों में राष्ट्र शब्द विविध अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । 'ऋग्वेद' में राष्ट्र को एक राष्ट्रीय महाशक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है :- 'अहं राष्ट्री: संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा याज्ञियानाम्

तां मा देवा व्यदधुः पुरूत्रा भूरिस्थात्रा भूर्या वेशयन्तीम्[1]

'राष्ट्र' प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा यजुर्वेद में 'राष्ट्र' मे देहि'[2] तथा 'राष्ट्रया राष्ट्र में दत्त'[3] कहकर की गयी है ।

अथर्ववेद में यह भावना व्यक्त की गयी है कि 'राष्ट्र' निरन्तर समृद्धिशाली तथा ऐश्वर्यवान हो -- तेवास्मान् ब्राहमणस्पते भिऽराष्ट्राय वर्धय । राष्ट्रोर महयम् वध्यतां इत्यादि ।[4]

अथर्ववेद में हमारे मनीषियों ने पृथ्वी को माता मानते हुए अपने को पुत्र माना है --"माता भूमि : पुत्रोऽहं पृथिव्या:"[5]

1:- ऋग्वेद : 10/125/3

2:- यजुर्वेद: : दशमाध्याय: ।

3:- यजुर्वेद: : दशमाध्याय, 2:3:इत्यादि

4:- अथर्ववेद: : प्रथम काण्ड सू0पृ0 1.4 ।

5:- अथर्ववेद : 19/5/1

'शतपथ ब्राह्मण' में समृद्धियुक्त ओजस्वी जन समूह को ही राष्ट्र कहा गया है" 'श्री वैराष्ट्रम'[1] ऐतरेय ब्राह्मण में प्रजाजन को ही 'राष्ट्र' शब्द से सम्बोधित किया गया है - तस्मैविशः स्वयमेवा नमन्त इति राष्ट्राणि वै विशो राष्ट्राध्ये वैनं तत्स्वयुमपनवन्ति ।[2]

'राष्ट्र' शब्द अंग्रेजी के 'नेशन' (nation) शब्द का पर्याय माना गया है । गिल क्राइस्त महोदय नेशन शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा में नेटस (natus) शब्द से मानते हैं जिसका अर्थ है - (उत्पन्न हुआ या जन्मा'[3] वस्तुतः 'राष्ट्र' शब्द अपने आपमें एक व्यापक अर्थ को समाविष्ट करता है । इसको जानने के लिए हमें राष्ट्र की विविध परिभाषायें जिन्हें पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने अलग-अलग दी हैं का अध्ययन करना आवश्यक होगा ।

पाश्चात्य विद्वान जोमर्न के अनुसार --

"ऐसाजन समूह जो विशिष्ट भू-भाग के प्रति तीव्रता अन्तरंगता और

1- शतपथ ब्राह्मणः 6/7/3/7

2- ऐतरेय ब्राह्मणः अध्याय 40 : खण्ड 326

3- Gilchrist- R.N.Principals of political Science P. 24

गौरव की संतुष्ट भावना से संयुक्त हो, राष्ट्र है ।"[1]

गेटेल के अनुसार--"आधुनिक राज्य की एकता का आधार भौतिक न होकर मनोवैज्ञानिक है । गौण वर्ग जो राष्ट्र जातियाँ कहलाती हैं-- एक सामान्य भावना, समान रीति-रिवाज तथा रूचियों से मिलकर जिस राजनीतिक इकाई का निर्माण करती है उसे राष्ट्र कहते हैं ।" [2]

रेम्जे म्योर ने--"ऐसे लोगों के समूह को 'राष्ट्र' कहा है जो निकट सम्बन्ध के बन्धनों में बद्ध हो ।"[3]

शु मैन के अनुसार-- "किसी विशेष समय में किसी राष्ट्र की राजनैतिक सीमायें चाहे कुछ भी हों राजनीतिक अर्थों में राष्ट्र उन लोगों का समूह है जो भाषिक तथा अन्य सांस्कृतिक बन्धनों द्वारा एक इकाई के रूप में आबद्ध रहते हैं ।" [4]

स्पर्ट इमर्सन ने 'राष्ट्र' का प्रधान आधार संस्कृति को माना है । उनके अनुसार--"परम्परागत आदर्शों तथा भावी लक्ष्य की एकता से युक्त जन समूह ही राष्ट्र है ।"[5]

1- A nation is a body of people united by a corporate sentiment of peculiar intintensity instinaacy and dignity related to a definite home country-Zimmern Alfred. The prospects of Democracy and other ess. P.84

2. "The paris of nity in modern state is psychological rather than physical, seccndary groups, called nationalities, emerge, united by a common spirit, by a common custums and interests and when they from a political unit, they become a nation"- Gettel. R.G. political Science P.52.

3- Mair, Ramsey ; Nationalism and internationalism. P.31

4. Whateve the location of political poundaries may be at any given time, 'Nations' in the non plitical scnce are aggregation of people aware of them of them selves as units by venture of liguistic and other caltural ties"Shuman Ffedrick,L.International politics, P.290-91.

समूह ही राष्ट्र है ।" [1]

ई०एच० कार के अनुसार--"राष्ट्र शब्द से ऐसे मानव समूह का बोध होता है जिसके लक्षण इस प्रकार हैं--

(क) अतीत और वर्तमान में वास्तविकता अथवा भविष्य के लिए आकांक्षा के रूप में सरकार की धारणा ।

(ख) अपना अलग विशिष्ट आकार और सदस्यों का पारस्परिक सम्पर्क एवं सामीप्य ।

(ग) न्यूनाधिक निर्धारित भू-भाग ।

(घ) ऐसी चरित्रगत विशेषताएं जो किसी राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों और अराष्ट्रिक समुदायों से अलग करती हैं ।

(ङ) सदस्यों के मन में राष्ट्र की जो छवि है उसे सम्बन्धित भाव या इच्छा शक्ति ।[2]

बर्गेस ने राष्ट्र के विषय में लिखा है--"एक जनसमुदाय जिसकी भाषा एवं साहित्य, रीतिरिवाज तथा भले-बुरे की चेतना सामान्य हो और जो भौगोलिक एकता-युक्त प्रदेश में रहता हो, राष्ट्र कहलाता है "।[3]

---

1. The nation is a community of people who feel that they belong together in the doble scnce that they share deeply significant elements of the a common decting for the future. Ruport emerson from empire to Nation P.95.
2. ई० एच० कार - नेशनलिज्म - पृ० 20
3. A population having a common lainguage and literature, common customs and common cosciousness of right and wrong inhabiting a territory of geographical unity,- Politicol Science and costitutional law : Vol. II P. 1. J.W. Burges.

स्टालिन के अनुसार--"राष्ट्र वह समुदाय है जो ऐतिहासिक दृष्टि से विकसित एवं स्थायी हो तथा सर्वमान्य भाषा भू-भाग, आर्थिक जीवन और संस्कृति में अभिव्यक्त होने वाली विशेष मनोरचना से युक्त हो ।" [1]

भारतीय विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषायें--

माखन लाल चतुर्वेदी के शब्दों में :--"राष्ट्र तो एक बाग है । उसकी सीमा-रक्षा के लिए सिर सौंपकर बलिदान दिया करते हैं, जिससे संसार में वह अखण्ड राष्ट्र कहलाने योग्य होता है ।" [2]

आचार्यनन्द दुलारे बाजपेयी के अनुसार --

"राष्ट्र केवल सीमाओं और जनसंख्या के समुच्चय का नाम नहीं है, जिसके साथ परिस्थितियों और ऐतिहासिक प्रतिक्रियाओं से भारत गुजरा है । वे अपना स्वरूप रखती है उनके अनुरूप हमारी चेतना और व्यापक जीवन परि-वेदनों का निर्माण हुआ है ।"[3]

2- माखन लाल चतुर्वेदी - हिमकिरीटनी

3- नन्द दुलारे बाजपेयी राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध पृ0 - 42

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में--

"भूमि पर बसने वाले लोग, जन और जन की संस्कृति इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।"[1]

म०स० गोलवल्कर ने अपनी पुस्तक "हमारी राष्ट्रीयता" में राष्ट्र की परिभाषा इस प्रकार दी है-- "जो भाव 'राष्ट्र' शब्द के अंतर्गत है वह एक सम्पूर्ण इकाई में अविच्छिन्न रूप में घुले-मिले पाँच विशिष्ट अंशों का योग है--प्रसिद्ध पाँच इकाइयाँ हैं--भौगोलिक (देश) जातीय (जाति), धार्मिक (धर्म), सांस्कृतिक (संस्कृति) और भाषात्मक (भाषा) है।[2]

बाबू गुलाबराय के शब्दों में --

"राष्ट्र के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके रहने वाले एक जाति व समुदाय के ही हों। राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई है। उसके निवासियों के राजनीतिक हितों की एक ध्येयता और शासन की एक सूत्रता में उसमें संगठन स्थिर रखने के लिए आवश्यक है। सभी सम्प्रदाय और सभी प्रान्त राष्ट्र के अंग हैं।"[3]

आबिद हुसैनी ने राष्ट्र की परिभाषा इस प्रकार दी है--

"राष्ट्र के सम्बन्ध में आम धारणा यह है कि वह ऐसे लोगों का समूह होता है जो एक ही राज्य में एक ही राजनीतिक आस्था के अधीन

1:- डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल लाल बहादुर जैन - गद्य संकलन पृ० - 13

2:- गोलवल्कर - हमारी राष्ट्रीयता - पृ० 31

3:- सम्पा० डॉ० लाल बहादुर जैन - पृ० 23

रहता हो ।"[1]

अन्यत्र वे लिखते हैं--"जो एक ही संहित भौगोलिक क्षेत्र में रहते हों और सामान्य सांस्कृतिक एकता से सम्पन्न से हमें समझना चाहिए कि उनके पास राष्ट्रीयता की कम से कम आवश्यकतायें विद्यमान हैं और किसी एक राजनीतिक व्यवस्था को मानकर और राज्य बनाकर वे राष्ट्र के रूप में धारण कर सकते हैं ।"[2]

राधा कुमुद मुकर्जी के अनुसार --

"यह सत्य है कि राष्ट्र का निर्माण करने में विविध कारक होते हैं जैसे--सामान्य भाषा सामान्य धर्म, सामान्य शासन और सामान्य संस्कृति तथा सामाजिक अर्थव्यवस्था पर शायद इनमें से एक भी कारक उतना अपरिहार्य नहीं, जितना भौगोलिक सीमाओं का सर्वथा सुनिश्चित होना ।"[3]

डा० सुधाकर शंकर कलवड़े के अनुसार--

"राष्ट्र एक जीवित शरीर है जिसके दो मूलाधार हैं--एक है बाह्य शरीर जो भौगोलिक सीमाओं से घिरे देश के शरीर को प्रकट करता है और दूसरा आत्मा जो जनसाधारण की संस्कृति, भाषा साहित्य कला और आदर्शों आकांक्षाओं के रूप में अभिव्यक्त होती है और राष्ट्र को निर्माण करती है ।"[4]

1:- भारत की राष्ट्रीय संस्कृति - आबिद हुसैन - पृ०

2:- हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद - राधा कुमुद मुकर्जी

3:- आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना - डॉ० सुधाकर शंकर कलवड़े पृ० - 18

आधुनिक सन्दर्भ में राष्ट्र की परिभाषा देते हुए डा० सुधीन्द्र ने लिखा है-- "भूमि भूमिवासी जन और जन संस्कृति तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है ।"[1]

सुश्री सुनीति के मत में --

"वह भू खण्ड जो विदेशियों से पादाक्रान्त न हो, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हो वह राष्ट्र कहलाता है ।"[2]

राष्ट्र की उपयुक्त भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं में कई बातें सामने आती हैं । यथा--

(क) राष्ट्र के लिए निश्चित भू-भाग हो ।

(ख) उस भू-भाग पर विशिष्ट चेतनायुक्त जन समुदाय निवास करता हो तथा

(ग) उनकी अपनी एक भाषा धर्म, जाति एवं संस्कृति हो । इन तीनों के सम्मिलन से 'राष्ट्र' बनता है । एक विशेष जन समूह को हम तब तक राष्ट्र नहीं कह सकते जब तक उसमें एक निश्चित भौगोलिक सीमा न हो, उसमें सामान्य-चेतना और भाषा की एकता न हो ।

राष्ट्र और देश --

"राष्ट्र' और 'देश' में पर्याप्त अन्तर है । 'देश' एक संकुचित

1:- डॉ० सुधीन्द्र - हिन्दी कविता में युगान्तर - पृ० 164-165

2:- दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना :- सुनीति, पृ० - 3

अर्थ को व्यक्त करता है। अर्थात एक भौगोलिक सीमा विशेष से घिरा हुआ भूखण्ड देश कहलायेगा। परन्तु 'राष्ट्र' शब्द एक व्यापक अर्थ को प्रकट करता है क्योंकि 'राष्ट्र' के लिए मात्र भौगोलिक एकता अनिवार्य नहीं है, बल्कि उसमें रहने वाले लोगों में संस्कृति की एकता एवं अखण्डता भी होनी आवश्यक है। पाकिस्तान दो अलग भू-खण्डों पर बसा होने के बाद भी एक राष्ट्र था। कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका एक ही भू-खण्ड पर रहने पर भी एक राष्ट्र नहीं हैं।

इसी प्रकार यहूदी जाति के पास अपना कोई भौगोलिक सीमाबद्ध भूखण्ड नहीं है। वे सम्पूर्ण विश्व में फैले हुए हैं, लेकिन उनकी अपनी संस्कृति उन्हें एकता के सूत्र में बांधे हुए है और वे सब मिलकर एक राष्ट्र कहे जा सकते हैं।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि केवल भौगोलिक एकता ही राष्ट्र के लिए आवश्यक नहीं है उसके साथ जन की चेतना का होना भी आवश्यक है। जन की चेतना राष्ट्र के लोगों को एकता के सूत्र में बांधे रहती है तथा उनमें राग का विस्तार करती है।

'राष्ट्र' का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ? यह विचारणीय प्रश्न है। आदिम युग से मानव असभ्य था, उसकी मूल भूत आवश्यकतायें केवल भोजन तक ही सीमित रही होंगी। लेकिन क्रमशः सभ्यता के विकास के साथ उसकी आवश्यकताएं बढ़ती गयीं जिसने उसे समूह में रहने के लिए प्रेरित

किया । यह समूह को भावना उसे क्रमशः कुटुम्ब, ग्राम, नगर, राज्य तथा अन्तर्राष्ट्र को भावनाओं में बद्ध करती गयी । आज व्यक्ति एकाकी न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी अस्मिता एवं सम्बन्धों का विस्तार कर चुका है ।

कुटुम्ब---ग्राम---नगर---राज्य---राष्ट्र---अन्तर्राष्ट्र ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल मे राष्ट्र का अर्थ संकुचित था । वर्तमान युग में राष्ट्र शब्द अपने आपमे एक विस्तृत अर्थ संजोये हुए है । प्रसिद्ध विद्वान ई0एच0 कार के द्वारा "व्यक्ति और राष्ट्र को अविभाज्य मानते हैं--वे एक दूसरे के पूरक हैं । ज्यों हम जन्म लेते हैं संसार हमारे ऊपर प्रभाव डालने लगता है और जैविक एकक {यूनिट} से सामाजिक एकक के रूप में परिवर्तित कर देता है प्रागैति हासिक अथवा ऐतिहासिक काल के प्रत्येक स्तर पर हम मनुष्य एक समाज में जन्म लेता रहा है और अत्यन्त आरम्भिक काल से वह समाज द्वारा निर्मित किया जाता रहा है, जो भाषा वह बोलता है वह उसको व्यक्तिगत विरासत नहीं होती बल्कि जिस समुदाय में वह पला बढ़ा होता है उसको सामाजिक देन होती है ।" [1]

राष्ट्रीयता--

"राष्ट्र" शब्द जब भावना से जुड़ जाता है तो 'राष्ट्रीयता' कहलाता है । इसे भाववृत्ति या sentiment कहते हैं ।

ई0एच0 कार--इतिहास क्या? पृ0 31-32

वस्तुतः 'राष्ट्र' शब्द का विकसित रूप राष्ट्रीयता है जब व्यक्ति 'स्व' की भावना से को छोड़कर 'पर' की भावना की ओर आकृष्ट होता है तभी राष्ट्रीयता की भावना आ जाती है। 'पर' की भावना उसे व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़कर देश के लिए राष्ट्र के लिए कुछ कर गुजरने को प्रेरित करती है। यहाँ 'पर' की भावना राष्ट्र के लिए गहम प्रेम, राज स्नेह की भावना है। इसके हम जन चेतना या राष्ट्र की आत्मचेतना भी कह सकते हैं। एक विशिष्ट भू-भाग पर रहने वाले जन समूह उस भू-भाग के प्रति रागात्मक सम्बन्ध ही राष्ट्रीयता कहलायेगा। तीव्र राग के कारण ही व्यक्ति राष्ट्र पर आये हुए संकट के समय अपना प्राणोत्सर्ग करने के लिए तत्पर रहता है। पाकिस्तान या चीन के आक्रमण के समय यह राग की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ी थी। उस समय देश का प्रत्येक नागरिक उत्साह में भरकर स्वदेश के लिए कुछ कर डालने की भावना से युक्त था।

राष्ट्रीयता और देशभक्ति को कुछ विद्वान एक ही वस्तु मानते हैं। वस्तुतः देशभक्ति राष्ट्रीयता की एक प्रवृत्ति है। प्राचीन देशभक्ति राष्ट्रीयता से भले ही भिन्न रही हो, क्योंकि तब तक उसका अर्थ संकुचित था। परन्तु आज देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता भिन्न-भिन्न वस्तु नहीं है। प्राचीन काल में जातीय भावना सर्वोपरि थी, इसी कारण उस समय जाति के लिए प्रेम की भावना को ही राष्ट्रीयता कहा जाता था। जाति के लिए व्यक्ति का राग, स्नेह, प्रेम भी था, वह स्वजाति के लिए सब कुछ निछावर

करने में तत्पर था । उस समय जातीय भावना दृढ़तर थी, प्रत्येक जाति समूह को एक निश्चित संस्कृति, भाषा, रीति, रिवाज, राजनैतिक, सामाजिक परम्परायें थी, इस कारण उसकी रक्षा के लिए प्रत्येक जन अपने प्राणों को उत्सर्ग करने में नहीं हिचकता था । परन्तु आज उक्त भावना विस्तृत हो चुकी है । व्यक्ति परिवार तथा जाति के ऊपर उठकर राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्र की भावना से संयुक्त हो रहा है । संचार सुविधाओं में उन्नति के कारण व्यक्ति दूसरे से जुड़ा हुआ है । आज व्यक्ति देश के लिए नहीं, मानव मात्र के प्रति राग की भावना रखता है । वह अपने देश के प्रति रागात्मक भावना रखने के साथ राष्ट्र के प्रति प्रेम व आदर का भाव रखता है राष्ट्रीयता के इस विस्तृत रूप के विकास को हैंस कोहन अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की बात मानते हैं ।"[1]

इन साइक्लोपीडिया आफ ब्रिटेनिका के अनुसार --

"राष्ट्रीयता का आरम्भ अट्ठारवीं शताब्दी के अन्त में सामान्यतः जनता और व्यक्तिगत जीवन की भावनाओं के परिवर्तन के कारण हुआ । यह ऐतिहासिक एवं निश्चित तथ्य है ।"[2]

---

1. Nationalism as we under stand it is not older than the seceond half the eighteenth century : Kohs,Hans- The ideal Nationalism (1956 edition)
2. Nationalism began only of the end of the 18thcentury to become a generally oiecoghiseal scentiment moulding public and private life and of the great. If not the greatest singllex dtermining factor of history." Encydopedia Britanniea- Vol. 16. P. 140.

इनसाइक्लोपोडिया आफ ब्रिटेनिका के अनुसार--

"राष्ट्रोयता ऐसो भावना है जिसमें व्यक्ति राज्य के प्रति सर्वोच्च भक्ति महसूस करता है ।" [1]

इन साइक्लो पोडिया आफ सोशल साइन्सेज के अनुसार --

"अपने व्यापक अर्थ में राष्ट्रोयता एक ऐसो प्रकृति है जो मूल्यों के विशिष्टता क्रम में राष्ट्रोय व्यक्तित्व को एक उच्च स्थान प्रदान करतो है । इस अर्थ में वह समस्त राष्ट्रोय आन्दोलनों को एक स्वाभविक एवं अपरिहार्य तथा सतत् बनो रहतो वालो स्थिति है ।" [2]

अनेक विद्वानों ने राष्ट्रोयता के विकास के कारणों पर प्रकाश डालते हुए प्रायः यहों निष्कर्ष निकाला है कि--"राष्ट्रोयता नामक राजनोतिक चेतना फ्रेन्च क्रान्ति को देन है ।" [3]

---

1. "A satate of mind- in which the superme loyalty of the individual is felt to be due to the nation state. Encyclopedia Britanica- Vol-16.P.149.
2. "Nationalism in the broder meaning reyers to the attitude which aresibes to national individualty a high place in the hiorarchy of values. In then sense it is natural and indespensable condition and accompaying phenomenon of all natioanl movements." Encyclopedia of Social Sciences. Vol.11.P.231.(1954)
3. Nationalism as a conscious political force was a product of the french revoluation its sequel" - Nationalism (Study Greup) P.31.

राष्ट्रीयता व्यक्ति के हृदय पक्ष से सम्बन्धित भावना है जो राग के विस्तार में सहायक होती है । इस प्रकार राष्ट्रीयता की भावना संघर्ष को भी रोकती है । व्यक्ति निहित स्वार्थों को त्याग कर देश की उन्नति में तत्पर होता है । समाज में भी प्रेम एवं स्नेह की भावना का विस्तार होता है । यह भावना समाज को एकता के सूत्र में बांधने में सहायक होती है । वस्तुतः राष्ट्रीयता की भावना व्यक्तिगत न होकर एक समष्टिगत चेतना है । यह व्यक्ति विशेष की भावना न होकर जन समूह की भावना है । व्यक्ति स्वयं को समाज की इकाई मानकर उसेउचित ढंग से व्यवस्थित करने में प्रयत्नशील रहता है ।

राष्ट्र प्रेम अथवा विश्व प्रेम के रूप में यह भावना युद्ध को रोकने में सहायक है । व्यक्ति यदि दूसरे राष्ट्र को भी प्रेम व आदर की भावना से देखेगा तो उस राष्ट्र के अहित का विचार स्वयमेव ही उसके हृदय से निकल जायेगा और विश्वबन्धुत्व की भावना उसके हृदय में हिलोरें लेने लगेगी । हमारी प्राचीन संस्कृति इसी भावना पर आधारित है । "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना हमारे प्राचीन मनीषियों का एक उद्घोष था । हमारी प्राचीन वैदिक संस्कृति में एक सार्वभौम धर्म का विकास हो चुका था जिसमें मानव मात्र के प्रति उदात्त स्नेह, त्याग, उदारता, दया, कल्याण आदि का विशेष महत्व था ।

'राष्ट्रीयता' को भिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है । पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषायें इस प्रकार हैं --

हैंस कोहन के अनुसार --

"राष्ट्रवाद मस्तिष्क की प्रथम और श्रेष्ठ स्थिति है ।" [1]

---

1. " Nationalism is first and for most a state of mind"- Hans. Kohan. The Idia of Nationalism. P. 3.

हेराल्ड लास्की ने भी राष्ट्रीयता को मूलत: भावनात्मक माना है--

"जिसके द्वारा उन सभी में एक विशिष्ट एकता उत्पन्न हो जाती है जो अपने को अन्य मानवों से भिन्न मानते हों। यह एकता इतिहास, विजयों, विजयों अथवा परम्पराओं की उस समानता का परिणाम होती है जिसकी प्राप्ति संयुक्त प्रयत्नों के फलस्वरूप हुई।" [1]

गिलक्राइस्टर के अनुसार --

"राष्ट्रीयता को आन्तरिक भावना मानते हुए उसकी उत्पत्ति ऐसे लोगों से बताई है जो सामान्यत: एक ही जाति तथा स्थान से सम्बन्ध रखते हों, जिनकी भाषा, धर्म, इतिहास तथा आचार-विचार रूचियाँ सामान्य हों तथा जो समान राजनैतिक आदर्शो से संगठित हों।" [2]

रेम्से म्योर के अनुसार --

"राष्ट्रीयता के अन्तर्गत जाति की एकता सांस्कृतिक एकता शासन की एकता आर्थिक एकता, रानैतिक एकता तथा अन्य महापुरूषों की जीवन गाथाओं व विजय गीतों की मान्यता आदि तत्व समाहित हैं।" [3]

---

1. Laski, Haralal. J.A.Grammar of politics. P. 219.
2. "Nationality is a spirtule sentiment or principle arising among a number of people useally of the same race residence on the same territory sharing a common language, the same religion similar history and traditions, common interests with common political associations and common idial of political unity"Gilcherist. R.N.Principles alpolitical science P.26
3. नेशनलिज्म एण्ड इन्टरनेशनलिज्म : रेम्जेम्योर पृ0 30

प्रो० होलकोम्बे के अनुसार --

"यह एक सामूहिक भाव है एक प्रकार की साहचर्य भावना तथा पारस्परिक सहानुभूति है, जो स्वदेश-विशेष से सम्बन्धित रहती है। इसका उद्भव सामान्य पैतृक स्मृतियों से होताहै जो चाहे महान उपलब्धियों अथवा गौरव की हो, अथवा विपत्ति या कष्टों की।"[1]

शूमैन ने राष्ट्रीयता को इस प्रकार परिभाषित किया है --

"राष्ट्रवाद जाति का विकसित रूप है जिसमें एक वृहद भूखण्ड में बसने वाली जाति विशेष की सामाजिक एकता की सीमाओं में एकाकार रहती है।"[2]

पाश्चात्य विद्वानोंद्वारा की गयी परिभाषाओं के हम भारतीय विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।

रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में --

दिनकर जी हिन्दी के माध्यम से राष्ट्रीय एकता की कल्पना करते हैं ---

"हिन्दी को हमने इसलिए चुना कि उससे राष्ट्र की एकता का विकास होने वाला है इसलिए नहीं कि उसे बहाना बनाकर हम प्रान्तों के

1. It (Nationality) is a corporate sentiment a kind of fellow feeling of mutual sympathy relating to a difinite home country. It spring from a common heritage of memories whether of great achievements or grey or of disaster and suffering." Prof. Holecombe- foundation of modern common welth (1923) P.23.

2. Schuman, Fredrick. L. International politics.

बीच की खाई को और चौड़ी कर दें ।"[1]

राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में एक सूत्रता की ओर संकेत करते हुए श्री दिनकर जी ने लिखा है-- "उत्तर को आर्यों का देश और दक्षिण को द्रविणों का देश समझने का भाव यहाँ कभी नहीं पनपा क्यों कि आर्य और द्रविड़ नाम से दो जातियों का विभेद यहाँ हुआ ही नहीं था । समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण वाला विभाग यहाँ हमेशा से एक देश माना जाता रहा है ।"[2]

माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों में --

"राष्ट्रीय कविता क्या है? राष्ट्रीय कविता केवल खून, फाँसी हथकड़ी, बेड़ियाँ, की कविता नहीं है । राष्ट्र की प्रत्येक चीज पवित्र है, गौरव की वस्तु है । राष्ट्र को मैं महान विशाल मानता हूँ । उसे मैं समस्त भूतकाल से लेकर भविष्य काल की नाप से नापता हूँ । ऐसे ही सनातन राष्ट्रवाणी है । राष्ट्रीय कविता घुँघरू बाँधकर ही मनोरंजन नहीं करती या मधुर अलापों से माधव का गायन ही नहीं करती, किन्तु वह युद्ध के प्रभाव काल में लंका कांड का भीषण रूप भी धारण कर लेती है और सैनिकों को बलिपथ पर आमंत्रित करती है ।"[3]

आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी के अनुसार --

"राष्ट्रीयता अथवा जातीयता से हमारा तात्पर्य केवल जातीय

1. रामधारी सिंह दिनकर : राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता, पृ0 37
2. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 67-68.
3. दिनकर की सृष्टि और दृष्टि : डा0 छोटे लाल दीक्षित पृ0 57.

बाह्य गुणों से और विशेषताओं से नहीं है, केवल इन लक्ष्यों से भी नहीं है जिन्हें हम परम्परा के नाम पर दोराते चले आ रहे हैं प्रत्यक्षतः राष्ट्र या जाति के उस वास्तविक सक्रिय गम्भीर जीवन से है जो एक साथ मानवीय और विशिष्ट ऐतिहासिक अनुभवों तथा जातीय दृष्टि से युक्त होने के कारण ही राष्ट्रीय है। इसलिए एक साथ राष्ट्र व सार्वभौम की सीमा को स्पष्ट करता है।"[1]

बाबू गुलाब राय --

"एक सम्मिलित राजनैतिक ध्येय में बँधे हुए किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जन समुदाय के पारस्परिक सहयोग और उन्नति की अभिलाषा सेप्रेरित उस भू-भाग के लिए प्रेम और गर्व ही राष्ट्रीयता है।"[2]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास' में राष्ट्रीयता का यह अर्थ बताते हैं--

"प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का एक एक अंश है और उस राष्ट्र की सेवा के लिए उसे धन-धान्य समृद्ध बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सब प्रकार के त्याग को स्वीकार करना चाहिए।"[3]

डा० राधाकृष्णन का विचार है कि --

"राष्ट्रीयता का अर्थ तो यह है कि हम अपने आत्म सम्मान तथा ईमानदारी की यथाशक्ति रक्षा करें और समस्याओं को सुलझाने में अपने

---

1. आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी : राष्ट्रीय साहित्य व अन्य निबन्ध पृ0-
2. साहित्य का दृष्टिकोण : डॉ0 वासुदेव नन्दन प्रसाद पृ0-302
3. हिन्दी साहित्य : उद्भव एवं विकास पृ0-257.

व्यक्तिगत ढंग को बनाये रखें।" [1]

डा० नगेन्द्र ने देशभक्ति के पल्लवों को प्रस्फुटित करते हुए लिखा है कि :--

"जब मनुष्य की रागवृत्ति का विस्तार होता है, तो वह अपने व्यक्तित्व से परिवार से, ग्राम से, फिर प्रदेश, देश और इसके आगे विश्व तक व्यापक हो जाता है। यह वास्तव में स्व का विस्तार ही है उसका निषेध नहीं है। देशभक्ति के स्व का वृत्त समग्र देश और उसके निवासियों के प्रति राग का अभिप्राय है--उनके कष्टों का निवारण, उनकी सेवा सहायता, इनके विकास का प्रयत्न और ये सभी उत्साह मूलक क्रियायें हैं। इस प्रकार देशभक्ति में राग-उत्साह के साथ उदात्त रूप धारण कर लेता है।"[2]

डा० कर्ण सिंह ने लिखा है:--

"राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न प्रयत्न एक परम पवित्र यज्ञ है। जिसमें बहिष्कार, स्वदेशी राष्ट्रीय शिक्षा और अन्य कार्य छोटी बड़ी आहुतियाँ हैं। इसका 'सुफल' स्वतन्त्रता है।"[3] अन्यत्र वे राष्ट्रीयता को गहन गम्भीर साधना मानते हैं:--

---

1:-- डा० राधाकृष्णन : आधुनिक निबन्ध, पृ० - 150 ।

2:-- डा० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता, पृ० - 19 ।

3-- डा० कर्ण सिंह : भारतीय राष्ट्रीयता के अग्रदूत, पृ० - 80

"राष्ट्रीयता एक धर्म है जो ईश्वर प्रदत्त है, राष्ट्रीयता एक सिद्धान्त है जिसके अनुसार हमें जीना है ।" [1]

डा० सुधीन्द्र की मान्यता है कि :--

"राष्ट्रवाद व्यक्तिगत नहीं, समष्टिगत चेतना है जिसकी दृष्टि समूह के अभ्युदय पर है और वह प्रगतिशील तत्व भी है देश भक्ति और राष्ट्रीयता का सनातन रूप भी है और राष्ट्रवाद उसका प्रगतिशील (ऐतिहासिक) स्वरूप है ।" [2]

डा० सुधाकर शंकर कलवड़े का मत है कि :--

"राष्ट्रीयता का सम्बन्ध बाह्य शरीर अथवा जड़ भूमि मात्र से न होकर आन्तरिक होता है अपने देश के अनाथ प्रेम में अपनी संस्कृति सभ्यता एवं धर्म के प्रति गौरव में अपने देश की सामायिक धार्मिक और राजनीतिक दशाओं में सुधार का प्रयत्न आदि में वह राष्ट्रीय भावना प्रस्फुटित होती है ।" [3]

देशबन्धु चितरन्जन दास ने अपने भाषण में कहा था :--

"राष्ट्रीयता वह क्रिया है जिसके द्वारा राष्ट्र अपने को व्यक्ति करता है तथा अपने को खोज लेता है । राष्ट्रीयता का यथार्थ सार

1:-- वही पृ० - 81 ।

2:-- डा० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० - 236 ।

3:-- डा० सुधाकर शंकर कलवड़े : आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृ० - 22 ।

यही है कि प्रत्येक राष्ट्र के लिए अपना विकास करना आवश्यक है जिसमें मनुष्यता भी स्वयं अपना विका कर सकेअपने को व्यक्त कर सके तथा आत्मानुभव कर सके ।" [1]

इस प्रकार 'राष्ट्रीयता' की भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीयता का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । इसमें जाति की एकता, भाषा की एकता साहित्य व संस्कृति की एकता आती है । अतः इसे कुछ सीमित शब्दों में परिभाषित करना कठिन है । व्यक्ति जहाँ अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्र या अन्तर्राष्ट्र के लिए कुछ करने को तत्पर हो, वही राष्ट्रीयता का जन्म होता है । वस्तुतः राष्ट्रीयता की भावना मानव शरीर में पायी जाने वाली एक विशिष्ट चेता है । यह एक समष्टिगत चेतना है जिसके कारण वह समूह पारस्परिक ऐक्य की भावना से ओत-प्रोत होकर अन्य किसी भी जन समूह से अपनी पृथक सत्ता का अनुभव करता है । आधुनिक राष्ट्रीयता की भावना का उदय पश्चिमी योरोप एवं उत्तरी अमेरिका में प्रबल रूप से हुआ । इसका आरम्भ फ्रांस की राज्य क्रान्ति के पश्चात 18वीं शताब्दी से माना जाता है । 19वीं शताब्दी में राष्ट्रीयता एक प्रबल शक्ति के रूप में उभरी ।

राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रवाद :--

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि राष्ट्रीयता हृदय पक्ष का भाव है । राष्ट्रवाद का क्षेत्र राष्ट्रीयता से व्यापक है । डॉ० सुधीन्द्र

1:-- देशबन्धु चितरंजन दास : अध्यक्षीय भाषण:प्रभा, पृ० - 157
{फरवरी}

ने राष्ट्रवाद को परिभाषित करते हुए कहा है--"राष्ट्र के उत्थान और प्रगति के सामाजिक तत्वों का समीकरण राष्ट्रवाद है । व्यक्ति के भाव विचार और क्रिया-व्यापार द्वारा राष्ट्र के हित कल्याण और मंगल की भावना ही राष्ट्रवाद है ।" [1]

मनुष्य के सामाजिक जीवन के विभिन्न तत्वों {देश जाति, भाषा, धर्म, संस्कृति, आचार, विचार आदि} के सहज स्वाभाविक संयोग से एकता की भावना उत्पन्न होती है और यही एकता जब विकसित होती है तब पारस्परिक संवेदना और समझ के कारण राष्ट्रीयता के रूप में प्रस्फुटित हो जाती है ।

राष्ट्रवाद की तुलना में राष्ट्रीयता अपेक्षाकृत अधिक व्यापक भावना से सम्बद्ध है जो किसी राष्ट्र के जन समुदाय को पारस्परिक समझ के साथ जीवन-यापन करते हुए देश को किसी बाहरी आघात से सामूहिक प्रतिरक्षा के लिए प्रेरित करती है । राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत व्यक्ति अथवा समाज अपनी तथा अशेष राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति की आकांक्षा रखता है । राष्ट्रीयता की यही भावना प्राचीन काल से ही हमारे देश की जीवन शैली में विद्यमान रही है । "भारतीय राष्ट्रवाद अर्वाचीन तथ्य है । ब्रिटिश शासन और विश्व की शक्तियों के कारण तथा भारतीय समाज में उत्पन्न और विकसीत अनेक भाव निष्ट एवं वस्तुनिष्ठ कारकों की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ब्रिटिशकाल में भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म हुआ ।"[2]

1:-- डा० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० - 54 ।

2:-- ए०आर० देसाई : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० - 4 ।

भारतीय राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीयता अन्य देशों के राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीयता से कुछ भिन्न प्रकार का रहा है । भारतीय राष्ट्रवाद में मातृभूमि के प्रति अगाध श्रद्धा और प्रेम का भाव है । भारतीय राष्ट्रवाद उस संस्कृति की देन है जिसमें समय-समय पर अनेक विदेशी संस्कृतियों की धारा आकर मिलती रही और कालान्तर में वह एक सामासिक संस्कृति की एकता के रूप में स्थापित हुई । यही कारण कि भारतीय एकता धार्मिक आदि विविधताओं के बाद भी सम्पूर्ण राष्ट्र की आत्मा एक संस्कृति की आत्मा के रूप में स्वतः सिद्ध हुई । भारत की राष्ट्रीय संस्कृति और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के परिप्रेक्ष्य में विदेशियों ने भी उसे अनेकता में एकता की संज्ञा से विभूषित किया । भारत के प्राचीन इतिहास के अध्ययन के समय उस काल खण्ड में वृहत्तर भारत की संकल्पना ऐसी ही राष्ट्रीयता की देन मानी जा सकती है ।

हमारे देश के जन जीवन में जब-जब राष्ट्रीय भावना का अभाव हुआ है तब-तब देश का इतिहास अवांछित रूप से प्रभावित हुआ है । उपलब्ध साक्ष्यों के आलोक में भारतीय नरेशों के पतन के मुख्य कारण थे । उनमें से एक कारण राष्ट्रीय भावना का अभाव भी रहा । उन राजाओं के क्षुद्र स्वार्थ तथा एकता के अभाव में इस देश के भाग्य में जो कुछ घटित हुआ वह इतिहास की वास्तविक माँग थी, जिसके फलस्वरूप राजनैतिक परतन्त्रता सहन करने के लिए हम बाध्य हुए और एक-एक करके विदेशी शासक अपने पैर जमाने में सफल हो गये ।

अपने पुर्नजागरण काल को उषा बेला के साथ भारत के आधुनिक इतिहास ने एक अकुलाहट भरी अँगड़ाई ली और तत्कालीन जीवन में राष्ट्रीय एकता की भावना को दृढ़ करने की आवश्यकता अनुभव की गई। भारतीय इतिहास के रंग-मंच का यह दृश्य-परिवर्तन कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, बल्कि भक्ति काल से ही समाज सुधारकों ने ऐसे परिवर्तन के लिए सूत्रधार बनने की भूमिका का श्री गणेश कर दिया था। जो आधुनिक काल तक आते-आते अनेक आन्दोलनों के रूप में प्रस्फुटित हुआ। युगों-युगों से चली आ रही सामाजिक प्रथाओं, धार्मिक मूल्यों, जीवनगत विचारों आदि की आधुनिक युग में पुनरीक्षा की गयी और उनमें से अवांछित तत्वों को निकाल कर स्वस्थ्य समयानुकूल और हितकर तत्वों की स्थापना के लिए अनेक क्षेत्रों में आन्दोलन चलाये गये। ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन से लेकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जैसे छोटे-बड़े संगठनों ने धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों के लिए पूरे देश में एक सक्षम अभियान का सूत्रपात किया। जन जागरण के इसी क्षण से ही आधुनिक भारत राष्ट्र का जन्म हुआ। अनुपयोगी अहितकर तथा अवान्छित, धार्मिक मान्यताएं ध्वस्त हुयीं, रूढ़ियों की बेड़ियाँ टूटी, नवीन आर्थिक सिद्धान्तों की खोज आरम्भ हुयी और सम्पूर्ण जन-जीवन व्यापक सामाजिक परिवर्तनों के लिए तैयार हुआ।

राष्ट्रीयता और जातिवाद :--

भारतीय समाज में 'जाति' शब्द का प्रयोग परिवर्तनशील रहा है।

वैदिक युग में वर्ण व्यवस्था के पश्चात् व्यवसाय की जटिलताओं के कारण कालान्तर में जाति शब्द समाज के विभाजन को घोषित करने के लिए रूढ़ हो गया : एक दीर्घ यात्रा तय करने के बाद यह शब्द पूर्णतया व्यवसाय से भी सम्बन्धित न होकर जन्म से सम्बन्धित हो गया । इसके मूल में हर जाति की अपरिवर्तित जीवन पद्धति रही है जिसके कारण समाज के किसी विशेष वर्ग में जन्म लेने पर उस वर्ग के सस्य पर बलात् आजीवन 'सम्बन्धित जाति' का नाम थोप दिया गया । इसके फलस्वरूप जन्म लेने के आधार पर पूरा भारतीय समाज असंख्य जातियों और कबीलों में विभाजित हो गया । अपने स्वार्थ, संकीर्ण प्रति स्पर्धा और पारस्परिक द्वेष के कारण भारतीय जातियाँ जहाँ एक ओर सीमित संकुचित तथा संकीर्णतावादी सेर्यों में लिप्त हुई वहीं दूसरी ओर विभिन्न जातियों के सदस्य अपनी जाति के उत्थान के लिए विशिष्ट रागात्मक भाव ग्रहण करते हुए सदैव प्रयत्नशील रहे । इस प्रकार से जाति-व्यवस्था न केवल भारतीय समाज के लिए हानिकर रही अपितु अपनी जातीय गरिमा की रक्षा के आग्रह के कारण कुछ अर्थों में राष्ट्रीयता का भी तत्व संजोयेरही । तथापि कट्टर जातीयता को एक संकीर्ण परिधि ही माना जा सकता है जो भारतीय समाज में भेद भाव अलगाव के दुर्गुणों के कारण कटु आलोचना के पात्र के रूप में स्वीकार की जाती है । जातिवाद और राष्ट्रवाद दो अलग-अलग विचार धारायें हैं । स्वस्थ राष्ट्रवाद में किसी भी दृष्टिकोण से ऊँचनीच तथा छोटे-बड़े की भावना की रंचमात्र की गुंजाइश नहीं होती । वस्तुतः राष्ट्रवाद एक अति व्यापक भावना है जिसकी प्रत्येक सोच का

सम्बन्ध सामूहिक रूप से पूरे राष्ट्रीय जीवन के साथ हुआ करता है। जैसा कि शूमैन ने भी स्वीकार किया है किसी सीमा तक--"जातिवाद को राष्ट्रवाद का विकसित रूप कहा जा सकता है" इस तथ्य का सत्यापन उस स्थिति में हो सकता है जब किसी राष्ट्र में एक धर्म एक संस्कृति, एक भाषा, एक समाज और एक ही जाति विद्यमान हो।

जातिवाद को राष्ट्रवाद का विकसित रूप कहा जा सकता है। प्राचीन राष्ट्रीयता जातीयता पर आधारित थी। प्राचीनकाल में व्यक्ति जाति के लिए राग या प्रेम की भावना के कारण उसकी रक्षा के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता था। फ्रान्स की क्रान्ति के पश्चात् 19वीं शताब्दी के आरम्भ में आधुनिक राष्ट्रीयता अपने व्यापक अर्थ में विकसित हुई जिसमें व्यक्ति समाज-कुटुम्ब-राज्य की भावना को छोड़कर राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र की भावनाओं से युक्त था। उसका जाति प्रेम ही विकसित होकर राष्ट्र प्रेम बना।

जातीयता के सम्बन्ध में महर्षि अरविन्द घोष ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं :--

"एक देश में दो जातियां चिरकाल तक नहीं रह सकती इनको मिलना होगा। इसके विपरीत यदि देश न हो, किन्तु जाति, धर्म, भाषा, एक ही हों तब भी इससे कोई फल नहीं निकलेगा और एक दिन स्वतन्त्र जाति की सृष्टि अवश्यमेव होगी। स्वतन्त्र देश संयुक्त करके एक वृहत्समाज की रचना हो सकती है परन्तु एक वृहत्जाति का संगठन नहीं

नहीं हो सकता । साम्राज्य का विध्वंस होने पर जातियाँ फिर स्वतन्त्र हो जाती हैं यही अन्तर्निहित स्वाभाविक स्वतन्त्रता ही साम्राज्य के नाश का कारण होती है ।"

<u>राष्ट्रीयता और देशभक्ति :--</u>

भक्ति या प्रेम हृदय पक्ष का भाव है अनेक प्रकार की भक्ति में देशभक्ति भी एक है । देश की राज जहाँ व्यक्ति जन्म लेता है उसके प्रति ममत्व या भक्ति की भावना देशभक्ति है सभ्यता के विकास के साथ-साथ इस भावना का भी विकास हुआ । देश प्रेम देश के प्रति अनुराग की भावना है राष्ट्रीयता इसका प्रगतिशील रूप है इसका सम्बन्ध मनुष्य से है जबकि राष्ट्रीयता मस्तिष्क की भावना है जो तर्क के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती है । देश के प्रति अनुराग की भावना सभी के हृदय में होती है । व्यक्ति कहीं रहता हो किसी भी उम्र का हो किसी श्रेणी का विद्वान हो अपनी मातृभूमि के लिए प्रेम या भक्ति उसके मन में हमेशा विद्यमान रहेगी । यही भक्ति हमेशा उसे मातृभूमि की रक्षा के लिए तथा उसकी उन्नति के लिए प्रोत्साहित करती है । जब देश पर बाह्य आक्रमण हो उस समय देशभक्ति की भावना स्पष्ट नजर आयेगी ।

पाकिस्तान के आक्रमण के समय हमारे देश में देश प्रेम की भावना स्पष्ट रूप से देखी जा सकती थी । देश प्रेम व राष्ट्रीयता में सूक्ष्म अन्तर है ।

प्राचीन काल में देशभक्ति की भावना एक क्षेत्र विशेष तक ही सीमित थी। देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा था। अतः सीमा विशेष से घिरा हुआ क्षेत्र जो राज्य कहलाता था उसी के प्रति प्रेम की भावना ही देशभक्ति थी। परन्तु कालान्तर में इसका विकास हुआ। आज देश प्रेम की भावना अपने विस्तृत रूप में उभरकर सामने आयी। जन्मभूमि के प्रति प्रेम की भावना हमें प्राचीन ग्रन्थों में भी दिखाई देती है। विष्णु पुराण में भारत-भूमि के प्रति प्रे की भावना इस प्रकार प्रकट होती है :--

"गायन्ति देवा किल गीत कानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वमप्विगर्गास्पद मार्ग भूते भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात्।" [1]

प्रेम या राग हृदय पक्ष का भाव होने के कारण बाल्यावस्था से ही विद्यमान रहती है। पहले यह भावना कुटुम्ब तक ही सीमित रहती है परन्तु अवस्था बढ़ने के साथ तथा बुद्धि के विकास के साथ यह भावना ग्राम, नगर, राज्य, राष्ट्र भी अन्तर्राष्ट्र तक विस्तृत हो जाती है। देश प्रेम की भावना से ही प्रेरित होकर व्यक्ति राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहता है। डॉ० सुधीन्द्र देश प्रेम के अभाव में राष्ट्रीयता की कल्पना नहीं कर सकेत--"देश भक्ति, जन एकता और जन संस्कृति राष्ट्र की तीन पार्श्व हैं :-- परन्तु देश भक्ति आधारभूत है। उसके बिना राष्ट्रीयता की

1:-- विष्णु पुराण : अं० 2, अं० 3, श्लोक 34 ।

कल्पना नहीं की जा सकती ।"[1]

राष्ट्रीयता एवं सम्प्रदायवाद :--

राष्ट्रीयता एवं सम्प्रदायवाद आपस में विरोधी हैं राष्ट्रीयता की संकीर्ण परिधि सम्प्रदायवाद है । राष्ट्रवाद का निर्माण अनुकूल परिस्थितियों में होता है । यह राष्ट्रीयता का साधक तत्व है, जबकि सम्प्रदायवाद का आरम्भ प्रतिकूल परिस्थितियों में होता है । राजनीतिक तथ्य के रूप में सम्प्रदाय वाद का आरम्भ 19वीं शताब्दी में उभरी राष्ट्रीय भावना से सम्बन्धित है । वर्तमान भारत में सम्प्रदायवाद को अत्यन्त लोकप्रिय रहा है । कारण नस्ल धर्म एवं संस्कृति के वैभिन्यता के कारण यहाँ समय-समय पर नये सम्प्रदायों का सृजन करना कोई नई बात नहीं है । जब भी धार्मिक संस्कृतिक मतभेद उत्पन्न हुआ एक नये सम्प्रदाय का आरम्भ हुआ । भारत का विभाजन भी इसी साम्प्रदायिक मतभेद के कारण हुआ आज की धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाने पर साम्प्रदायिक टकराव उत्पन्न हो जाता है । अतः साम्प्रदायिकता की आँधी के धार्मिक एवं साँस्कृतिक स्वतन्त्रता हवा देती है । सम्प्रदायवाद राष्ट्रीयता का एक संकीर्ण रूप है । यह राष्ट्रवाद को पनपने देकर उसे छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित करके उसके एकत्व को नष्ट करने में सहायक होता है । कभी-कभी सम्प्रदायवाद इतना उग्र रूप धारण कर लेता है कि यह राष्ट्रवाद की सत्ता को उखाड़ फेंकता है और देश का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक ढाँचा ही बदल जाता है । अतः राष्ट्र की उन्नति एवं उसकी एकत्व को स्थापित रखने में सम्प्रदायवाद बाधक है ।

1:-- डा० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० - 236 ।

राष्ट्रीयता एवं साम्यवाद :--

साम्यवाद कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों पर आधारित है। यह रूस की राज्य क्रान्ति के पश्चात् सन् 1917 ई0 में प्रारम्भ हुई। इसका मूल सिद्धान्त वर्ग हीन समाज की सथापना करना है। विश्व की पूँजीवादी प्रक्रिया के फलस्वरूप इसका जन्म हुआ, अतः उसे मिटाकर वर्गहीन समाज की स्थापना इसका एक मात्र उद्देश्य है। साम्यवाद में जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण है। यह भौतिक आवश्यकताओं को सर्वोपरि स्थान देता है। साम्यवादी आज की व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं हैं। वे क्रान्ति लाकर सम्पूर्ण संसार में वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं। समस्त विश्व में मजदूर शासन हो तथा समानता का प्रसार हो यही साम्यवाद का मुख्य लक्ष्य है।

साम्यवाद सम्पूर्ण संसार को एक संतुष्ट रूप में परिणित करना चाहता है। एक वर्गहीन समानता के आधार पर शासन सत्ता की स्थापना करना। इसको वास्तविकता में परिणित करना अथवा मूर्तरूप प्रदान करना असम्भव नहीं तो कठिन कार्य अवश्य है। इसका सिद्धान्त मानव स्वभाव से मेल नहीं खाता। इसके अनुसार सम्पूर्ण समाज में दो वर्ग हैं--पूँजीवाद और मजदूर वर्ग। साम्यवाद की सीमायें हैं, जिससे यह अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर बढ़ने में असमर्थ है। इसी कारण आज सभी साम्यवादी राष्ट्र अपनी भौगोलिक सीमा में घिरे हैं। अपने अपने उच्च आदर्शों एवं श्रेष्ठ सिद्धान्तों के बाद भी साम्यवाद लोक प्रिय नहीं हो सका।

इसके विपरीत राष्ट्रीयता का क्षेत्र विस्तार अधिक व्यापक है। राष्ट्रीयता व्यक्तिके हृदय पक्ष का भाव होने के कारण व्यक्ति के रागात्मक प्रवृत्ति के साथ इसका सहज ही सामंजस्य हो जाता है। राष्ट्रीयता व्यक्ति को श्रेणियों में विभाजित नहीं करती। यह एक विशेष भू-भाग में रहने वाले लोगों के उन्नति व विकास पर विशेष महत्व देता है। राष्ट्रीयता एक प्रकार की चेतना है जो राष्ट्र के निवासियों में विद्यमान रहती है। देश-प्रेम राष्ट्रीयता का एक अंग है।

साम्यवाद और राष्ट्रीयता में समानता की अपेक्षा विषमता अधिक है। राष्ट्र के अस्तित्व के बिना जिस प्रकार राष्ट्रीयता सम्भव नहीं उसी प्रकार जहाँ राष्ट्र के प्रति प्रेम मोह ममत्व हैं वहाँ साम्यवाद सम्भव नहीं। दोनों के मूल सिद्धान्तों में और विचार धाराओं में अन्तर है। अपनी रूढ़ियों एवं भौगोलिक सीमाओं में युक्त साम्यवादी राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर बढ़ने में असमर्थ है। अतः राष्ट्रीयता व साम्यवाद दो विपरीत विचार धारा है जो परस्पर मिल नहीं सकती।

राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता :--

अन्तर्राष्ट्रीयता का क्षेत्र राष्ट्रीयता से विस्तृत है और राष्ट्रीयता का क्षेत्र सीमित है। अन्तर्राष्ट्रीयता के मूल में मानवता वाद विश्व-बन्धुत्व की भावना है। राष्ट्रों की सीमाओं की परिधि से दूर सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति अपनत्व उसके कल्याण, उसके विकास की ओर उन्मुख ही अन्तर्राष्ट्रीयता है अन्तर्राष्ट्रीयता समाज के लिए आदर्श भाव

है इससे संघर्ष समाप्त होगा । उच्च शक्तियों वाले राष्ट्रों को नियन्त्रित करना, कमजोर व विकासशील राष्ट्रों की उन्नति शक्तिशाली राष्ट्र अपनी शक्ति का दुरुपयोग न करें इन सबमें अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना सहायक है जबकि राष्ट्रीयता एक राष्ट्र विशेष के निवासियों द्वारा स्व-राष्ट्र के लिए अनुराग की भक्ति भावना है । एक निश्चित भू-भाग पर बसने वाले जन, जन-संस्कृति, शासन की एकता, आर्थिक एकता, राजनैतिक एकता आदि अनेक तत्व राष्ट्रीयता में समाहित हैं । इसमें मानवतावादी भावना का अभाव है किन्तु यह भावना जाति जातीय संस्कृति, धर्म, इतिहास, परम्परा, अर्थनीति राजनीति से बँधकर सीमित हो जाती है । राष्ट्रीयता का संकुचित रूप उस समय और उभर कर सामने आ जाता है जब युद्ध आदि के समय में दूसरे राष्ट्र उसमें बसने लोगों उनके धर्म, उनकी, संस्कृति सबके प्रति घृणा की भावना रखते हैं । उनकी आपसी विद्वेष उनकी आपसी घृणा इतनी बढ़ जाती है कि वे एक दूसरे को हानि ही पहुँचाना चाहते हैं । इस समय राष्ट्रीयता शब्द निश्चित भू-भाग उसमें बसने वाले लोगों तक ही सिमटजाती है ।

अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना पश्चिम के लिए भले ही नवीन हो, परन्तु भारतीयों के लिए यह नवीन नहीं है । हमारे देश में वैदिक काल से ही मानवतावादी एवं मानव-कल्याण की भावना को श्रेष्ठ माना गया है । सभी मनुष्यों के कल्याण एवं मंगल की कामना की गयी है :—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेः सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु या कश्चिद् दुखभाग भवेत् ।।

वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीयता शब्द का निर्धारण 18वीं शताब्दी में हुआ । "अन्तर्राष्ट्रीयता विधि" और अन्तर्राष्ट्रीयता इन शब्दों को एक निश्चित बोधकता जेरेमी बेन्थम के द्वारा दी गयी ।

भारतीय साहित्य में अन्तर्राष्ट्रीयता शब्द का प्रयोग तो नहीं हुआ परन्तु इसके मूलभूत विचारों को लोगों में साहित्य में अवश्य देखा जा सकता है । भारत सदैव से ही मानवकल्याण, प्राणिमात्र के उत्थान पर विशेष प्रयत्नशील रहा है ।

विश्वबन्धुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श को सामने रखकर भारत आज विश्व के सभी राष्ट्रों को शान्ति एवं आदर्श का मार्ग दिखाना चाहता है जिससे अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास हो । उसके अनुसार —

"अयं निजः परोवेत्ति गणना लघु चेतसाम्

उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्"

के मन्त्र को मानने वाले अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना को प्रकट करते हैं । धार्मिक संस्थायें अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास में विशेष सहयोग देती हैं । इनका उद्देश्य मानव कल्याण एवं विश्व कल्याण की भावना रहता है । भारत में बौद्ध धर्म आदि का प्रसार राष्ट्रीयता की परिधि से बाहर निकलकर किया गया ।

आर्थिक विकास एवं उद्योगों के प्रसार ने भी अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना को सहयोग दिया है । आर्थिक दृष्टि से विश्व स्तर पर समस्त राष्ट्र एक इकाई प्रतीत होता है । विज्ञान के प्रसार एवं संचार साधनों की सुविधा से समय व दूरी पर नियन्त्रण हो जाने से यदि एक राष्ट्र अपने द्वारा उत्पादित माल को विश्व बाजार में बेचना चाहता है तो राष्ट्रों का संगठन हो उसके आर्थिक विकास में सहायक होगा । उद्योग-धन्धे के प्रसार से एक राष्ट्र अपनी पूँजी दूसरे राष्ट्र में लगाकर अपने आर्थिक विकास को बढ़ा सकता है । आपसी सहयोग एवं सद्भाव से आपसी संघर्ष को रोका जा सकता है ।

आज मानव को सबसे अधिक खतरा युद्ध से है । प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका देखकर सभी राष्ट्रों तृतीय विश्वयुद्ध का खतरा बना हुआ है । सभी एक दूसरे से भयभीत है । उन्हें अविश्वास की नजर से देखते हैं । तथा अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ा रहे हैं । अतः वर्तमान युग में अन्तर्राष्ट्रीयता विश्वशान्ति के लिए आवश्यक है कि सभी राष्ट्रों में सद्भाव हों तथा सभी मिलकर यह प्रयत्न करें कि आपस में संघर्ष न हो । इस दिशा में प्रयास भी हुए हैं । 'लीग आफ नेशन्स' तथा 'संयुक्त राष्ट्रसंघ' की स्थापना विश्वशान्ति हेतु की गयी है । अन्तर्राष्ट्रीयस्तर पर अनेक सामाजिक, धार्मिक संस्थायें भी विश्वशान्ति एवं मानव कल्याण हेतु कार्यकर रही हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना को बुद्धिजीवी वर्ग का तथा आदर्श विचार धाराओं वाले चिन्तकों का समर्थन प्राप्त है । परन्तु इस

संदर्भ में यह चिन्ता का विषय है कि सभी राष्ट्रों में एकता सम्भव है। कुछ राष्ट्र प्रजातन्त्र हैं तो कुछ राज-तन्त्र, कुछ साम्यवादी हैं तो कुछ अधिनायकवादी सबके विचार अलग हैं, सिद्धान्त अलग हैं, क्रिया-कलाप अलग हैं, फिर क्या वे आपस में संगठित हो सकेंगे, सहयोगात्मक ढंग से रह सकेंगे। यदि उनमें एकीकरण हो, उग्र राष्ट्रीयता का विरोध हो तो अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार होगा। उग्र राष्ट्रीयता में केवल अपने राष्ट्र का हित चिन्तन तथा विदेशियों को शत्रु समझना अन्तर्राष्ट्रीयता में बाधक है। यदि इसे त्याग दिया जाय तो राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता में कोई विरोध नहीं होगा।

राष्ट्रीयता और प्रान्तीयता या क्षेत्रीयता :—

प्रान्तीयता या क्षेत्रीयता की भावना भी जातिवाद की तरह संकीर्ण भावना है। राष्ट्रीयता की भावना व्यापक है। जिस भूमि पर हमारा जन्म हुआ उसके प्रति अनुराग स्वाभाविक जन्मभूमि के प्रति प्रेम राष्ट्रीयता का मौलिक सिद्धान्त है। जब यह प्रेम स्वस्थ हो तो यह राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ाता है, उसे तीव्र एवं उदात्त बनाता है, परन्तु जब यह जन्मभूमि का प्रेम सिमट कर परिवार, गाँव, नगर व प्रान्त की सीमा में आ जाता है तब संकीर्ण प्रान्तीयता या क्षेत्रीयता की भावना जागृत होती है। यह भावना राष्ट्रीयता के लिए बाधक है क्योंकि इसमें व्यक्ति का दृष्टिकोण समग्र राष्ट्र के हित से हटकर प्रान्त विशेष या क्षेत्र-विशेष तक ही सीमित होता है

और उसके लिए क्षेत्र या प्रान्त का उत्थान उसके विकास तक ही उसका अनुराग रहता है । इससे राष्ट्र खण्ड-खण्ड में बँट सकता है । राष्ट्र का निर्माण प्रान्तों से होता है । अतः राष्ट्र के समग्र रूप छोड़कर जब प्रान्त प्रेम जागृत हो तो राष्ट्र के खण्डित होने का खतरा उत्पन्न होता है । प्रान्तों में घृणा भाव उत्पन्न होगा जिससे गृहकलह को प्रश्रय मिलेगा ।

भारत आज कल प्रान्तीयता एवं क्षेत्रीयता के संकट से गुजर रहा है । अनेक प्रान्त संघर्ष करके स्व हित की बात सोच रहे हैं । कुछ अलग होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाना चाह रहे हैं । भारत की अखण्डता के लिए यह भावना खतरनाक है । अतः राष्ट्रीयता की अस्मिता की रक्षा हेतु प्रान्तीयता एवं क्षेत्रीयता को प्रश्रय न दिया जाय किसी भू-खण्ड विशेष के प्रति प्रेम न हो अन्यथा देश की राष्ट्रीयता को हानि है ।

सारांश में राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीयता को परिभाषित करने के पश्चात् यह कहना अधिक समीचीन होगा कि.......... जिनकी भाषा, साहित्य, इतिहास, आर्थिक हित, नस्ल, देश, धर्म, राजनीतिक आकांक्षायें और आदर्श एक हों, जब ऐसी राष्ट्रीयता राजनैतिक एकता और स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेती है तो वह राष्ट्र कहलाने लगती हैं ।

भारत अपने प्राचीन काल की समृद्धि एवं स्वतन्त्रता को लम्बी परतन्त्रता के अंधकार में गँवा चुका था । राष्ट्रीयता के अभाव एवं

एकता के अभाव में भारत पहले इस्लाम का फिर अंग्रेजों का गुलाम रहा । परतन्त्रता को यह लम्बी काली साया सैकड़ों वर्षों तक छायी रही तथा भारतीयों के मानस को जड़वत बनाती रही । 18वीं शताब्दी में जब भारत का सम्पर्क विश्व की राजनैतिक गतिविधियों से धीरे-धीरे प्रारम्भ हुआ तो उसने यह अनुभव किया कि विदेशी शासकों के शोषण से उसका जन जीवन निरन्त अवनति की ओर जा रहा है । इस अवनति से मुक्ति उन्हें स्वशासन से ही प्राप्त हो सकेगी । अतः 19वीं शताब्दी में राजनैतिक मंच से स्वशासन की मांग को ब्रिटिश सरकार के सामने रखा गया । अनेक कठिनाइयों एवं लम्बे संघर्षों के पश्चात् भारत स्वतन्त्र हुआ । एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में विश्व रंगमंच पर उदित हुआ ।

परन्तु इस सद्यः प्रसूत शिशु राष्ट्र के समक्ष अनेक बाधायें एवं कठिनाइयां थी । सैकड़ों वर्षों की परतन्त्रता एवं शोषण ने उसको सांस्कृतिक, आर्थिक क्षति पहुंचाया था । देश को पुनः पाल-पोषकर जवान करना था जो एक कठिन एवं चुनौतीपूर्ण कार्य था । फिर भी हमारे बुद्धिजीवी राजनैतिक नेता, समाजसुधारक एवं विचारक इस कार्य में संलग्न हुए । उनके अथक प्रयासों से आज 20वीं शताब्दी के अन्त तक भारत एक शक्तिशाली परन्तु विकासशील राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित करने में सफल रहे हैं । यद्यपि अभी अनेक कठिनाइयां हैं फिर भी भारत की उन्नति निर्बाध है, उसे एक सशक्त राष्ट्र के रूप

में उभर कर पुनः खड़ा है। उत्थान वविकास के इस मार्ग पर साम्प्र-दायिकता प्रान्तोयता, जातियता, क्षेत्रोयता को भावना पुनः रोड़े अटका रही है । हमें इन सब पर विजय प्राप्त करके एक अखण्ड राष्ट्र के रूप में भारत को प्रतिष्ठित करना है । हमारी राष्ट्रोयता केवल देशकाल को सोमाओं में आबद्ध होकर न रह जाय बल्कि विश्व कल्याण एवं विश्वबन्धुत्व को भावना को भी प्रसार मिले ऐसा प्रयत्न करना होगा । हमारे समाज-सुधारकों, विचारकों, राजनैतिक नेताओं बुद्धि जीवियों का यही प्रयास रहा है कि अन्तर्राष्ट्रोय शान्ति स्था-पना हेतु एक अहं भूमिका निभायें । महात्मागाँधी द्वारा अहिंसा एवं विश्व बन्धुत्व को भावना का प्रसार पंडित जवाहर लाल नेहरू का शांतिदूत बनकर पंचशील के सिद्धान्तों द्वारा विश्व शान्ति का प्रयास, भारत का संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य होना, गुट निरपेक्ष राज्यों का नेतृत्व करना आदि अनेक प्रयास विश्वकल्याण एवं विश्वशान्ति हेतु अन्तर्राष्ट्रोय स्तर पर भारत राष्ट्र द्वारा किया जा रहा है । जिससे भारत का हो नहीं सम्पूर्ण विश्व का कल्याण सम्भव है ।

'राष्ट्रीयता' का अर्थ ऐसी भावना से है जो व्यक्ति को अपने राष्ट्र के लिए उच्चकोटि के शौर्य तथा बलिदान के लिए प्रेरणा देने वाली सामूहिक भावना को एक ऐसी उच्चतम् अभिव्यक्ति प्रदान करती है जिसका संसार के इतिहास निर्माण में बहुत बड़ा हाथ है । राष्ट्रीयता एक मानसिक अनुभूति अथवा मन की एक स्थिति है । सामान्यतः जीवनयापन करने की समान पद्धतियाँ समान परम्परायें समान आकांक्षाएं, समान आर्थिक उद्देश्य, समान इतिहास होने से समान परम्परायें, समान आकांक्षायें, समान आर्थिक उद्देश्य, सान इतिहास होने से शीघ्र राष्ट्रीयता की भावना का विकास होता है । भारतीय विद्वान अरविंद घोष ने राष्ट्रीयता को कोई राजनीतिक कार्यक्रम नहीं वरन् भगवान से आया हुआ धर्म माना है ।

राष्ट्रीयता के कारण समाज में ऐसी स्नेहशीलता निर्माण हो जाती है जिसकी वजह से लोग एक सूत्रता में बन्द होते हैं । राष्ट्रीयता के लिए देश की अथवा राज्य की इकाई होना आवश्यक है । यह बात अलग है कि विभिन्न युगों में देश अथवा राज्य की सीमायें घटती बढ़ती रहती हैं । इन सीमाओं के अनुपात में ही राष्ट्रीयता के अर्थ में अन्तर हो जाता है । "राष्ट्रीयता के कारण ही जन्मभूमि को स्वर्गादपि गरीयसी मानकर एक भावनात्मक लगाव उसके प्रति रहता है । वस्तुतः रास्ट्र के सब मानवों की एकता ही राष्ट्रीयता की आधार शिला है । राष्ट्रीयता की भावना निर्माण होने के पश्चात् कुछ दिनों में दृढ़ हो जाती है ।

भारत में राष्ट्रीयता के रूप में संयुक्त कुटुम्ब की भावना महती रूप में विद्यमान है । ऋग्वेद में ऐसी भावनाओं के दर्शन किये जा सकते हैं :—

'संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मानांसि जानताम्
देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।" [1]

तात्पर्य यह है कि हम सब की गति एक प्रकार की हो । हम एक साथ चलें । हम एक प्रकार की वाणी बोलें । हम सबके मन में एक प्रकार के भाव प्रकट हों । जैसे देवता पहले से करते आये हैं उसी प्रकार समान भाव करो ।

अथर्ववेद के 'पृथ्वीसूक्त' के अनेक सूत्र राष्ट्रीयता के परिचायक हैं । धरती को जन्मदायिनी एवं कल्याणी माँ के रूप स्वीकार करके उसकी प्रशंसा की गई है । इसमें देश के भौगोलिक सौन्दर्यके साथ पशु-पक्षी एवं विविध धर्म तथा भाषा के लोगों की शुभकामना की गयी है।"[2] आर्य लोग वैविध्य को एक ही स्रोतस्विनी की विभिन्न जल धारायें मानकर एकता की पवित्र गंगा में विलीन होने की मंगलकामना करते थे । उनकी भावनाओं का मूल लोककल्याण और सर्वोदय की भावना से अनुप्राणित था । अथर्ववेद में "अभिवर्धताम् पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम" [3] अर्थात मनुष्य दुग्धादि पदार्थों से बढ़े, राज्य से बढ़े कहकर व्यक्ति और राज्य की समृद्धि की कामना की है ।

1:— ऋग्वेद : 10/19.1/21 ।
2:— पृथ्वी सूक्त
3:— अथर्ववेद : 6/78/21

'अट्टक सूत्रावलि' के स्नान प्रसंग में उत्तर से दक्षिण तक की सभी नदियों का स्मरण विशाल भावनाओं का परिचायक है ।

उत्तर से दक्षिण के पर्वतों को भारत माता के विशाल देह की पसलियाँ और रीढ़ की हड्डी माना है तथा अयोध्या से लेकर काँची, अवन्तिका और द्वारका जैसे यात्राधामों को मोक्ष दिलाने वाले स्थान मानकर पूरे भारत को महत्व प्रदान किया है ।

इन उल्लेखों में विशाल राष्ट्रीयता की कल्पना मिलती है । ईश्वर की वन्दना के साथ-साथ राष्ट्र की बन्दना हमारी संस्कृति की विशेषता रही है । भारतीय सिद्धान्त के अनुसार धर्म और संस्कृति हमारी राष्ट्रीयता के प्राणाधार रहे । बाल्मीकि, व्यास, भवभूति, कालिदास आदि के साहित्य में राष्ट्रीयता का यही रूप मिलता है । भारत की एक सूत्रता के विषय में 'संस्कृति के चार अध्याय' में दिनकर जी ने भारत की प्राचीन राष्ट्रीयता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है :--

"उत्तर को आर्यों का देश और दक्षिण को द्रविड़ों का देश समझने का भाव यहाँ अभी नहीं पनपा । क्योंकि आर्य और द्रविड़ नाम से दो जातियों का विभेद यहाँ हुआ ही नहीं था । समुद्र से उत्तर और हिमालय सेदक्षिण वाला विभाग यहाँ हमेशा से एक देश माना जाता रहा है ।" [1]

1:-- संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर पृ० - 67-68 ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वेदों, पुराणों और शास्त्रों में राष्ट्रीयता का जो स्वरूप उपलब्ध है उसमें भारत की अखण्ड भौगोलिक एकता, धार्मिक एकसूत्रता और सांस्कृतिक गरिमा के दर्शन होते हैं। जन्मभूमि को स्वर्ग से भी महान मानने के साथ-साथ अन्य देशों के प्रति जो सद्भावना और अनाक्रमता की भावनाएं अंकित हैं वे अन्तर्राष्ट्रीयता की पोषक हैं।

राष्ट्रीयता का स्वरूप :--

राष्ट्र के प्रति तीव्र अपनत्व एवं ममत्व की भावना में राष्ट्रीयता का जन्म हुआ है और आज राष्ट्रीयता एक प्रबल शक्ति एवं प्रभावशाली प्रेरणा है। प्रगत और अप्रगत राष्ट्रों के इतिहास से देखा जा सकता है। इस भावना ने अपूर्व कार्य किया है। इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी आदि यूरोपीय राष्ट्रों में जो आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक क्रांति के प्रयोग हुए उनके पीछे न्यूनाधिक मात्रा में राष्ट्रीयता की भावना ही कार्यरत थी। सांप्रत काल में एशिया और अफ्रीका में अथवा अप्रगत राष्ट्रों में सामाजिक पुनरूत्थान की जो प्रचंड लहर व्याप्त हो रही है, उसका प्राणतत्व राष्ट्रवाद है। वर्तमान कालीन शोषण एवं बर्बर जगत से सुरक्षा पाने के लिए राष्ट्रवाद का ही आश्रय लेना पड़ता है। राष्ट्रीयता का प्रसार रोकने में सोशलिस्ट अथवा कम्युनिस्ट राष्ट्र भी असफलरहे। द्वितीय विश्व युद्ध §1939-1945§ के समय तो साम्यवादी स्टालिन को भी रूस की राष्ट्रीयता तथा रूस के अतीत गौरवगान से राष्ट्र को प्रेरणा प्रदान करने का कार्य करना पड़ा। आज चीन, रूस आदि कम्युनिस्ट राष्ट्र मार्क्स के सिद्धान्तानुसार विश्ववादी न बनकर अधिकाधिक राष्ट्रवादी बनकर राष्ट्रवाद को प्रधानता दे रहे हैं।

'राष्ट्रीयता' तो एक ऐतिहासिक अद्भुतता है और राजनीतिक कल्पनाओं से तथा सामाजिक संगठनों से उसका स्वरूप निर्धारित किया जा सकता है, जिसमें उसकी जड़ें जमीं हुई हैं। राष्ट्रीयता का सम्बन्ध

बाह्य शरीर अथवा जड़भूमि मात्र से न होकर आन्तरिक होता है । अपने देश के अगाध प्रेम में, अपनी संस्कृति सभ्यता एवं धर्म के प्रति गौरव में अपने देश की सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक दशाओं में सुधार के प्रयत्न आदि में यह राष्ट्रीय भावना प्रस्फुटित होती है । राष्ट्रीयता का कार्य व्यापक समाज में चलता है, जिसकी उपेक्षा अथवा महत्ता अमान्य नहीं की जा सकती । राष्ट्रीयता एक ऐसी भावना है जो जन्म के साथ ही पैदा होती है और जिसका सम्बन्ध रागात्मिका वृत्ति से होता है । राष्ट्रीयता एक ऐसा सामूहिक भाव है । राष्ट्रीयता की यह भावना कभी-कभी इतनी वेगवती हो जाती है कि वह लाख बंधन-बाधाओं को लांघती हुई अपने लक्ष्य की ओर तब तक अग्रसर होती रहती है जब तक वह अपनी इष्ट सिद्धि को प्राप्त नहीं कर लेती । राष्ट्रीय भावना की पराकाष्ठा तब होती है जब किसी राष्ट्र विशेष पर कोई बलपूर्वक आक्रमण करता है । उस समय उस देश के सदस्यों में एकत्व की भावना सुदृढ़ हो जाती है और वे भेद-भाव मिटाकर परकीयों के सतत् संघर्ष करने के लिए उद्यत हो जाते हैं और विरोधियों से लोहा लेने के लिए बड़े से बड़ा त्याग और बलि-दान करना अपना कर्तव्य समझते हैं । जीवित रहते उनकी मातृभूमि को कोई आँख उठाकर भी देख नहीं सकता, उस भू-भाग पर रहने वाले लोगों को पीड़ित नहीं कर सकता तथा उनकी संस्कृति एवं सभ्यता को कोई पद दलित नहीं कर सकता ऐसी दृढ़ धारणा उनके मन में जाग्रत

हो जाती है । चीन और पाकिस्तान ने जब भारतीयों पर आक्रमण किया तो भारतीयों की राष्ट्रीय भावना चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी थी ।

इतिहास के साथ ही राष्ट्रीयता के अर्थ में परिवर्तन आता है । राष्ट्रीयता के भिन्न-भिन्न अर्थ किये जातेहै । उदारतावादी ब्रिटिश स्वातन्त्र्य एवं मुक्ति को राष्ट्रीयता का अंग समझते हैं । जर्मन नाजी, आक्रमण और जनतन्त्र के विरूद्ध राष्ट्रवाद को शस्त्र समझते हैं किन्तु आज हमारे जीवन में राष्ट्रीयता की भावना एक अत्यन्त प्रबल शक्ति हो गयी है । व्यक्ति, परिवार, संप्रदाय और संकुचित धर्म भावना, इस नूतन राष्ट्रवादी सर्वव्यापक सर्वग्राह और सर्वमान्य भावना के सामने गौण और तुच्छ हो रही है । आधुनिक राष्ट्रवाद ही धर्म का स्थान ग्रहण कर रहा है । इस चेतना ने हमें अपने विशाल और भव्य रूप की कल्पना करना सिखाया है और देश के दुख दारिद्र्य, अशिक्षा, अज्ञान, अशक्तता और अधोगति के कारणों को नष्ट कर देने की प्रबल प्रेरणा को हमारे हृदय में उत्पन्न करने का श्रेय भी इसी को है । संक्षेप में राष्ट्रीयता ने न केवल जनसमुदायों के भावनाओं को प्रभावित किया, बल्कि मानवता के बौद्धिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं आर्थिक सम्बन्धों को प्रभावित किया है ।

राष्ट्रवाद के दो रूप हैं :— एक शाश्वत दूसरा सामयिक शाश्वत रूप को हम राष्ट्रवाद का सांस्कृतिक पक्ष कह सकते हैं, इसमें

राष्ट्र के नैतिक और सांस्कृतिक तथ्यों का समावेश होता है । सामयिक रूप को हम राष्ट्रवाद का ऐतिहासिक पक्ष कह सकते हैं । राष्ट्र की प्रगति की दिशा में समाज के भौतिक तत्वों का विकास 'सामयिक' रूप के अन्तर्गत आता है ।

भारतीय राष्ट्रीयता की अपनी अलग विशेषता है । प्रथमतः हमारी राष्ट्रीयता अहिंसात्मक है । "हमारी राष्ट्रीयता रंग-भेद-जातिभेद, धर्म और सम्प्रदाय पर आश्रित नहीं है । वह सत्य अहिंसा और समग्र एवं स्वतन्त्रता की एक ध्येयता पर आश्रित है । 'जियो हाँ और जीने दो' हमारे पंचशील का मूलसूत्र है । हमारी राष्ट्रीयता अनेकता में एकता लाने के लिए है । हमारी राष्ट्रीयता ने 'सर्वे बद्राणि पश्यन्तु' का पाठ पढ़ाया है और वह विश्वमैत्री पर आधारित है । " [1]

हमारी आधुनिक राष्ट्रीय चेतना का बौद्धिक अंश तर्क, मिल, ग्लैडस्टन और लिंकन के द्वारा निर्मित हुआ है और भाव प्रधान अंश रूसो और मैजिनी के द्वारा अपनी राजनीतिक पद्धतियों के लिए हम अमरीका क्रान्ति, इटली के नेताओं प्रमुखतः गैरीबाल्डी और आइरश राष्ट्रवादियों के ऋणी बनें ।

1:— बाबू गुलाबराय - राष्ट्रीयता (प्रथम संस्करण 1961), पृ० - 15 ।

अमरीका फ्रांस इटली और आयर्लैंड की ओर हमारी दृष्टि बराबर लगी रहीं । एक प्रकार से हमारी राष्ट्रीय-चेतना सर्वग्राही और सामाजिक रही है ।" [1]

तात्पर्य यह है कि प्राचीन काल से ही भारतीय राष्ट्रीयता सहिष्णु, सर्वग्राही-सर्वसमविशाक, सर्वव्यापक, अनासक्त, वंश, जाति, धर्म-हीन तथा सामासिक रही है । हमारी राष्ट्रीयता के आदर्श पात्र विश्वमैत्री, अन्तर्राष्ट्रीय एकता, विश्वबन्धुत्व समता, सहयोग आदि आत्मिक गुणों पर आधारित है । भारत के लिए राष्ट्रीयता विलास की वस्तु न होकर सदैव आवश्यकता की वस्तु रही है, वह हमारे अस्तित्व की नींव है । इस देश में राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण सदैव ही सांस्कृति से सम्बन्धित रहा है । इस प्रकार समन्वय पर आधारित भारतीय राष्ट्रीयता दुनियाँ में अपनी विशिष्टता का परिचय देती है

1:— डॉ० रामरतन भटनागर - निराला और नवजागरण, पृ० - 121 ।

राष्ट्रीय चेतना के उद्‌भव की स्थितियाँ :--

आदिम काल में राष्ट्र नाम की कोई संस्था नहीं थी । राष्ट्र का बोध एक निश्चित जाति समूह से होता था । प्रत्येक जाति-समेह की एक निश्चित जीवन प्रणाली, संस्कृति-भाषा सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थायें, धार्मिक धारणाएं, रीतिरिवाज तथा कलात्मक दृष्टिकोण थे । प्रत्येक जाति एक इकाई के रूप में श्रम या संघर्ष करती थी । इसलिए उसमें जातीय भावना दृढ़तर थी, उसमें आधुनिक राष्ट्रीय भावना नाम की कोई वस्तु नहीं थी । इससे यह नहीं अनुमान लगाना चाहिए कि उस समय राष्ट्रीय भावना किसी रूप में थी ही नहीं । राष्ट्रीयता विधायक तत्वों के आधार पर यह लक्षित होता है कि तत्कालीन जातीय भावना लघु राष्ट्रीयता के रूप में थी । यही भावना राष्ट्रीयता का मूल बिन्दु है । बर्नार्ड जोसेफ ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए बताया है कि 'प्राचीन संसार में' राष्ट्रीय भावना कम से कम देश भक्ति के आदिम रूप में वर्तमान थी ।

आदिम जातीय राष्ट्रीयता संशोधित एवं परिवर्तित होकर कालान्तर में प्रकट हुई । उसका रूप सार्वदेशिकतावाद या स्थानीयता-वाद के रूप में प्रकट हुआ । बहुतेरे व्यक्ति अपनी जाति से अलग अपनी जाति से उच्च वर्ग के समझे जाने लगे, क्योंकि उनमें आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अन्तर आ गया था । उनकी सर्वोच्च भक्ति
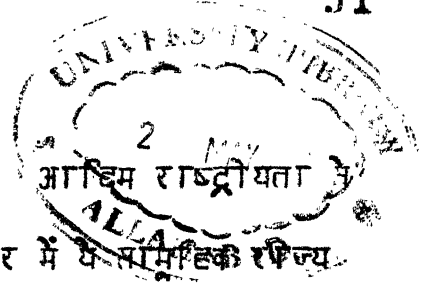
नगर राज्य या ग्राम के प्रति उन्मुख हुई । आदिम राष्ट्रीयता से इसका क्षेत्र अधिक विशाल था । कालान्तर में ये सामूहिक राज्य सामूहिक धर्म और सामूहिक संस्कृति के आख्याता तथा प्रतिष्ठापक बने । दृष्टिकोण को इस व्यापकता के कारण छोटे जन समूह या संकुचित रक्त सम्बन्ध के स्थान पर विशाल जन समूह के प्रति आस्था दृढ़ होती गयी ।

धीरे-धीरे राष्ट्र का उदय और विकास हुआ और सामूहिक लक्ष्य सिद्धि के आधार पर विशाल जन-समूह को इकाई उसकी भाषा संस्कृति, धार्मिक मान्यताआदि राष्ट्रीयता के मूल तत्व मानी जाने लगी । यह राष्ट्रीयता कृत्रिम एवं प्रचारित थी । इस प्रकार आधुनिक राष्ट्रीयता आदिम जातीयतावाद को बड़े पैमाने पर एक लक्ष्य के लिए किये गये प्रयत्न के द्वारा कृत्रिम रूप से उद्बुद्ध करना चाहती है ।

18वीं शताब्दी में अप्रत्याशित ढंग से राष्ट्रीयता का दर्शन हुआ । यह राष्ट्रीयता देशगत और औपनिवेशिक युद्ध की पृष्ठभूमि पर जन्मी । यह काल अशान्ति का था । यह युग बौद्धिक विकास का काल था । इसमें मान्यताएं बदलीं और अधिभौतिकता के स्थान पर भौतिक सत्ता का प्रभाव शुरू हुआ । इसका कारण यह था कि मनुष्य में तर्कशक्ति का उदय हुआ, इसके साथ ही मानवतावाद की भावना उत्पन्न हुई । इस मानवतावादी राष्ट्रीयता का संस्थापक रूसो हुआ । रूसो की राष्ट्रीयता का आधार जनतन्त्र था । उसका उद्देश्य मानवतावादी था । उसने कहा कि राष्ट्र असमान वर्गों का

समूह नहीं है बल्कि समान अधिकार एवं कर्तव्य वाले व्यक्तियों का संयोग है। इसलिए राष्ट्रीय राज्य पूर्णतः धर्म निरपेक्ष और सर्वोच्च प्रभुसत्ता सम्पन्न होता है। अतः रूसों की राष्ट्रीय भावना मूलतः राजनीतिक है।

फ्रांसीसी राष्ट्रीयता विदेशी और घरेलू युद्ध की भूमि पर पनपी। इसलिए शक्ति और सैनिक वाद पर इसका विश्वास था। यह सही है कि उसने राष्ट्रगीत, राष्ट्रीय झण्डा, राष्ट्रीय त्योहार आदि की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया, किन्तु उसके पीछे उसकी शक्ति ही विशेष रूप से लक्षित होती है। बण्टूडे बटेटे ने कहा कि—"स्वतन्त्रता का वृक्ष तब तक नहीं उगता, जब तक वह राजाओं के खून से सींचा नहीं जाता।" स्पष्ट है कि उन लोगों ने राष्ट्रीय उद्देश्य की सिद्धि के लिए सैनिक सहायता अपेक्षित समझी।

जर्मनी ने फ्रांसीसी राष्ट्रीय चेतना का विकास या विस्तार देखा। उन्होंने अपने देशवासियों में भी राष्ट्रीयता का विकास करने का निर्णय किया। उन्होंने फ्रांसीसी क्रान्ति का विरोध किया और नये आवरण में राष्ट्रीयता को उपस्थित किया। उनकी राष्ट्रीयता परम्परित राष्ट्रीयता (Traditional Nationalism) के नाम से अभिहित है। इस राष्ट्रीयता का आधार न तो तर्क था और न क्रांति थी, बल्कि इसकी मूल चेतना इतिहास और परम्परा पर अवलम्बित थी। रूसों द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीयता के स्वरूप से प्रत्येक जाति में एक निश्चित चरित्र का आविर्भाव होता है। परम्परित राष्ट्रीयता

ऐतिहासिक अधिकारों पर विश्वास करती है, प्रकृति अधिकारों पर नहीं । उसका अधिकार जनतांत्रिक प्रणाली नहीं, वरन् सामन्तवादी विचारधारा है ।

उदार राष्ट्रीयता ने फ्रांसीसी और परम्परित राष्ट्रीयता का माध्यम मार्ग ग्रहण किया । इसका विकास 18वीं शताब्दी में इंग्लैंड में हुआ, जहाँ की मूलवृत्ति समझौतावादी और घोर राष्ट्रीय आत्म-चेतनावादी रही है । बेन्थम ने अपनी बहुजन हिताय भावना के आधार पर कहा कि राष्ट्रीय देश-भक्ति अधिकाधिक जनता के उत्तमोत्तम हित का साधन है । उदार राष्ट्रीयता विकास वादी है प्रक्रियावादी नहीं ।

अखण्ड राष्ट्रीयता (Integral Nationalism)
राष्ट्रीय शक्ति के विस्तार और राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की रक्षा पर आधारित होती है । उसके लिए सैनिक शक्ति की अपेक्षा है, क्योंकि उसके समाप्त होने पर राष्ट्र नष्ट हो जाता है । यह मानवतावादी और उदार राष्ट्रीयता द्वारा प्रतिपादित अन्तर्राष्ट्रीयता के विरोध में थी यह स्वयं अपना साध्य थी । यह मानव और व्यक्ति से उपर राष्ट्रीय हित को समझती थी । यह सैनिकवादी और अन्ततोगत्वा साम्राज्यवादी थी । यह घोर अनुदार और अराजकतावादी भी थी ।

इस राष्ट्रीय चेतना के प्रतिपादकों ने कहा कि "राष्ट्र" भूमि और जाति से उत्पन्न होता है । अतः इसमें एक निश्चित परम्परा का विकास आवश्यक है । इस परम्परा से अलग होने का अर्थ है कि राष्ट्र

पर विदेशी प्रभाव है, जो अस्वाभाविक है तथा वास्तविक राष्ट्रीयता के लिये घातक है । अखण्ड राष्ट्रीयता का व्यावहारिक रूप विशेषतः इटली में प्रकट हुआ, जहाँ इसका नाम तानाशाही पड़ा । इसके समर्थकों ने पाशविक शक्ति पर अधिक विश्वास किया । इस शक्ति पूजा के कारण ही हेज ने जर्मन नाजीवाद और रूसी बोलशेविज्म को भी इस तानाशाही के अन्तर्गत ही बताया है । शारीरिक तथा सैनिक शक्ति की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए मुसोलिनी ने कहा है --"स्वतन्त्रता साध्य नहीं साधन है । साधन रूप में इस पर अवश्य ही नियन्त्रण तथा प्रभुत्व होना चाहिए । तब इसके लिए शक्ति की अपेक्षा है । शक्ति का तात्पर्य शारीरिक एवं सशस्त्र शक्ति है ।

उदार राष्ट्रीयता अखण्ड राष्ट्रीयता की ओर क्यों मुड़ी, इसके अनेक कारणों में से एक यह भी है कि उत्तर राष्ट्रीयतावादियों ने सैनिक वृत्ति अपनाई और दमित जातियों को बलपूर्वक एक सूत्र में बाँधा । इसका परिणाम यह हुआ कि शक्ति का स्रोत धीरे-धीरे राष्ट्रीयता में प्रवृष्ट होने लगा और कालान्तर में अखण्ड राष्ट्रीयता उत्पन्न हुई ।

भारत एक राष्ट्र है :-

'भारत राष्ट्र' की परिकल्पना सर्वप्रथम सन् 1906 ई0 में कांग्रेस के अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी ने की थी । उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में उपराज्य प्राप्त करना अपना उद्देश्य कहा । उनका कथन था कि-"स्व सरकार अथवा स्वराज्य संयुक्त सरकार की भाँति या कालोनीस की भाँति ही प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य है ।"[1] ...."हमारा सम्पूर्ण ध्येय केवल एक ही शब्द में निहित है अर्थात स्वराज्य ।"[2]

यद्यपि दादाभाई नौरोजी का, यह प्रस्ताव नया नहीं था उससे पूर्व लोकमान्य तिलक 'स्वराज्य हमारा' जन्म सिद्ध अधिकार है" की उद्घोषणा कर चुके थे । तथापि भारतीय मनीषियों एवं नेताओं ने इस समय से भारत को एक राष्ट्र के रूप में परिकल्पना की और उसकी एकता की अखण्डता वे स्वशासन के बारे में विचार किया तथा देश को पराधीनता की बेड़ी से आजाद कराने का संकल्प किया । उन्ही के प्रयासों के फलस्वरूप 15 अगस्त सन् 1947 ई0 को हमें पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति हुई । भारत राष्ट्र पर भारतीयों का शासन हुआ भारतपूर्ण रूप से एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में विश्व के मानचित्र में उभर कर आया । इसी समय से भारतीयों विद्वानों एवं राजनीतिक दिग्गजों ने देश की एकता एवं अखण्डता को सुरक्षित रखने के लिए एक केन्द्रीय सत्ता को महत्वपूर्ण माना । जो सम्पूर्ण राष्ट्र को परस्पर संगठित कर राजनीतिक एकता

1:-- डा0पी0आर0 साहनी - आधुनिक भारतीय संस्कृति का इतिहास पृ0 - 291 ।

2:-- वही पृ0 - 304 ।

प्रदान करें । प्रत्येक नागरिक को अपनी विचारधारा एक हो । इसके लिए उन्होंने प्रयास भी किया । ब्रिटिश शासन काल तथा उससे पूर्व भी देश अनेक छोटी-छोटी रियासतों में बंटा था । उनकी शासन सत्ता अलग-अलग थी । परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् उन्हें परस्पर विलय कर केन्द्रीय सत्ता में मिला दिया गया । शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए देश को छोटे-छोटे प्रान्तों में विभाजित करके एक केन्द्र के अधीन शासन व्यवस्था रखी गयी । अपनी विशिष्टता के कारण ही भारत एक राष्ट्र है । इसकी अपनी निश्चित भौगोलिक सीमा, अपनी विशिष्ट संस्कृति भाषा की एकता राष्ट्र की विशेषताओं की पूर्ति करता है । "राष्ट्र के कुछ आवश्यक तत्व बताये गये हैं । ये तत्व अति आवश्यक होते हुए भी अनिवार्य नहीं हैं ।"[1] मo सo गोलवल्कर ने भी राष्ट्रीयता की पाँच इकाइयाँ बताई हैं:- जो इस प्रकार हैं--भौगोलिक [देश], जातीय [जाति], धार्मिक [धर्म], संस्कृतिक [संस्कृति], भाषात्मक [भाषा] आदि ।"[2]

यद्यपि भौगोलिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, भाषिक एवं जातीय एकता किसी भी राष्ट्र के लिए आवश्यक है । यह 80% व उनका अक्षांश तथा 68.7 व 97.25 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थिति है । यह उत्तर से दक्षिण तक लगभग 3219 किलोमीटर लम्बा तथा पूर्व से पश्चिम तक लगभग 2977 किलोमीटर है । इसके उत्तर में विशाल पर्वतराज हिमालय है । जो विश्व का सर्वोच्च

1:-- गुलाबराय - राष्ट्रीयता - पृo-2 ।

2:-- मoसo गोलवल्कर - हमारी राष्ट्रीयता - पृo - 50 ।

पर्वत है, यह अपने देश को उत्तर सीमा पर स्थित है । इसकी लम्बाई लगभग 2414 किलोमीटर व चौड़ाई 240 से 320 किलोमीटर तक है । दक्षिण और पश्चिम की प्राकृतिक सीमायें हिन्दमहासागर व अरब सागर है । पूर्व में वर्मा एवं पश्चिम व पूर्व को सीमा पर बंगलादेश व पश्चिमी सीमा पर पाकिस्तान है । अपने देश को विशालता का अनुमान इसके विशाल क्षेत्रफल जो लगभग 3276141 वर्ग किलोमीटर है, से लगाया जा सकता है । वर्तमान में इसकी जनसंख्या 67 करोड़ के लगभग कही जा सकती है । क्षेत्रफल की दृष्टि से यह यूरोप के समतुल्य है । जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद इसका स्थान विश्व में दूसरा है ।

इस राष्ट्र के विभिन्न भागों की स्थिति, वहाँ की अवस्था तथा निवासियों के रहन-सहन में विविधता है । उत्तर में पर्वत श्रृंखलायें हैं तो दक्षिण भारत में भारत महासागर हिलोरें ले रहा है । दक्षिण भारत में पठार है तो उत्तरी भारत में गंगा ब्रह्म पुत्र सतलज, रावी, व्यास आदि नदियों की उर्वर भारी, जो भूमि को शस्य श्यामला बनाती है । राजस्थान में थार का लम्बा मरुस्थल है तो असम में विश्व का सबसे अधिक वर्षा वाला क्षेत्र चेरापूँजी है । भौगोलिक विविधता के साथ अलग-अलग स्थानों की जलवायु में भी विविधता है ।

इस विशाल देश में अनेक धर्मों के अनुयायी रहते हैं उनका खान-पान रहन-सहन, रीति रिवाज भाषा-वेशभूषा सभी अलग-अलग हैं । हिन्दू-मुस्लिम सिक्ख-इसाई, जैन, बौद्ध सभी धर्मों के अनुयायी यहाँ निवास करते हैं ।

लगभग अलग-अलग प्रान्तों की भाषा भी अलग-अलग है । पंजाबी, बंगाली, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलगू, मलयालम, असमी आदि अनेक भाषा भाषी लोगों का निवास है । अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों के व्यवसाय अलग-अलग हैं, आर्थिक स्थितियाँ अलग हैं । कहीं कृषि पर ही लोग आधारित है तो कहीं उद्योग धन्धों पर कहीं फलों का उत्पादन होता है तो कहीं कुटीर उद्योगों की प्रधानता है ।

इतनी विविधता हुए भी सम्पूर्ण देश में भौगोलिक सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक और भावात्मक एकता है। यही एकता हमारे राष्ट्र की शक्ति का मूल उद्गम है ।

भौगोलिक दृष्टि से भारत सदैव से एक राष्ट्र रहा है । हमारे पूर्वजों ने देश की एकता एवं अखण्डता को बनाये रखने के लिए धार्मिक एवं राजनैतिक प्रयास प्रारम्भ से ही किये हैं । देश के चारों दिशाओं में बने चारों धाम {आदि शंकराचार्य के चारों मठ} देश की अखण्डता के द्योतक हैं ।

प्राचीन काल से ही जब आवागमन के साधन अधिक विकसित नहीं थे, अनेक प्राकृतिक बाधाओं को पार करते हुए हमारे पूर्वजगण एक स्थान से दूसरे स्थान की तीर्थ यात्रायें करते थे । देश की एकता एवं अखण्डता के लिए चक्रवर्ती सम्राट चारों दिशाओं में अपनी विजय अभियान करते थे । वेदों, पुराणों, उपनिषदों आदि में भारत के जिस रूप का उल्लेख है उससे स्पष्ट होता है कि भारत प्राचीन काल से ही एक राष्ट्र है । पुराणों

में भारत को भौगोलिक एकता स्पष्ट रूप से वर्णित है--

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।

वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता के प्रतीक आज भी भारतीय स्नान के समय भारत की विभिन्न नदियों के नाम एक साथ लेते हैं --

गंगा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती ।

नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेस्मिनसन्निधकुरू ।।

यही नहीं देश की मोक्षदायिनी नगरियों की सूची में उत्तर तथा दक्षिण की नगरियों के नाम हैं:--

अयोध्या-मथुरा-माया काशी कांची अवन्तिका ।

पुरी द्वारावती ह्येया संप्तैते मोक्ष दायिका ।।

इस प्रकार प्राचीन काल से ही भारत एक अखण्ड राज्य रहा । पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने राष्ट्र के जो आवश्यक तत्व निर्धारित किये हैं उन सभी दृष्टियों से भी भारत एक राष्ट्र है । अब हम राष्ट्रीयता के उन मूल तत्वों के पृथक-पृथक विवेचन करेंगे जिससे राष्ट्र के वास्तविक स्वरूप का विवेचन हो सके ।

<u>भौगोलिक एकता :--</u>

एक निश्चित भौगोलिक सीमा व्यक्ति के मन में राग या प्रेम की भावना को दृढ़ बनाती है । एक भू भाग पर दृढ रहने के कारण

उसके प्रति राग होना स्वाभाविक है । जन्मभूमि के प्रति आकर्षण कोई नया नहीं है । अत्यन्त प्राचीन काल में श्रीराम का जन्म भूमि के प्रति प्रेम ही कहलाता है कि :--

"अपि स्वर्गमयी लंकन न मे लक्ष्मण रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वार्गादपि गरीयसी ।" [1]

{वाल्मीकि रामायण}

प्राचीन मनीषियों ने भी भूमि को माता तथा स्वयं को उसकी संतान कहा है :--

"माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्याः" [2]

रेमजेम्योर आदि विद्वान भौगोलिक एकता को आवश्यक तत्व नहीं मानते उदाहरण स्वरूप यहूदी, पारसी आदि जातियाँ हैं इनके पास अपना कोई भूखण्ड नहीं है । ये सम्पूर्ण विश्व में फैले हैं फिर भी अनेक वर्षों से ये अपनी राष्ट्रीयता एवं संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं । राष्ट्र को प्रभावशाली बनाने के लिए भूमि की एकता एवं अखण्डता का होना अनिवार्य नहीं परन्तु एक मुख्य तत्व अवश्य है । पाकिस्तान के पास भौगोलिक एकता न होने के कारण वहाँ के निवासियों को राष्ट्रीयता की भावना का निर्वाह करने में कठिनाई हुई, जिसके फलस्वरूप उसे दो अलग-अलग राष्ट्र में बंट जाना पड़ा और एक नवीन स्वतन्त्र राष्ट्र की स्थापना बंगला देश के नाम से हुई ।

1:-- वाल्मीकि रामायण

2:-- अथर्ववेद 2/1/92

जातीय एकता :--

जातीयता की भावना हमारे देश में प्राचीन काल से ही प्रबलतर रूप में विद्यमान रही है । आरम्भिक समाज व्यवस्था का आधार जाति ही थी । अलग-अलग जाति के लोग अलग-अलग कबीले या संघ में रहते थे । म0स0 गोलवल्कर जाति को राष्ट्रीयता का शरीर मानते हैं, उसके पतन के साथ ही राष्ट्र की सत्ता का पतन हो जाता है । जाति नस्ल का पर्याय है जो अपने राष्ट्र के लिए ममत्व या प्रेम की भावना रखती है । जाति उस समूह को कहते हैं जिसके सदस्यों में एक ही प्रवृत्तियाँ विद्यमान हों । समान संस्कृति, समान भाषा तथा समान ध्येय में बँधे हो तथा राष्ट्र की उन्नति में सहायक हों । जाति समान ध्येये में बँधे हो तथा राष्ट्र की उन्नति में सहायक हों । जाति का महत्व इस बात से भी लगाया जा सकता है कि कुछ राष्ट्रों के नाम जाति के आधार पर पड़े हैं--जैसे:- अफगानिस्तान, तुर्किस्तान आदि । राष्ट्र के विकास में जाति का महत्वपूर्ण योगदान है यह आवश्यक नहीं कि राष्ट्र में केवल जाति निवास करती हों । सभ्यता के विकास के साथ जातियों में विभाजन होता गया तथा एक राष्ट्र में कई-कई जातियाँ एक साथ निवास करने लगीं । उनकी अपनी सभ्यता, संस्कृति, अपनी वेशभूषा, रीति-रिवाज, पृथक-पृथक है, परन्तु वे आपस में इतनी घुलमिल गयी हैं कि बाहर से देखने में एक प्रतीत होती हैं । भारत देश में भी अनेक जातियाँ निवास करती हैं उनमें आपस में एकत्व भी है। पाकिस्तान चीन आदि के आक्रमण के समय यह एकता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती थी । उस समय समस्त जाति के लोग मिल

जुलकर देश की रक्षा मेंतत्पर रहे हैं उत्साह से देश के लिए प्राणोत्सर्ग करने की भावना सर्वोपरि थी ।

परन्तु कुछ आधुनिक विद्वान आज के इस प्रगतिशील समाज में जातीयता के बन्धन को सर्वोपरि स्वीकार नहीं करते । उनके अनुसार व्यक्ति-परिवार, समाज व जाति के संकुचित दायरे से निकलकर राष्ट्र या अन्तर्राष्ट्र के प्रेम की ओर बढ़ रहा है । जातीयता संघर्ष को बढ़ावा देती है व राष्ट्र की प्रगति में बाधक है। जातीय शुद्धता का दावा भी असम्भव है । एक जाति दूसरी जाति से इतनी घुल मिल गयी है कि उनमें शुद्धता का दावा करना निरर्थक ही नहीं असम्भव भी जान पड़ता है ।

भाषिक एकता :--

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक राष्ट्र भाषा होती है जिसपर प्रत्येक राष्ट्रवासी गर्व करता है । भाषा राष्ट्रीय एकता का एक प्रमुख साधन है । किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए उसकी एक राष्ट्र भाषा होना आवश्यक है । 1983 में दिल्ली में हुए तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेल्लन में महान कवीयत्री महादेवी वर्मा ने अपने भाषण में कहा कि--"भाषा के बिना राष्ट्र गूँगा होता है ।" भारतेन्दु बाबू हरिश्चिन्द भी निजभाषा की उन्नति में ही राष्ट्र का विकास मानते हैं --

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटै न हिय को सूल ।" [1]

1:-- सम्पा0 ब्रजरत्नदास -भारतेन्दु ग्रन्थावली 639 - भाग-2 ।

भाषा राष्ट्र की वाणी है विभिन्न जातियों को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य भाषा ही करती है। इसी के माध्यम से कोई जाति अपनी संस्कृति, आचार-विचार अन्य जाति को बताकर उनसे मेल मिलाप रख सकती है। बड़े राष्ट्र में अनेक भाषाएं बोली जाती हैं यही भाषा राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में सहायक होती है। इंग्लैंड तथा भारत जैसे विशाल राष्ट्र में अनेक जातियाँ निवास करती हैं। उनकी अपनी अलग-अलग भाषाएं हैं। परन्तु उस राष्ट्र की अपनी एक सर्वमान्य भाषा भी है, जो सभी के द्वारा बोली जाती है। इंग्लैंड में अंग्रेजी तथा भारत में हिन्दी बोलचाल के माध्यम की भाषा है। यह मातृभाषा भी है।

प्राचीन भारत की राष्ट्रभाषा संस्कृत थी। जो लम्बे समय तक देश में बोलचाल की तथा साहित्य की भाषा रही। यह देश में सांस्कृतिक एकता स्थापित करने में सहायक रही। आज भारत में बोली जाने वाली अन्य सभी भारतीय भाषायें संस्कृत से ही उत्पन्न हुई हैं। कुछ कालोपरान्त इसमें स्वयं ही परिवर्तन हो जाता है अतः भाषा की एकता असम्भव है।

तथापि भाषा राष्ट्रीयता की स्थापना के लिए आवश्यक तत्व है। इसी कारण जब शत्रु किसी राष्ट्र पर विजय प्राप्त करता है, तब उसके सम्पूर्ण विनाश के लिए सर्वप्रथम वहाँ की भाषा व साहित्य पर प्रहार करता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भाषा को संस्कृति

का प्रतीक मानते हैं । प्रत्येक राष्ट्रवासी अपनी भाषा पर गर्वकर सकता है ।

भाषा के माध्यम से देश की साहित्यिक सांस्कृतिक उन्नति सम्भव है । एक भाषा, भाषी आसानी से दूसरे के विचार को समझ लेते हैं तथा एक दूसरे के सुख-दुख में सहायक होते हैं । भाषा की एकता प्रान्तीयता की संकुचित भावना को समाप्त करती है । एक भाषा बोलने, समझने, एक पोशाक पहनने समान रीति रिवाज एवं परम्पराओं के पालन करने से आपसी प्रेम एवं साहचर्य की भावनाका विकास होता है जो राष्ट्रीयता के विकास में सहायक होता है । मा0स0 गोलवल्कर ने भाषा के महत्व को स्वीकारते हुए कहा है:--"भाषा जाति के जीवन में चारों ओर से अभिन्न रूप से बुनी हुई होने के कारण उसकी राष्ट्रीयता में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्त्व है । इसके बिना राष्ट्र की कल्पना अपूर्ण होती है ।" [1]

धार्मिक एकता :--

धर्म अध्यात्म की वस्तु है यह भी मनुष्य के हृदय पक्ष से सम्बन्धित है । आज 20वीं शती में धर्म को एकता में कोई महत्व नहीं रखती । लेकिन धर्म मनुष्य के सामाजिक जीवन को विशेष रूप से प्रभावित करके सामाजिक एकता स्थापित करने में सहायक हुआ है । धर्म समूह की चेतना

1:-- मा0स0 गोलवल्कर - हमारी राष्ट्रीयता, पृ0 - 49 ।

को जगाने में सहायक होता है । यूरोप आदि देश धर्म की एकता के कारण ही एक से हैं । भारत में धर्म की विभिन्नता प्राचीन काल से रही है । स्वतन्त्रता के पश्चात भारत एवं पाकिस्तान के विभाजन का कारण धार्मिक भावना ही थी । धार्मिक एकता के अभाव में भारत एवं पाकिस्तान आज दो राष्ट्र हैं । इनका विभाजन अंग्रेजों ने धर्म के आधार पर किया है ।

मुस्लिम देशों की एकता भी धार्मिकता के कारण है । यहूदी जाति अपनी धार्मिक एकता को आज भी अक्षुण्ण रखे हुए हैं । परन्तु धार्मिक एकता साम्प्रदायिकता को जन्म देती है । साम्प्रदायिकता अलगाववादी नीति पर आधारित है । धार्मिक स्वतन्त्रता के कारण भारत में समय-समय पर धर्म के नाम पर दंगे हुए, खून की नदियां बही । आज भी धर्म की आड़ लेकर स्वार्थी तत्व अपनी स्वार्थ सिद्ध करते हैं ।

वर्तमान समय में पंजाब एवं असम समस्या धार्मिक विभिन्नता के परिणाम स्वरूप हैं । इसके अलावा समय-समय पर हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगे भी धार्मिक विभिन्नत के कारण ही होतीरहे हैं ।

आधुनिक युग में धर्म का कोई महत्व नहीं है । राष्ट्र ही सर्वोपरि है । तथापि धर्म की एकता राष्ट्रीयता की भावना को अधिक दृढ़तर करती है ।

प्राचीन भारत में भी धर्म-अर्थ, काम, मोक्ष चार जीवन के आयाम बताये गये हैं । इनमें धर्म को ही सबसे अधिक महत्व दिया गया है । धर्म समाज व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने में सहायक होता है । व्यक्ति की पाशविक एवं क्षुद्र भावनाओं के दमन में धर्म सहायक है । समाज में फैली अव्यवस्था पापाचार पर धर्म अंकुश रखता है । आधुनिक समाज में शिक्षा के प्रसार से धर्म एक दिखाऊ वस्तु रह गयी है । सम्भव शिक्षित व्यक्ति धर्म के खोखले पन को पहचान चुका है । अब धर्म मात्र आभूषण की वस्तु रह गया है ।

आर्थिक आकांक्षा की एकता :--

मनुष्य एक भौतिकप्राणी है । अतः भौतिक साधनों के माध्यम से इसे एकता के रूप में आसानी से बाँधा जा सकता है । आधुनिक युग के जीवन में अर्थ का शासन अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है । जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विनिमय के साधन के रूप में अर्थ की आवश्यकता स्वयं सिद्ध है । राष्ट्रीयता के विकास के सन्दर्भ में फ्रान्स की क्रान्ति की चर्चा की जा चुकी है । सामन्तवादी प्रथा समाप्त कर राष्ट्र की समृद्धि के लिए पूँजीवादी व्यवस्था को अपनाने में संकोच न करना, राष्ट्रीयता के प्रति लोगों के प्रबल आकर्षण का प्रमाण है । भारत में राष्ट्रवाद का विकास आर्थिक शोषण के विरोध से ही प्रारम्भ हुआ । राष्ट्रीय चेतना के उदय में समान आर्थिक आकांक्षायें एक प्रबल शक्ति के रूप में कार्य कर रही थी । व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय

तो एक जैसो आर्थिक स्थिति रखने वालों के समूह को राष्ट्रोय भावना अधिक सुदृढ़ एवं ठोस आधार पर टिको रहतो है ।

राजनैतिक एकता :--

राजनैतिक एकता का अर्थ है प्रशासन सूत्र में बंधे रहने को भावना जहाँ रहकर सभो सम्बद्ध व्यक्ति आकांक्षाओं को पूर्ति कर सके । इसमें सन्देह नहों कि राजनैतिक आदर्शों को समानता से ऐक्य भावना को बल मिला है । अमेरिका को राष्ट्र का रूप प्रदान करने वाला तत्व यहो है ।

राष्ट्रोयता का यहो तत्व क्रियात्मक रूप है । इसो कारण विद्वानों ने राष्ट्रोयता को परिभाषा आदर्शों द्वारा परिचालित शासन व्यवस्था का उल्लेख किया है। हैंस कोहन के अनुसार--"जन समूह के समान राजनोतिक व्यवस्था के अन्तर्गत संगठित हो जाने को प्रक्रिया से राष्ट्रवाद का विकास हुआ है ।"[1]

देश तथा जाति को सुरक्षा कायम रखने के लिए राजनैतिक एकता में हो दिखाई देतो है । देशवासो देश को अखण्डता को रक्षा के लिए सदैव विदेशी शक्तियों से संघर्षरत रहे हैं । भारतवासियों को सामूहिक राजनोतिक इच्छा तभो पूर्ण हुई जब सतत् संघर्षों के पश्चात् भारत अंग्रेज देश से बाहर निकल सके । अब भी जब भारत पर संकट आता है, सारा देश एक होकर सामना करने को तैयार हो जाता है ।

1:-- Kohan Hans. The idea of nationalism.

आजकल अपनी राजनैतिक एकता बनाये रखने के लिए दूसरे राष्ट्र की राजनैतिक एकता में विघ्न उत्पन्न किया जा रहा है। युद्ध प्रत्यक्ष न होकर शीतयुद्ध होते हैं। राष्ट्रों को एक दूसरों को शंकित दृष्टि से देखना उनकी उन्नति के लिए किये गये प्रयासों पर सन्देह करना राष्ट्रीय हित के लिए भले ही अन्तर्राष्ट्रीय हित में उचित नहीं है।

सांस्कृतिक-एकता :--

बाबू गुलाब राय के अनुसार--"संस्कृति एक देश विशेष की उपज होती है। उसका सम्बन्ध देश के भौतिक वातावरण और उसके पालित-पोषित एवं परिवर्धित विचारों से होती है।"[1]

राष्ट्र के निर्माण में संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान है। एक ही संस्कृति में जन्में पले व्यक्ति स्वभावतः एक होते हैं। उनकी विचार धारा चिन्तन एवं आकांक्षायें समान होंगी। जिसके फलस्वरूप वे राष्ट्र के प्रति निष्ठावान होंगे। उसके निर्माण एवं उत्थान में सहायक होंगे। संस्कृति के अन्तर्गत साहित्य, संगीत, रीति-रिवाज विविध प्रकार की कलायें नृत्य आदि आती हैं।

प्राचीन संस्कृति किसी भी राष्ट्र के लिए गौरवपूर्ण हो सकती है। गौरवपूर्ण परम्परायें अतीत के प्रति गर्व की भावना। राष्ट्रीयता की भावना को सुदृढ़ करते हैं। जिससे राष्ट्र के प्रति सम्मान अभिमान

1:-- बाबू गुलाबराय - मेरे निबन्ध, जीवन और जगत, पृ० - 21।

बढ़ता है । इसी कारण जब कोई राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र पर आक्रमण करता है तो सर्वप्रथम वहाँ की संस्कृति को नष्ट करता है । अंग्रेजों ने जब भारत पर अधिकार के प्रसार के लिए सर्वप्रथम हमारे गौरवपूर्ण अतीत को नष्ट करने का प्रयास किया, जिससे उनकी गुलामी अधिक स्थायी हो ।

संस्कृति का एक प्रमुख अंग साहित्य है । साहित्य राष्ट्रीयता के प्रसार में सर्वप्रथम तथा सुलभ साधन है । पाकिस्तान के निर्माण की नींव सर इकबाल की कविताओं के कारण ही पड़ी । प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक संस्कृति होती है जो राष्ट्रभाषा की पूर्ति के लिए आवश्यक है । दिनकर के अनुसार--"भारत एवं योरोपीय संस्कृतियों के संघर्ष से पिछली शताब्दी में भारत में जो महान सांस्कृतिक जागरण हुआ उसी के परिणामस्वरूप नवीन भारत का जन्म हुआ । यूरोप के सांस्कृतिक आक्रमणों से भारतीयता की रक्षा करने के क्रम से भारत में संस्कृतिक राष्ट्रीयता जन्मी, पीछे वह राष्ट्रीयता राजनीतिक राष्ट्रीयता में परिणत हो गयी " ।[1]

राष्ट्रीयता के आधारभूत तत्वों के अन्तर्गत यह भी आवश्यक है कि वह भू खण्ड {राष्ट्र} स्वतन्त्र हो । उसके नागरिक गुलाम न हों । राष्ट्र में एक केन्द्रीय राजनीतिक सत्ता हो जो उसे संगठित कर एक शासन के रूप में बाँधे । उनका अपना संविधान हो । प्रत्येक राष्ट्रवासी नियम से बंधे हुए स्वतन्त्र हों उनमें देशभक्ति देश सेवा, पारस्परिक प्रेम एवं संगठन हो इन भावों से युक्त होने पर ही वे देश की उन्नति में निरन्तर सहायक होंगे ।

1:-- राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रीय एकता : दिनकर, पृ० -

राष्ट्रीयता के साधक तत्व :--

विद्वानों ने राष्ट्रीयता के विकास के लिए कुछ साधक तत्व बताए हैं जो राष्ट्रीयता के प्रसार में सहायक हैं। ये तत्व एकता, समानता, स्वतन्त्रता, निर्भयता, पारस्परिक प्रेम संगठन आदि हैं। ये सभी राष्ट्रीयता के विकास के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता में सहायक है। इनका यहाँ अलग-अलग वर्णन किया जा रहा है:--

एकता :--

एक राष्ट्र में रहने वालों में पारस्परिक ऐक्य की भावना का होना आवश्यक है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः समाज के उत्थान में वह निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। समाज की उन्नति के लिए लोगों में पारस्परिक संगठन का होना आवश्यक है। एकता की भावना आपसी रंजिश को दूर करके संघर्ष को रोकती है। इससे अलगाववादी ताकतों को पनपने का मौका नहीं मिलता। एकता की भावना से लोगआपस में एक दूसरे के सुख-दुख में सहायक होते हैं। आन्तरिक उपद्रवों बाहय आक्रमणं के समय एकता की भावना से प्रेरित होकर सभी देशवासी एक जुटहोकर देश की रक्षा के लिए तत्पर रहते हैं। इस प्रकार एकता की भावना राष्ट्रीयता के प्रसार के लिए आवश्यक है। एकता से देश में शान्ति रहती है जिससे देश को सामाजिक आर्थिक उन्नति करने का अवसर मिलता है। अतः देश के सर्वांगीण विकास के लिए परस्पर संगठन एवं सहयोग आवश्यक हैं।

समानता :--

परस्पर प्रेम एवं सौहार्द के लिए समानता का भाव होना आवश्यक है । समानता राजनीतिक सामाजिक एवं आर्थिक होनी चाहिए । आर्थिक समानता जनता में एकता उत्पन्न करती है । मनुष्य बाहरी विभिन्नताओं को भूलकर एकता के सूत्र में बँध जाता है । सभी की आर्थिक समस्यायें एक होने से उनको दूर करने के लिए समाधान भी एक सा ही होगा । इसी आधार पर राष्ट्रीयता का विकास होगा । जापान आदि राष्ट्रों में राष्ट्रीयता के निर्माण का मुख्य तत्व आर्थिक समस्याओं की समानता रही है ।

सामाजिक समानता व्यक्ति को समाज में समान अधिकार प्रदान करती है । प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से एक है । इससे समाज में ऊँच-नीच की विषमता स्वयमेव समाप्त हो जायेगी । जातीयता, साम्प्रदायिकता की भावना समानता के लिए बाधक है । यह ईर्ष्या एवं द्वेष की भावना को बढ़ाती है । इसीलिए हमारे राष्ट्रनेता गाँधी आदि ने अछूतोद्धार पर विशेष बल दिया । समाज में एकता लाने के लिए उन्हें बराबर का स्थान दिया ।

स्वतन्त्रता :--

समानता से स्वतन्त्रता की भावना आती है । स्वतन्त्र देश के नागरिकों को भी स्वतन्त्र एवं निर्भय होना चाहिए सभी को समान

रूप से स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए । परन्तु स्वतन्त्रता से तात्पर्य स्वेच्छाचारिता नहीं है मनुष्य को पुनः असभ्यता की ओर ले जाती है । अत्यधिक स्वतन्त्रता कष्टप्रद बन जाती है । शक्तिशाली व्यक्ति अपने से कमजोरों को दबाता है उन्हें बढ़ने एवं पनपने नहीं देता । इससे समाज में अव्यवस्था तथा अशान्ति का वातावरण निरन्तर व्याप्त रहता है ।

स्वतन्त्रता विचारों अधिकारों एवं कर्तव्यों की होनी चाहिए । व्यक्ति अपने अधिकारों को उपयोग करते हुए अपने कर्तव्यों का भी माध्यम रखना चाहिए । कहीं अपने अधिकारों की पूर्ति करते हुए हम दूसरों को हानि तो नहीं पहुंचा रहे हैं । हम स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं । अतः हमारी स्वतन्त्रता कानून सम्मत होनी चाहिए ।

निर्भयता :--

व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए उसमें निर्भयता का होना आवश्यक है । निर्भयता देशोन्नति में सहायक है । निर्भयता आन्तरिक उपद्रव एवं बाह्य आक्रमण से सुरक्षा प्रदान करती है । भय व्यक्ति एवं राष्ट्र दोनों के विकास में बाधक है । बाह्य आक्रमण या चोर डाकू से भयभीत नागरिक स्वयं को असुरक्षित महसूस करता है । असुरक्षित व्यक्ति कभी भी राष्ट्र की उन्नति में सहायक नहीं हो सकता । राष्ट्र का निर्माण भय की नींव पर न होकर प्रेम एवं निर्भयता की नींव पर होना

चाहिए । शासक वर्ग बल से नहीं प्रेम एवं सहयोग से शासन करें तथा शासित वर्ग भयाक्रान्त न हों तभी राष्ट्र अधिक समय तक स्थिर रह पायेगा ।

पारस्परिक प्रेम व संगठन :—

पारस्परिक प्रेम एवं सौहार्द भावना आन्तरिक संघर्ष को कम करके देश को उन्नत बनाने में सहायक होती है । लोग मिल-जुलकर रहे तो उनमें आपस में भाई-चारे एवं सौहार्द में वृद्धि होती है और वे संगठित होकर बड़ी से बड़ी समस्या का समाधान आसानी से कर सकते हैं ।

राष्ट्रीयता के विस्तार में देशभक्ति देश सेवा देशोन्नति की भावना सर्वोपरि है । देश की उन्नति के लिए उत्पादन पर विशेष बल दिया जाय । प्रत्येक नागरिक जब अपने देश की बनी हुई वस्तुओं का उपयोग करेगा तो स्वयमेव उसके अन्दर देश प्रेम एवं देश सेवा की भावना आयेगी । वह उत्पादन को बढ़ाने में सहयोगी होगा । जिससे देश समृद्धिशाली बनेगा । देश की आन्तरिक एवं बाह्य समस्याओं का समाधान वैयक्तिक न होकर सामूहिक ढंग से सुलझाया जाय । पारस्परिक प्रेम एवं सौहार्द राष्ट्रीयता रूपी वृक्ष को पल्लवित एवं पुष्पित करती है । अतः प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह अपने अधिकारों का उचित प्रयोग करते हुए स्व कर्तव्य पालन करें । स्वयं स्वार्थ सिद्धि में लिप्त न रहकर अन्य लोगों को भी उन्नति का अवसर प्रदान करें ।

राष्ट्रीयता के बाधक तत्त्व :--

उपर्युक्त सभी तत्त्व राष्ट्रीयता के साधक तत्त्व हैं । राष्ट्रीयता के प्रसार एवं प्रचार में इनका महत्वपूर्ण सहयोग है । परन्तु कुछ ऐसे भी तत्त्व हैं जो राष्ट्रीयता के लिए बाधक हैं । ये तत्त्व हैं:-वैयक्तिकता, साम्प्रदायिकता, सामाजिक विषमता, प्रादेशिकता, प्रान्तीयता आदि हैं जो राष्ट्रीयता की जड़ों को खोखला करती हैं ।

वैयक्तिकता :--

वैयक्तिकता की भावना स्वार्थ को जन्मदेती है । यह अलगाववादी प्रवृत्ति पर आधारित है । वैयक्तिकता की भावना से व्यक्ति समाज में रहकर भी अलग-अलग रहता है । वह समाज या राष्ट्र से वह राग का सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता जो एक नागरिक में होना चाहिए । इसी कारण वह विघटनकारी तत्त्वों से जुड़कर समाज या राष्ट्र को हानि पहुंचाने में भी नहीं हिचकता । वैयक्तिता 'स्व' की भावना को बढ़ावा देती है । यही भावना उसे स्वार्थ सिद्धि में सहयोग देती है । और वह राष्ट्र के लिए हानिकारक है बन जाता है ।

जातीयता या जातिवाद :--

जातीयता रक्त सम्बन्धों की संकीर्णता होती है । जो परस्पर वर्ण रक्त भेदभाव को फैलाती है । यह पारस्परिक संघर्ष एवं दंगों को फैलाने में भी सहायक है । प्राचीन भारत की समाज व्यवस्था

जातिवाद पर ही आधारित है। लेकिन यह चिरसत्य जातिवाद केवल रक्त सम्बन्धों तक ही सीमित है। आज का प्रगतिशील समाज व्यवस्था जाति बन्धन को नहीं मानता। एक देश में अनेक जातियाँ निवास करती हैं अतः उनका मिलना अवश्यमभावी है। महर्षि अरविन्द घोष के अनुसार :- "एक देश में दो जातियाँ चिरकाल तक नहीं रह सकतीं उनको मिलना ही होगा। इसके विपरीत यदि एक देश न हो, किन्तु एक जाति धर्म और भाषा एक ही हों तब भी इससे कोई फल नहीं निकलेगा और एक दिन स्वतन्त्र जाति की सृष्टि अवश्यमेय होगी। स्वतन्त्र देश संयुक्त करके एक वृहत्साम्राज्य की रचना हो सकती है। परन्तु एक वृहत्जाति का संगठन नहीं हो सकता। साम्राज्य का विध्वंस होने पर जातियाँ फिर स्वतन्त्र हो जाती हैं यही अन्तर्निहित स्वाभाविक स्वतन्त्रता ही साम्राज्य के नाश का कारण है।" [1]

साम्प्रदायिकता :--

सम्प्रदायवाद भी राष्ट्रीयता के लिए हानिकारक है। दो सम्प्रदाय कभी आपस में मिल नहीं सकते। धर्म-संस्कृति, आचार-विचार की वैविध्यता ही पृथक सम्प्रदाय का निर्माण करते हैं। अतएव प्रत्येक सम्प्रदाय की अपनी पृथक पहचान धर्म संस्कृति आदि से होती है। सम्प्रदाय में धार्मिक संकीर्णता विशेष रूप से प्रबल होती है। दूसरे

1:-- अरविन्द घोष :--जातीयता, पृ० - 30 ।

अर्थों में हम यह कह सकते हैं कि साम्प्रदायिकता का जन्म विभिन्न विरोधों एवं संघर्षों के कारण हुआ है । धार्मिक वैचारिक एवं सैद्धान्तिक सम्प्रदाय परस्पर टकराते रहते हैं । जिससे संघर्ष की आशंका निरन्त बनी रहती है ।

वर्तमान समय में पंजाब जो एक लम्बे अन्तराल से सुलग रहा है उसका प्रमुख कारण धार्मिक एवं साम्प्रदायिक मतभेद ही है । भारत देश में विविध धर्म एवं संस्कृतियों के सम्मिलन से अनेक प्रकार सम्प्रदायों का आविर्भाव निरन्त होता रहा है तथा उनमें समय-समय पर टकराव की स्थिति भी आयी है । कभी-कभी यही टकराव अत्यधिक उग्र रूप धारण कर लेता है । साम्प्रदायिक संघर्षों का हिंसात्मक मोड़ देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए खतरनाक हो जाता है । अतः सरकार समाज, सामाजिक संस्थायें एवं महान प्रभावशाली व्यक्तियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि या तो ऐसी स्थिति न उत्पन्न होने दे या ऐसी स्थिति के उत्पन्न होने पर सख्ती से दबा दे । अन्यथा इसके भयानक परिणाम देश या जनता को भुगतने पड़ते हैं ।

सामाजिक विषमता :--

सामाजिक विषमता आर्थिक, जातीय दोनों प्रकार की हो सकती है । अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा यह भाव प्राचीनकाल से ही विद्यमान रही है । निम्नजाति या आर्थिक रूप से पिछड़ा व्यक्ति हीन भावना से ग्रस्त रहता है जिससे वह स्वयं भी अवनत रहेगा तथा देशोन्नति में भी सहायक नहीं हो पायेगा ।

प्रत्येककाल में प्रत्येक देश में दो वर्ग पाये जाते हैं शोषक वर्ग एवं शोषित वर्ग । उच्च वर्ग सदैव ही निम्न वर्ग का शोषण करता है । शासन व्यवस्था चाहे कैसी भी हो शासक प्रजा, मालिक, मजदूर, काश्तकार, किसान वर्ग सदैव विषमता का भाव उत्पन्न करते रहे हैं । सामाजिक विषमता वर्ग संघर्ष को जन्म देती है । आधुनिक काल सम्पूर्ण विश्व, वर्ग संघर्ष की विभिन्नताओं से जूझ रहा है । मिल-मालिक, मजदूर शासक, प्रजा, उच्च वर्ग, निम्नवर्ग के संघर्ष होते रहते हैं ।

प्रान्तीयता या क्षेत्रीयता :--

राष्ट्र की अखण्डता की रक्षा के लिए प्रान्तीयता की भावना हानिप्रद है । प्रान्तीयता की भावना राष्ट्र को टुकड़े-टुकड़े में बांटती है । इससे राष्ट्र जाति, क्षेत्र या धर्म के आधार पर अलग-अलग प्रांतों में बंट जाता है । शासन की दृष्टि से यह सुविधाजनक है । प्रत्येक प्रान्त का स्वशासन तथा एक केन्द्रीय शासन से शासन व्यवस्था अधिक सुविधाजनक होती है । प्रत्येक प्रांत की समस्यायें चाहे वह छोटी हों चाहे बड़ी हों : प्रान्तीय शासन द्वारा आसानी से सुलझा दिया जाता है । गम्भीर समस्याओं का समाधान केन्द्र के माध्यम से सम्भव है ।

आधुनिक समाज में प्रान्तीयता या क्षेत्रीयता की जड़ें काफी गहरी हैं । प्रान्तीयता से जहाँ जनता की सुख सुविधाओं को आसानी से समझा जा सकता है, समस्याओं को आसानी से सुलझाया जा सकता है वहीं प्रान्ती-यता कभी-कभी देश की अखण्डता के लिए खतरनाक हो जाती है । असम

एवं पंजाब की विस्फोटक स्थिति प्रान्तीयता की ही देन है । यहाँ के नागरिक एक अलग राष्ट्र की स्थापना की माँग कर रहे हैं तथा उसको मनवाने के लिए हिंसात्मक कार्यवाही कर देश में अशान्ति का वातावरण उत्पन्न कर रहे हैं ।

राष्ट्रीयता के उपर्युक्त साधक एवं बाधक तत्वों के विवेचन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सच्ची राष्ट्रीयता के प्रसार से देश, समाज एवं विश्व का कल्याण हो सकता है । मुदिता, करूणा, मैत्री के गुणों से युक्त राष्ट्रीयता विश्व शान्ति की स्थापना में सहायक है जिससे विश्व बन्धुत्व के भाव के प्रसार में सहयोग मिलेगा । आज विश्व हथियारों के होड़ में विनाश के कगार पर खड़ा है । तृतीय विश्वयुद्ध {परमाणु युद्ध} का खतरा इस समय सभी राष्ट्र महसूस कर रहे हैं । इस अवसर पर सच्ची राष्ट्रीयता अपनी एक विशिष्ट भूमिका निभा सकती है और सभी राष्ट्रों को मिलकर एक दूसरे की उन्नति में सहायक होने के लिए प्रेरित कर सकती है, राष्ट्रीयता के कुछ प्रतीक चिह्न भी विद्वानों ने बताए हैं जो राष्ट्रीयता की भावना को और अधिक तीव्र करते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीयता के प्रतीक ध्वज :--

प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र की अपनी-अपनी राष्ट्रीय पताका होती है । जिस पर उस देश का अपना गौरव आत्मसम्मान निर्भर रहता है । उसके गौरव की रक्षा के लिए प्राण तक देने में नहीं हिचकिचाता । स्वतन्त्र

व्यक्ति को अपनी स्वतन्त्रता जितनी प्रिय होती है राष्ट्रीय ध्वज को भी उसी सम्मान से फहराते हुए देखना चाहता है । कोई राष्ट्र जब किसी देश पर आक्रमण करता है तो सर्वप्रथम उस देश पर अपना राष्ट्रीय ध्वज फहराते हुए अवश्य देखना चाहता है । महात्मागांधी राष्ट्रीय झण्डे को राष्ट्र की निशानी मानते हैं, और इसके सम्मान की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है ।

डा० सम्पूर्णानन्द के अनुसार :--

"हमारा झण्डा हमारी संस्कृति के अनुरूप है भगवान हमको ऐसा बल दें कि हम उसके योग्य बन सकें । यों तो यह समूचे राष्ट्र के लिए आदर का पात्र है ।" [1]

पंडित जवाहर लाल नेहरू :--

"राष्ट्रीय झण्डे को एकता एवं आजादी का प्रतीक मानते हैं । उनके अनुसार--"राष्ट्रीय झण्डे को आप आजादी का निशान समझें तिरंगा महज एक कपड़े का टुकड़ा नहीं यह किसी राजा या बादशाह का झण्डा नहीं है बल्कि यह हिन्दुस्तान के लाखों गरीब लोगों को एकता और ताकत का निशान है ।" [2]

1:-- कवीन्द्र बेनी प्रसाद बाजपेयी मंजुल - राष्ट्रीय झंडे का महत्त्व पृ० - 23 ।

2:-- पंडित जवाहर लाल नेहरू - जवाहर लाल नेहरू वांगमय पृ० - 185 ।

चिह्न :—

हमारे देश के राष्ट्रीय झंडे का तीन रंग देश की समृद्धि, शान्ति एवं राष्ट्रीयता के आधार भूत भावों को द्योतक है । सर्वप्रथम सबसे ऊपर स्थित केसरियारंग शौर्य, साहस का प्रतीक है । हरा रंग समृद्धि एवं धन-धान्य का सम्पूर्णता का प्रतीक है । श्वेत रंग शान्ति, पवित्रता एवं शुद्धता का प्रतीक है । इस प्रकार तीनों रंग एक उदात्त भावों को द्योतित करते हैं । श्वेत रंग के बीच स्थित अशोक चक्र हमें निरन्तर कार्य करने की प्रेरणा देता है । साथ ही यह हमारे प्राचीन गौरव को भी प्रकट करता है । अशोक चक्र से पूर्व हमारे ध्वज में चरखे का चिह्न था, जो आर्थिक समृद्धि एवं स्वतन्त्रता का प्रतीक है । सम्प्रति दोनों तरफ से एक दिखने वाला चौबीस तीलियों से युक्त चक्र है जो अशोक स्तम्भ से लिया गया है हमारे प्राचीन गौरवमय अतीत को दर्शाता है । यह सम्राट अशोक द्वारा अहिंसा एवं विश्वबन्धुत्व की भावना के प्रसार के लिए बौद्ध धर्म की स्वीकृति एवं उसका विश्व में प्रसार की ओर संकेत करता है जिसके माध्यम विश्व में अहिंसा प्रेम करूणा का प्रसार चक्रवर्ती सम्राट अशोक ने किया था । चौबीस तीलियों वाला चक्र चौबीस घन्टों का प्रतीक है । जो निरन्तर गतिशील एवं कार्यशील रहने के लिए प्रेरणा देता है ।

इस प्रकार हमारा राष्ट्रीय ध्वज राष्ट्रीयता के सम्पूर्ण भावों का प्रतीक है । विश्व में किसी अन्य राष्ट्र का ध्वज इतना गूढ़ राष्ट्रीयता के भावों को अपने में नहीं समाहित किये है ।

राष्ट्रगीत :--

हमारा राष्ट्रगीत 'वन्देमातरम्' एवं जिनगणमन अधिनायक' दोनों बंगाल के सुप्रसिद्ध कवियों द्वारा रचित है । दोनों गीत संस्कृत गर्भित बंगला भाषा में है । लेकिन सम्पूर्ण राष्ट्र द्वारा समझे जा सकते हैं । स्वतन्त्रता से पहले गाया जाने वाला बंकिम चन्द्र चटर्जी द्वारा रचित 'वन्देमातरम्' गीत भारतीय स्वतन्त्रता सेनानियों को अत्यधिक प्रिय रहा है । यह गीत भारत को प्राकृतिक शोभा एवं सौन्दर्य को विशिष्टताओं को सुन्दर शब्दों में गूँथकर रचित है जिसके सुनने मात्र से ही हमारे मन में देश के लिए राग व भक्ति का सागर हिलोरें मारने लगता है । कवीन्द्र नाथ टैगोर रचित 'जन गण मन अधिनायक' भारत के सम्पूर्ण प्रान्त एवं प्राकृतिक दृश्यों का चित्र हमारे समक्ष उपस्थित कर देता है । अलग-अलग प्रान्तों में बंटा हुआ भारत राष्ट्र अनेक संस्कृतियों वेश-भूषा एवं रहन-सहन को विविधताओं के होते हुए भी सम्पूर्ण राष्ट्र एक है । यह दोनों गीत भौगोलिक एकता समृद्धि एवं विस्तार का द्योतक है । राष्ट्र गीत के महत्व एवं हिन्दी के राष्ट्रगीतों के सम्बन्ध में श्री गुलाबराय का कथन है कि--"हिन्दी में भी श्रीधरपाठक, मैथिली में शियारामशरण गुप्त प्रभृति कवियों ने 'वन्देमातरम्' आदि बहुत से राष्ट्रगान लिखे हैं वे सभी हममें राष्ट्रभाव जाग्रत करते हैं । मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' ने अतीत के स्वर्णिम और भविष्य के उज्जवल चित्र उपस्थित करके जनता में राष्ट्रीय गर्व उत्पन्न करने में बड़ायोग दिया।"[1]

1:-- बाबू गुलाबराय - राष्ट्रीयता, पृ0 - 12 ।

राष्ट्रीय पर्व :--

यद्यपि राष्ट्र में अनेक धर्म अनेक संस्कृति के लोग निवास करते हैं। प्रत्येक देश वासी अपने धर्म एवं संस्कृति के अनुसार पर्व मनाते हैं। ये सभी पर्व राष्ट्रीय पर्व कहे जा सकते हैं क्योंकि इसे केवल जाति विशेष ही नहीं सम्पूर्ण देशवासी उत्साह से मनाता है। होली, दीवाली, दशहरा, क्रिसमस, ईद आदि पर्व राष्ट्रीय पर्व हैं। परन्तु कुछ पर्व ऐसे हैं जो जब सम्पूर्ण देशवासी उत्साह में भरकर सम्पूर्ण संस्कृति एवं परम्पराओं के साथ मनाता है। देश के नेता नागरिक राष्ट्रीयता के प्रतीक ध्वज, राष्ट्रगीत, फौजी परेड सांस्कृतिक झांकियाँ आदि को दर्शाते हुए मनाया जाता है। हमारे देश में मुख्य रूप से दो राष्ट्रीय पर्व हैं--'15 अगस्त एवं 26 जनवरी'। '15 अगस्त' देश को आजादी मिलने की खुशी में एवं '26 जनवरी' हमारा अपना स्वशासन एवं संविधान बनने की खुशी में मनाया जाता है। इस दिन देश के प्रमुख नेता एकत्र होकर राष्ट्रध्वज फहराते हैं, राष्ट्रगीत गाते हैं तथा विविध प्रदेशों की सांस्कृतिक झांकियाँ को निकालते हैं। हमारे पर्व हमारी राष्ट्रीय एकता एवं सांस्कृतिक समृद्धि के परिचायक हैं। यदि हम अपनी संस्कृति अपनी परम्परा को अक्षुण्ण रखना चाहते हैं तो सभी भेदभाव भूलकर अपने राष्ट्रीय सांस्कृतिक पर्व मनाना चाहिए।

राष्ट्रीय नेता :--

वे विशिष्ट चरित्र जो राष्ट्र के निर्माण में अपना विशेष स्थान रखते हैं उनका चरित्र हमारे लिए प्रेरणादायक एवं अनुकरणीय होता है।

वे अपने स्वार्थ त्याग एवं बलिदान से साधारण जन से विशिष्ट जन की श्रेणी में आते हैं और पूज्यनीय हो जाते हैं । उनकी उपासना की जाती है । जनता उनके बताये मार्ग का अनुसरण करती है, उनकी वाणी पर अमल करती है यही विशिष्ट चरित्र राष्ट्रीय नेता कहलाते हैं । जनता उनका सम्मान करके देश का सम्मान करती है उनकी वाणी राष्ट्र की वाणी होती है ।

राष्ट्रीय नेता अपने भाषणों, कथनों एवं विचारों द्वारा जनता में राष्ट्रीय भावना को जाग्रत कर सकता है का प्रसार करने में सहयोग देते हैं । ये देश के गौरवमय अतीत के गुणगान के साथ-साथ वर्तमान को भी अपने कार्यों से उज्ज्वल बनाते हैं । महात्मागांधी, जवाहर लाल नेहरू, लोकमान्य तिलक, सरदार बल्लभ भाई पटेल, पंडित मदन मोहन मालवीय आदि राष्ट्रीय चरित्र के नेता हुए हैं । जिन्होंने देश को स्वतन्त्रता दिलाने में अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया । कुछ राष्ट्रीय नेता स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की बागडोर अपने हाथ में लेकर शासन चलाने में सहयोग करते रहे हैं । इनके महत्व को स्वीकारते हुए गुलाब राय लिखते हैं कि :--

"हमारे नेता हमारेचरित्र के निर्माण में सहायक होते हैं । वे हमसे आगे बढ़े हुए होते हैं, किन्तु वे हमसे ही होती हैं, उनका स्वार्थ त्याग और आत्म बलिदान हमारे लिए नमूने की चीज बन जाती है । उनकी वाणी राष्ट्र की वाणी होती है और उनका मान राष्ट्र का माना

होता है । उनको उपासना राष्ट्र को उपासना बन जाती है । नेताओं पर अन्धविश्वास करना बुरा है किन्तु उन पर करना और उनका सम्मान करना अन्तर्राष्ट्रीयता का अंग है । " [1]

इतिहास :--

इतिहास के अध्ययन से हमें अपने देश को गौरवमय संस्कृति का पता चलता है । प्राचीन काल को सभ्यता, संस्कृति, गौरव गाथायें हमें इतिहास से हो पता चलती हैं । अतीत के आधार पर भविष्य के लिए निर्माण के लिए स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्राप्त होती है । हमारे देश में इतिहास लिखने को परम्परा नहीं रही । प्राचीन आदि काव्य 'रामायण' व 'महाभारत' ऐतिहासिक ग्रन्थ कहे जा सकते है । परन्तु काव्य ग्रन्थ होने कारण इतनी अलौकिकताएं भी पड़ी हैं कि सत्यता की प्रामणिकता पर सन्देह होता है । बाद के इतिहास को विदेशियों ने लिखा है । विदेशी शासकों ने अपनी महत्ता स्थापित करने के लिए हमारे इतिहास को विकृत कर दिया । अतः हमें इतिहास की घटनाओं की सत्यता की परख हेतु खोजबीन की आवश्यकता है ।

हमारे अतीत में अच्छी व बुरी दोनों घटनायें घटित हुई । बुरी घटनाओं को भुलाकर उनसे सबक लेना तथा अच्छी घटनाओं से गर्व से अपना मस्तक उन्नत करना ही राष्ट्रीयता है । प्राचीन महापुरुष रामकृष्ण,

---

1:-- बाबू गुलाब राय - राष्ट्रीयता, पृ0 - 13 ।

शिवि, दधीचि, सत्य हरिश्चन्द्र, धर्मराज युधिष्ठिर, वीरवर अर्जुन, अभिमन्यु, भगवान बुद्ध, महावीर, गाँधी आदि के पावन नामों को भुला पाना कठिन है । इन्हीं के गौरवमय चरित्र के अध्ययन से हमें अपने इतिहास पर गर्व अनुभव होता है ।

एक राष्ट्र भाषा :--

भारत एक विशाल देश है । प्रान्तों में विभक्त होने के कारण यहाँ अनेक भाषायें तथा बोलियां हैं परन्तु प्रान्त व केन्द्र के बीच एकता का सम्बन्ध संस्कृत भाषा से है । इसी प्रकार यदि हम देखें तो सभी प्रान्तीय भाषाओं का भी संस्कृत से कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य है । अतः हिन्दी राष्ट्र भाषा के पद पर अधिक सफल सिद्ध होगी ।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम विदेशी भाषा अंग्रेजी को हिन्दी से अधिक महत्व प्रदान कर रहे हैं । हमें अपने देश में एकता उत्पन्न करने के लिए हिन्दी को ही महत्व का स्थान देना चाहिए । इस समय वह चाहे अंग्रेजी के बराबर समर्थ सम्पन्न न हो तथापि अपने देश की भाषा होने के कारण वह हमको एकता के सूत्र में बांध सकती है । इस समय हिन्दी राष्ट्र भाषा होते हुए भी उस स्थान पर नहीं है जहाँ अंग्रेजी है । 'हिन्दी' किसी प्रान्तीय भाषा को अपदस्थ नहीं करना चाहती वरन् अंग्रेजी का स्थान ग्रहण करें । प्रान्तीय भाषाओं को प्रान्तों में सम्मान प्राप्त हों । हिन्दी सम्पूर्ण देश केन्द्र व प्रान्तों की सम्पर्क भाषा बने क्यों कि वह हमारे देश की उपज है उसकी जड़ों में भारतीय संस्कृति के पोषण तत्व मिले हैं ।

भारत राष्ट्र की विशेषताएं :—

प्राचीन भारत की सभ्यता एवं संस्कृति के इतिहास से यह स्पष्ट हो चुका है कि भारत वैदिक काल से ही एक राष्ट्र है। राष्ट्र के लिए सभी आवश्यक तत्व, भौगोलिक एकता, जातीय एकता, धार्मिक एकता, सांस्कृतिक एकता तथा भाषात्मक एकता सभी कम या अधिक रूप में भारत राष्ट्र में विद्यमान रहे हैं। यह अवश्य है कि वर्तमान युग में राष्ट्र का स्वरूप जो इतना व्यापक है वैदिक काल में अपने इसी रूप में न रहा है। उस युग में भारत हिन्दू राष्ट्र था, अतः इसकी राष्ट्रीय विशेषताएं हिन्दू संस्कृति पर आधारित रही है। वैदिक काल से भारत अपनी गौरवमयी सभ्यता एवं संस्कृति के लिए समस्त विश्व के देशों में श्रेष्ठ रहा है। इसकी प्राकृतिक समृद्धि इसकी सभ्यता, इसकी संस्कृति ने विदेशियों को सदैव आकर्षित किया। इसी कारण इस देश में अनेक जातियाँ यहाँ आयीं। वे अपने साथ अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को लायीं परन्तु भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मक गुणों के कारण इसी में घुल-मिल गयीं। भारतीय संस्कृति अपनी उदारता के कारण समस्त संस्कृतियों को अपने में आत्मसात् कर लिया। आज भारत की संस्कृति की समृद्धता इसकी विशालता, उदारता, सम-वयात्मकता के कारण है।

प्राचीन युग में जब सम्पूर्ण विश्व अन्धकार युग में भटक रहा था मानव सभ्यता विकसित नहीं हुई थी, पश्चिमी देश जो आज अपने को सभ्य, सुसंस्कृत तथा भारत से श्रेष्ठ मानते हैं अपने विकास की प्रभावास्था

में थे उस युग की भारतीय सभ्यता और प्रगति अपने सर्वोच्च शिखर पर थी । हमारे प्राचीन मनीषियों द्वारा कठोर तपस्या एवं साधना से व्यावहारिक जीवन के जो सिद्धान्त बनाये उसको अमल कर भारतीय प्रगतिशील व सभ्य कहलाये तथा भारत का विशाल साहित्य समृद्ध हुआ । उस युग में भारत चिकित्सा, शल्य क्रिया, क्रियात्मक रसायन और भवन निर्माण जैसे वैज्ञानिक विषयों में तथा सभ्य जीवन की वास्तु कला, मूर्तिकला, रंगलिप या पेंटिंग धातु कला रंगाई आदि अनेक कलाओं में वाणिज्य व्यापार में महान सफलता प्राप्त की ।" [1]

उस समय भारत के विख्यात साहित्यिक, विचारक सम्राट, राजनीतिज्ञ, विश्व में अपने-अपने क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान रखते हैं ।

प्राचीन युग से ही भारतीय व्यापार की उन्नति उसके जहाजरानी उद्योग के परिणाम हैं । प्राचीन युग में जब यातायात की सुविधाओं का प्रसार नहीं हुआ था, स्थलमार्ग से व्यापार करना कठिन कार्य था । हमारी राष्ट्रीय जहाजरानी के बेड़े की विशाल, सुनिश्चित एवं ठोस व्यवस्था के कारण था । कितनी कठिनाइयों एवं बाधाओं को झेलते हुए भारतीय नौकाएं जलयान, किस प्रकार सुदूर कर देशों में फैला रहीं थीं । यह उस युग की विशेषता ही है । नववाहन उस युग के मनुष्यों की सक्रियता, उसके ज्ञान के विकास का परिचायक है । अन्यथा विशाल महासागर में नौकाओं या जहाजों द्वारा व्यापार करना आसान कार्य

1:— राधाकुमुद मुकर्जी — हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद, पृ० - 3 ।

न था। भारत के जहाजरानी उद्योग के विस्तार व विकास के सम्बन्ध में फ्रेन्च लेखक 'सार्ल्गिर्न' अपनी पुस्तक 'हिन्दुज' में लिखते हैं कि-- "प्राचीन काल में भारतीय लोग जहाज निर्माण की कला में आगे बढ़े थे और इस दृष्टि से वे अब भी यूरोप के लिए आदर्श प्रस्तुत कर सकते हैं। यहाँ तक कि अंग्रेजों ने जो नव-निर्माण कला सम्बन्धी प्रत्येक बात पर बहुत ध्यान देते हैं, हिन्दुओं को करके बहुत से सुधार किये हैं जिन्हें सफलता पूर्वक अपने जहाजों में प्रांजलता आदि उपयोगिता का संयोग है और वे धैर्य तथा कला-नैपुण्य की बारीकी का नमूना है।" [1]

पश्चिमी देशों में विज्ञान का प्रसार आधुनिक युग में हुआ परन्तु भारत की वैज्ञानिक प्रगति उस युग में भी श्रेष्ठ एवं अधिक प्रगतिशील रही है। यह अलग बात है कि उस प्रगतिशीलता के प्रमाण में आज सबकुछ नष्ट हो गया है। कुछेक पुस्तकें ही बची हैं, परन्तु वे भी हस्तलिखित हैं उनका प्रकाशन न हो पाने के कारण सर्वसुलभ नहीं है। अतः विज्ञान को पश्चिमी देशों ने अपना आविष्कार कहा। भारत तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगति के सम्बन्ध में अंग्रेज विद्वान सरजान माल्कम ने--"जनरल आफ द रायल एशियाटिक सोसायटी लन्दन" की प्रथम जिल्द में लिखा है --"भारतीय जहाज जिन कार्यों के लिए अपेक्षित हैं उसके लिए वे प्रशंसनीय रूप से उपयुक्त हैं। यूरोपीय लोग विज्ञान के क्षेत्र में उत्कृष्ट होते हुए भी भारत के साथ अपने दो वर्ष के समागम में कोई एक भी सुधार करने का सुझाव न दे सके और न कोई सुधार सफलतापूर्वक कर सके।" [2]

1:-- राधा कुमुद मुकर्जी -- हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद, पृ0 - 7

2:-- वही, पृ0 - 7 ।

इतिहास देश की सभ्यता एवं संस्कृति की समृद्धि को द्योतित करता है । भारत का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि भारतीय विचार और कर्म के क्षेत्र में बराबर विकास होता रहा है । विभिन्न राष्ट्र की अन्य विशेषताओं में मातृभूमि के लिए अनुराग भी प्रमुख तत्व है । वैदिक साहित्य व संस्कृत-साहित्य मातृभूमि के प्रति गहरे अनुराग से ओत-प्रोत है । 'अथर्ववेद' के 'पृथ्वी सूक्त' में 63 प्रार्थनायें हैं जिसमें मातृ भूमि के प्रति श्रद्धा अनुराग को प्रकट करती है । मातृभूमि की प्रशंसा करते हुए एक स्थान पर कहा गया है कि --"यह भूमि समुद्र से घिरी हुई है और कल-कल निनादनी जल-धारायें इसे उर्वर बना रही हैं, हरे-भरे पर्वत, हिम मण्डित गिरिश्रृंग और जंगल उस देशवासियों के चिन्ता-हीन क्लेशहीन और अक्षत जीवन की रक्षा करते हैं, यह भूमि सुख और आनन्द देने वाली औषधियों की जननी है । इसी भूमि पर हमारे बाप दादा रहते और काम करते थे और देवों के बल से असुर पराजित होते थे इस देश में खेतियाँ लहलहाती रही हैं और गाय, घोड़े हाथी और पक्षी सुख से रहे हैं । इस देश में नाना भाषाओं वाले लोग हैं और नाना रूढ़ियां हैं, पर वे सब सुशील दुधारू गाय की तरह धन सम्पत्ति की धारायें प्रवाहित कर रहे हैं ।"[1]

अन्यत्र मातृभूमि की वन्दना करते हुए पृथ्वी को माता के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है==

1:- राधाकुमुद मुकर्जी - हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद, पृ0 - 12, 13

"माताभूमिः पुत्रो हँ पृथिव्या" [1]

मातृभूमि को प्रशस्ति में उसके गौरव का वर्णन है --

"यस्वास्व चतस्त्रः प्रदिशः पृथिव्यायस्यामन्तः
कृष्टय सम्बभुवुः या विभर्ति वहुधा
प्राविदेशत सा नो भूमि गो क्विष्यन्नेदधातु ।" [2]

और भी--

"नानावीर्या औषधीर्या विमर्ति पृथ्वी प्रथतांटाध्यताम् ।
यस्यां समुद्रउत सिन्धुय यो यस्यामान्न कृष्टयः सम्बभुवुः ।। [3]

अर्थात जिसको चार दिशायें हैं जहाँ किसान खेती करते हैं अनेक प्रकार के पदार्थों की पूर्ति करती हुई जो प्राणि मार्गों का पोषण करती है, वह हमारी मातृभूमि हमें गोधन और अन्नों से सम्पन्न करें ।"

"नानाविध वनस्पतियाँ धारण करने वाली भू-माता प्रसन्न होकर हमारा पोषण करें । सागर तथा सागर सम विशाल नद और बड़ी नदियों के द्वारा हमारी भूमि द्वारा हमारा पोषण करें ।

1:-- अथर्ववेद पृथ्वी सूक्त 1/12
2:-- वही0, वही, - 4
3-- वही0, वही, - 3

वस्तुतः यहाँ नाना भाषाओं और नाना रूढ़ियों वाली अनेक जातियों वाला यथार्थ कथन बड़ा अर्थ पूर्ण है। इस कथन में राष्ट्र निमार्ण की मूल भूत सम्भावनाओं और आधारभूत बातों पर प्रकाश डाला गया है इस नानातत्त्व और विविधता की ही अत्याधिक देश प्रेम की भावना से राष्ट्रीय शक्ति का उद्गम माना गया है। इसे उस पूर्णतर उस सम्पन्नतर एकता का स्त्रोत माना गया है जिसमें सब विविधताएं अपना-अपना स्वरूप लेकर एकरूप दे जाती हैं और इसी प्रकार एक सामान्य जीवन का विकास करती हैं जैसे हजारों जल धारायें अपने आपको समुद्र में विलीन कर देती हैं 'पृथ्वीसूक्त' का अन्तिम मन्त्र मातृभूमि के प्रति गहन अनुराग का प्रमाण है--हे पृथ्वी माता तू मुझे अच्छी तरह संस्थापित करने की कृपा कर स्वर्ग के अनुकूल रखते हुए हे ऋषि तू मुझे धन और समृद्धि में स्थापित कर।"[1]

केवल वैदिक साहित्य में ही मातृभूमि के प्रति ऐसा गहन प्रेम वर्णित नहीं है। वज संस्कृति साहित्य में भी मातृभूमि के प्रति अनुराग को बताया गया है। मातृभूमि के प्रति गहन अनुराग भी देवताओं को यहाँ निवास करने हेतु प्रशस्ति करने हेतु प्रोत्साहित करता है--

गायन्ति देवा किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे
स्वर्गापवर्गास्पदमार्ग भूते,
भवन्ति भूयः पुरूषा सुरत्वात्"[2]

1:-- राधाकुमुद मुकर्जी - हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद, पृ0 - 14

2:-- विष्णुपुराण - 2/3/24

देवता भी गान करते हैं कि भारत भूमि में जन्म लेने वाले लोग धन्य हैं। स्वर्ग एवं अपवर्ग कल्प इस देश में देवता भी देवत्व छोड़कर मनुष्य योनि में जन्म लेना चाहते हैं।"

श्रीमद्भागवत में भी इसी प्रकार के भाव हैं--

"अहोमनोषा किम कारिशोमनं प्रसन्न,
प्रसन्नं एषा स्विधुतं स्वयं हरि।
ये जन्म लब्धं नृणं भारताजिरे
मुकुन्द सेवौ यायिकं स्पृहा हिनः।"[1]

देवता भारतीय मनुष्यों के सौभाग्य पर ईर्ष्या करते हुए कहते हैं कि :--- अहा--इन लोगों ने, न जाने कौन ऐसे शुभ-कार्य किये थे, जिनके फलस्वरूप इन्हें भारत-भूमि के प्रांगण में मानव जन्म सुलभ हुआ है। लगता है, भगवान स्वयं इन पर प्रसन्न हो गये थ, भगवान को सेवा के योग्य ऐसा जन्म पाने की इच्छा तो हमारी भी होती है।"

अत्यन्त प्राचीन काल में भगवान रामचन्द्र जी ने भी भारत को स्वर्ण से श्रेष्ठतर माना था यह उनका मातृभूमि के प्रति उदात्त अनुराग ही है :--

"नेयं स्वर्णपुरी लंका रोचते मम लक्ष्मणः
जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"[2]

1:-- श्रीमद्भागवत् - 5/19/21

2:-- बाल्मीकि रामायण

संसार के किसी भी अन्य देश के साहित्य में इतना पुरातन एवं भावपूर्ण मातृभूमि के प्रति प्रेम का उदाहरण नहीं मिल सकता । देश को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ कहकर उसकी अर्चना, अन्य नहीं देखने को मिलती । यह मान राष्ट्र प्रेम मय विचार युगों-युगों से भारतीय के रक्त में अविराम गति से प्रवाहित होता रहा है । आज भी यह प्रेम उदात्त रूप में अपने भिन्न स्वरूप में देखा जा सकता है ।

भारत राष्ट्र की वर्तमान सुदृढ़ता एवं समृद्धि की आधारशिला अतीत की गौरवमयी परम्परा पर आधारित है । वैदिक युग से ही भारत एक राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है । भारत में आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और यहां तक कि राजनैतिक सभी दृष्टियों से उत्थान किया है । इसकी आत्मा एक दिव्य तेजवान प्रखर शक्ति के रूप में सदैव उभर रही है । यद्यपि समय, समय पर काल के भयंकर अन्धड़ों अप्रत्याशित-प्राकृतिक प्रकोपों और नाना चतुर्दिक आघातों ने इसे कई बार बुरी तरह झकझोरा है । परिणामतः भारत माता के राष्ट्रीय स्वरूप को अनेक भौतिक विकृतियों को झेलना पड़ा, राष्ट्रीय आत्मा जिकसी वेदना उत्पीड़न और टीस से विकम्पित होती जा रही है परन्तु शरीर से पराधीन होकर भी राष्ट्रीय आत्मा ने कभी किसी की भी पराधीनता स्वीकार नहीं की है। हमारा साहित्य, हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता, हमारा समस्त राष्ट्रीय इतिहास निष्पक्ष दृष्टि से देखने पर हमें ज्ञात होता है कि राष्ट्रीय ताने बाने से ही आज तक जीवित है । विदेशी आक्रान्ताओं ने अमानुषिक अत्याचारों, अदमनीय क्रूरताओं और बर्बर नीतियों के

कारण जो हमारे राष्ट्र में राजनैतिक तूफान उठे, अन्धड़ चले और अनेक कुकर्म के इतिहास के अंधेरे पृष्ठों पर अंकित है पराधीनता के लम्बे काले इतिहास में भारत अपनी गौरवमयी परम्परा, संस्कृति सभ्यता सब कुछ भूलकर अपंग होकर भटकता रहा । परन्तु समय-समय पर धार्मिक-राजनैतिक मंच से उसके संस्कृति की रक्षा हेतु प्रयास हुए उससे उसका गौरव नष्ट नहीं होने पाया । आधुनिक युग में अंग्रेजों के शोषण एवं अत्याचारों के विरुद्ध भारतेन्दु ने राष्ट्रीय-सरिता को पुनः प्रवाहित कर राजभक्ति में देशभक्ति के रूप को प्रस्फुटित किया । पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों द्वारा राष्ट्र के जो आवश्यक तत्व बताए गये हैं उनमें भूमि, जनसंख्या, संस्कृति और भाषा है । इनके अभाव में राष्ट्र के स्वरूप की कल्पना करना कठिन है । इस दृष्टि से भारत में एक राष्ट्र के रूप में सभी तत्व वैदिक काल से ही विद्यमान रहे हैं यह एक विशाल भू-भाग, विशाल जनसंख्या, समृद्धिशाली संस्कृति एवं परम्परा, रीति रिवाज तथा विशाल हिन्दी साहित्य और भाषा से भरा हुआ है । इसकी भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा आध्यात्मिक विशेषता इसकी राष्ट्रीय विशेषता है । इन सभी तथ्यों के आधार पर भारत एक राष्ट्र के रूप में गौरवा=न्वित है ।

भारतवर्ष का नाम भरत के नाम पर पड़ा है । जो अपनी जाति की संस्कृति मूर्ति था । इस प्रकार भारतवर्ष शब्द निरी भौगोलिक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि इसका गहरा ऐतिहासिक अर्थ है । यह उस

काम को पूर्ण सिद्धि को सूचित करता है जो आदि पूर्वजों ने सारे देश में उपनिवेश बसाने और इसके विभिन्न भागों को एक सामान्य संस्कृति और सभ्यता को संगठन कारो अनुशासन के अधीन लाने को आरम्भ किया था ।

पाश्चात्य विद्वानों ने भारत को राष्ट्रीयता को पश्चिम को देन माना है । परन्तु हम यह कह चुके हैं कि भारत को राष्ट्रीयता वैदिक काल से हो रहो है । हाँ उसका स्वरूप सीमित अवश्य रहा है आज जितना व्यापक नहीं है । भारतीय राष्ट्रवाद को अपनी अलग विशेषता है :--

"हमारी राष्ट्रीयता यूरोप को भाँति आक्रमणकारी नहीं है वह अहिंसात्मक है हमको अपनी भुवनमोहिनी, 'भारतभूमि पर गर्व है ।' सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' किन्तु हम दूसरों को भी घृणास्पद नहीं समझते ।

हमारी राष्ट्रीयता रंगभेद, जातिभेद, धर्म और सम्प्रदाय भेद पर आश्रित नहीं है वह सत्य, अहिंसा, समता और स्वतन्त्रता को एकध्येयता पर आधारित है 'जियो और जीने दो' हमारे पंचशील का मूलमन्त्र है । हमारी राष्ट्रीयता अनेकता में एकता के लिए दूसरों को अपने से पृथक करने के लिए नहीं है हमारी राष्ट्रीयता ने 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे भद्राणि पश्यन्तु' का पाठ पढ़ाया है और विश्व मैत्री पर आधारित है ।" [1]

1:-- गुलाबराय - राष्ट्रीयता, पृ0 - 16 ।

आज भी हमारी राष्ट्रीयता की विशेषता विश्व बन्धुत्व का विश्व शान्ति है। सम्पूर्ण विश्व को युद्ध की विभीषिका से बचाने हेतु विश्वशान्ति का प्रसार करते हैं हमारे राजनैतिक नेता पं० जवाहर लाल नेहरू ने विश्व युद्ध की विनाशलीला के पश्चात शान्ति के प्रसार हेतु पंचशील का सिद्धान्त बनाया। 29 अप्रैल सन् 1954 ई० को भारत, चीन, रूस ने इसे स्वीकार किया।[1]

इस सिद्धान्त का अर्थ है कोई भी देश और वहाँ की जनता अपने विकास का मार्ग अपनी ऐतिहासिक भौगोलिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर बिना किसी बाहरी देश के दबाव के आप निश्चिन्त करे। इसके सिद्धान्त इस प्रकार हैं :--

(1) एक देश का दूसरे देश की सार्व भौमिकता और अखण्डता का सम्मान करना।

(2) एक देश का दूसरे देश पर आक्रमण न करना।

(3) एक देश को दूसरे देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना।

(4) एक देश का दूसरे देश के साथ समानता का बर्ताव करना।

(5) सम्पूर्ण समर्थन में विश्वास रखना।

यदि इन सिद्धान्तों का पालन विश्व के सभी राष्ट्र करें तो आज तृतीय विश्वयुद्ध की आशंका बनी हुई है। वह समाप्त हो जायेगी। भारत आज भी इन शर्तों व सिद्धान्तों का पालन कर रहा है तथा

1:-- आनन्द शंकर जैन - नेहरू दिव्य पुरूष पृ० - 68 ।

विश्वशान्ति एवं विश्वकल्याण हेतु 'संयुक्त राष्ट्र संघ' अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का भी भारत सदस्य है। विश्वशान्ति हेतु गुटनिरपेक्ष देशों का नेतृत्व भी कर रहा है। विश्वशान्ति एवं मानव कल्याण हेतु जितने भी कार्य हो रहे हैं भारत उन सबका समर्थक है।

तृतीय अध्याय

'साहित्य में राष्ट्रीयता' :--

जब हम साहित्य में राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय काव्य की चर्चा करते हैं तब उससे पहले यह जानना आवश्यक हो जाता है कि राष्ट्रीय काव्य से हमारा क्या अभिप्राय है । इस संदर्भ में डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने बहुत ही सुलझे हुए शब्दों में जो विस्तृत निवेदन किया है वह विचारणीय है :--

"राष्ट्रीय काव्य से हमारा तात्पर्य उस काव्य से है जिसमें किसी राष्ट्र की महिमा का गुणगान किया जाता है उसके अतीत गौरव के चित्र अंकित किये जाते हैं । जिसमें समूचे राष्ट्र को स्वाधीनता एवं स्वतन्त्रता के लिए आत्मोत्सर्ग करने के हेतु प्रेरित किया जाता है, जिसमें राष्ट्र प्रेम के साथ-साथ संपूर्ण राष्ट्र की एकता अखंडता को स्थिर रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जिसमें अपनी मातृभूमि एवं मातृभाषा के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास प्रकट किया जाता है । जिसमें राष्ट्र विरोधी पुरातन रूढ़ियों एवं परम्पराओं के प्रति जन-जन के हृदय में विद्रोह उत्पन्न करने की क्षमता होती है जिसमें राष्ट्र विरोधी शक्तियों एवं शत्रुओं के प्रति तीव्र घृणा एवं क्षोभ जागृत करने की शक्ति होती है और जो राष्ट्र की सामूहिक उन्नति, सामूहिक प्रगति एवं सामूहिक समृद्धि हेतु सर्वसाधारण के हृदय में तीव्र ज्वाला प्रज्जवलित करने में समर्थ होता है ।" [1]

अब हमें यह देखना है कि भारतीय काव्य साहित्य में राष्ट्रीयता

1:-- हिन्दी के आधुनिक कवि - डा0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ - 99

या राष्ट्रीय भावना का विकास किस पर और किस दिशा में हुआ ।
जैसा कि प्रथम अध्याय में प्रतिपादित किया गया है, कि राष्ट्रीय भावना
अनादि काल से प्रवाहित होती हुई एक विशेष धारा है । राष्ट्रीयता
का स्वरूप समयानुसार एवं परिस्थितिवश परिवर्तित होता रहता है ।
कभी धार्मिकता, कभी राजनीति, कभी सामाजिक सुरक्षा तो कभी
आर्थिकता ही राष्ट्रीयता का प्राण हो जाती है । भारतीय राष्ट्रीयता
का प्रभाव सदैव हमारे साहित्य कला एवं दैनिक जीवन पर पड़ता आया
है ।

भारत में राष्ट्रीयता का स्रोत वेदकालीन साहित्य से लेकर
आधुनिक {अर्वाचीन} साहित्य तक निर्बाध गति से निरन्तर प्रवाहित
होता आ रहा है । इसकी गति भले ही कभी मन्द तो कभी तीव्र
दिखाई देता हो, कालक्रम में वह अवश्य परिवर्तित होता रहा है, किन्तु
उसका मूल स्वरूप कभी धूमिल नहीं होने पाया है ।

वैदिक साहित्य में आर्यों की राष्ट्रीयता की व्यापक कल्पना
तथा देश के चतुर्दिक विकास की कामना जगह-जगह पर दिखाई देती है ।
आर्यों ने अपनी व्यापक राष्ट्रीयता के कारण ही भारतीयों को एक सूत्र
में बाँधा है । आर्यों की राष्ट्रीय भावना अत्यन्त पुष्ट तथा विकसित
थी और उसमें सम्पूर्ण विश्व को एक कुटुम्ब मानने पर बल दिया गया था ।
ऋग्वेद में मानव मात्र को मित्रवत् मानकर सबके साथ सद्व्यवहार करने
तथा सबको प्रगति का सुअवसर प्रदान कर अपनी उन्नति करने की भावना
व्यक्त की गई है :-- "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" [1]

1:-- ऋग्वेद : अध्याय 36 : मंत्र 18 ।

इस प्रकार समानता तथा एकता का भाव उसमें स्पष्ट रूप से प्रकट किया गया है :--

"सङ्. गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जनताम्
देवा भागं यथा पूर्वे संजानानां उपासते ।" [1]

अर्थात हम सबकी गति एक समान हों, हम सब एक साथ चलें, एक प्रकार की वाणी बोलें, सबके मन में देवताओं के समान एक प्रकार के भाव उत्पन्न हों ।

आर्यों की एक मात्र भावना थी निरन्तर आगे बढ़ने तथा उन्नति करने की :--

"वयं राष्ट्रे जागृयाम् पुरोहिताः ।।" [1] अर्थात हम देश में सावधान होकर अगुआ बने तथा "आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योति व्याधी महारथो जायताम्" [2] अर्थात हमारे राष्ट्र में क्षत्रिय, वीर, धनुर्धारी, लक्ष्यवेधी और महारथी हों । इन्हीं भावों को लेकर राष्ट्र को धन-धान्य से परिपूर्ण करने की कामना की गई है "अभिवर्धताम् पयसामि राष्ट्रेण वर्धताम् ।" [3] राष्ट्र को ही सर्वोपरि तत्व मानकर प्रधानता दी गई है और इस सम्बन्ध में यह मन्त्र कहा है ---

"राज्यानं वरं राष्ट्रं साधनं पालयेत सदा" [4]

1:-- यजुर्वेद : पूर्व अध्याय 9/23
2:-- यजुर्वेद : उत्तर अध्याय : 22/22
3:-- अथर्ववेद : 6/78/2
4:-- अग्नि पुराण : 293/2

अर्थववेद में वरूण को राजा तथा पृथ्वी को मानकर माता उससे राष्ट्र को तेज और शक्ति प्रदान करने को याचना को गयी है :--

सा नो भूमिस्त्विर्षि बल राष्ट्रे दधातूत्तमें ।"[1]

सा नो भूमिविसृजतां माता पुत्रय में पयः ।"[2]

इस प्रकार आर्यों ने मातृभूमि के प्रति स्वभावतः कृतज्ञता तथा मातृभावना प्रकट को है । यहो भावना आगे चलकर राष्ट्रोय भावना में परिणत हुई है । राष्ट्रोय भावना से समन्वित, देशभक्ति, मातृभक्ति आदि विषय के मंत्र हमारे प्राचोन साहित्य में स्पष्ट रूप से प्राप्य है, जो बाद में राष्ट्रोय भावना के रूप में विकसित हो गये ।

वैदिक काल में मातृभूमि एवं देशवासियों में माता तथा पुत्र के प्रेम के समान हो परस्पर प्रेम सम्बन्ध स्थापित किया गया है । मातृ-भूमि को रक्षा तथा उसको उन्नति के लिए सवत् प्रयत्नशील रहना हमारा राष्ट्रोय कर्तव्य रहा है ।

प्राचोन ऋषियों ने अपनो दोर्घ आयु को मातृभूमि के चरणों में समर्पित करने तथा उसके लिए सदैव आत्योत्सर्ग करने को भावना व्यक्त को है :--

"दोर्घ न आयुः प्रति बुध्यमाना वयं तुभ्यं बालिकृतः स्याम्" [3]

तथा तस्यैः हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ।"[4]

1:-- अर्थववेद : 12/1/8
2:-- वही : 12/2/10
3:-- अथर्ववेद : 12/2/62
4:-- अथर्ववेद : 12/1/26

वेदों में जगह-जगह मातृभूमि की रक्षा उसकी उन्नति तथा मंगल-भावना की अभिव्यक्ति मुक्त कंठ से गयी है । सम्पूर्ण गुणों का विकास कर शक्ति सम्पन्न होकर मातृभूमि की सेवा के और रक्षा तथा शत्रुओं का नाश करने की कामना की गई है । मातृभूमि की सेवा करना जन-जन का पुनीत कर्तव्य माना गया है ।

प्राचीन काल से ही भारतवासी अपने राष्ट्र पर अभिमान करते हैं इसका प्रमुख कारण है उनकी संस्कृति की महानता तथा अध्यात्म की पराकाष्ठा भारत अध्यात्म की कर्मभूमि रहा है ।

प्रकृति प्रत्येक तत्व के प्रति आर्यों का अपनत्व का सम्बन्ध स्थापित हो गया था । इसीलिए स्नान के समय भारत की समस्त प्रसिद्ध नदियों की स्तुति करने की आर्यों की परम्परा रही है ।

"गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जले स्मिन् सन्निधं कुरु ।" [1]

अर्थात

हे गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु तथा कावेरी तुम मेरे जल में प्रविष्ट हो जाओ । सम्पूर्ण नदियों का स्मरण तथा नामोच्चार, उत्तर दक्षिण, पूर्व और पश्चिम की सीमाओं को तोड़कर सम्पूर्ण भूमि भाग की एकता को प्रदर्शित करता है ।

1:— आह्निक सूत्रावली : स्नान प्रसंग : 106

इसी प्रकार हमारे पूर्वजों ने विभिन्न वनस्पतियों, औषधियों, पर्वतों, नदियों, पशुपक्षियों तथा सुहावनी ऋतुओं का उल्लेख कर अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया है। यह भूमि यों ही वन्दनीय है, इसकी अनमोल विभूतियाँ इस देश के रहने वालों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। देश प्रेम का जितना भव्य वर्णन भारत की संस्कृति तथा साहित्य में मिलता है उतना किसी साहित्य में नहीं।

हमारे लिए यह भूमि, जन्मभूमि, मातृभूमि, पुण्य भूमि तथा स्वर्गभूमि सभी कुछ है। जन्म भूमि को स्वर्ग से उत्तर स्थान प्रदान करना जन्मभूमि के प्रति असीम श्रद्धा अटूट प्रेम प्रगाढ़ आस्था का परिचायक है। इसी भाव को भगवान रामचन्द्र जी ने निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त किया है --

"अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते
जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

रामायण काल में आर्य संस्कृति भारत के उत्तरी भाग में ही फैली हुई थी, दक्षिणी भारत में उसका विस्तार तथा प्रभाव कम था। शायद राम ने संस्कृति विस्तार के उद्देश्य से ही रावण से युद्ध करना उचित समझा हो, क्यों राम ने आर्य संस्कृति कोसुदूर दक्षिण तक फैलाकर सम्पूर्ण भारत को सांस्कृतिक सूत्र में पिरो दिया था। उत्तर से दक्षिण तक निर्बाध गति से फैलती हुई हमारी भारतीय संस्कृति

भारतीय राष्ट्रीयता का मूलाधार सिद्ध हुई है। राजा और प्रजा के सत्प्रयत्नों सद्भावनाओं और सत्कर्मों पर ही राष्ट्रीय भावना अवलम्बित थी।

महाभारत के विशालयुद्ध का संचालन करने वाले योगिराज श्री कृष्ण को उस युग का कुशल राजनीतिक माना गया है, जिसके अथक प्रयास से देश को विविधता में एक अपूर्व एकता स्थापित हो सकी। श्री कृष्ण ने तत्कालीन देश में व्याप्त असत्प्रवृत्तियों को समूल विनष्ट कर तथा सत्प्रवृत्तियों को स्थापित कर जनमानस में राष्ट्र प्रेम की जो तरंग उत्पन्न की है वह सदैव प्रशंसनीय तो रहेगी ही साथ ही उसके फलस्वरूप जो नैतिकता स्थापित हुई उसकी लहर आज भी उसी गरिमा से प्रवहमान है, तथा हमारी राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय एकता में एक सेतु का काम करती आ रही है।

जैन, बौद्ध, मौर्य, गुप्तकालीन इत्यादि प्राकृत पालि साहित्य में यद्यपि वीरता तथा शौर्य की भावना रही परन्तु राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति काव्य साहित्य में संकीर्ण रूप में ही दिखाई पड़ती है। इसका कारण यह है कि राजनैतिक-स्वार्थ परता के कारण देश विभिन्न शासकों के अधीन रहा जो वैयक्तिक स्वार्थ-साधन के लिए विदेशियों तक से सहायक लेने में नहीं हिचकते थे। अपने प्रांत और राज्य को ही सर्वस्व मानकर अपनी अस्मिता की रक्षा में संलग्न रहे। देश को एक इकाई मानकर उसके प्रति आदरभाव प्रकट करने की उत्कट भावना न होने के कारण उस काल के काव्य साहित्य में प्रखर राष्ट्रीय चेतना उद्भूत न हो पाई।

अपभ्रंश साहित्य में राष्ट्रीय तत्व :--

चारण काल से पूर्व राष्ट्रीयता के तत्व अपभ्रंश साहित्य मे मिलते हैं इसका समय निर्धारण सामान्यत: छठो शती से ग्यारहों - बारहवीं शती तक माना गया है । अधिकांशत: अपभ्रंश में जैन साहित्य ही लिखा गया है ।

अपभ्रंश के प्रथम कवि स्वयम् "पउमचरिउ" में तथा पुष्पदन्त ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "तिसठ्ठिमहापुरसि गुणालंकार" अर्थात महापुराण में धार्मिक भावना को अभिव्यक्ति के साथ ही युद्ध का रोमांचकारी वर्णन प्रस्तुत करके राष्ट्रीय जागृति के लिए प्रेरणा प्रदान की है । इनकी रचना में भारतीय जनमानस में 'वीरता की भावना जगाने की पर्याप्त क्षमता है ।

'स्वयम्' ने 'पउमचरिउ' में अनेक स्थानों पर वीर रस के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं । निम्नांकितपंक्तियों में अंकित वीरों की गर्वोक्तियां अतीव मार्मिक एवं उत्साहवर्धिनी है :--

अण्णे कहीं जाहं सुकतं देशे अहुल्लइं कुल्लइं नगलेईं
ध सभिच्छमि हमुँ तुहुं लोहि भजें । एत्तिउ सिरूणि वडइ सामिकान्वें
अण्णेक कहीं धग-भूखंड़ देई ।
अण्णेकहु तपि विणं सम गणेइ ।
कि गंधें कि चंदनं रसेण ।
मह अंग पसहेण्णउ जसेण ।

1:-- पउमचरिउ - सं डा० हरिवल्लभ चनोलाल मायाणी, पृ० - 56-3

अर्थात किसी सेनानी की पत्नी उसे पुष्पमाला दे रही है किन्तु वह उसे यह कहकर अस्वीकार कर देता है कि मेरा सिर आज स्वामी के काम आने वाला है इसलिए तुम्हीं इसे ले लो । किसी की स्त्री उसे आभूषण दे रही है, परन्तु इन्हें वह तृण के समान मानता है । कोई वीर यह गर्वोक्ति प्रकट करता है कि मुझे गंध और रस से क्या काम? मैं तो दश से ही अपने शरीर को सुसज्जित करूँगा ।

इस प्रकार धन-वैभव का मोह छोड़कर अपने आपको स्वामी के कार्य के लिए न्योछावर करके यश पाने की लालसा सैनिकों में दिखाकर कवि ने एक प्रकार से जाति के लिए उच्च आदर्श की प्रतिष्ठा की है ।

हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के एक प्रसंग में रणांगण में प्राण न्योछावर करने वाले पति पर गर्व करने वाली वीरांगना के आदर्श को इस प्रकार प्रस्तुत किया है ---

> भल्ला हुआ जो मारिया बहिणि महारा कन्तु ।
> लज्जजन्तु वयं सिउहु जइ भग्गा घरू एंतु ।। [1]

वीर क्षत्राणी से प्रसन्नता के साथ अपनी सखी से कहती है--हे बहिन । अच्छा हुआ जो मेरा कांत (रणागंण में) मारा गया यदि वह (युद्ध भूमि से) भागकर घर लौट आता तो मुझे अपनी समवयस्का सखियों के सामने लज्जित होना पड़ता ।

1:-- हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण - सं0 पी0 एल0वैद्य, 8-4-383 ।

विद्यापति ने अपने अपभ्रंश के खण्ड काव्य 'कीर्तिलता' में तिरहुत के राजा कीर्ति सिंह की वीरता का वर्णन करते हुए वीर भावों को जगाया है :--

"रज्जु-लुद्ध असलान बुद्धि विवकम् बले घरल ।
पास बइसि विसवासि राय गयने वर मारल ।।
मंरत राम रणरोक्तपड़ु मेइनि घ घ सद्दहुअ ।
सुर राम नयर नर अर-समाठी बाम नयन पप पुरिय छुड़ा ।[1]

ऐसे वीर भावेत्तिजक एवं उत्साह वर्धक वर्णन उक्त ग्रंथ में यत्र-तत्र भरे हैं । अपभ्रंश साहित्य के रोमांचकारी युद्ध वर्णन राष्ट्रीय उन्नति में प्रेरणा-सूत्र के रूप में कार्य करते रहे । वीर भावना ही इस युग की राष्ट्रीयता का प्रधान अंग बनी रही । इस युग का वीरता पूर्ण वर्णन चारण साहित्य के लिए पृष्ठभूमि बन गया ।

<u>वीरगाथाकालीन साहित्य में राष्ट्रीयता :--</u>

अपभ्रंशकालीन वीरतापूर्ण काव्य ही वीरगाथाकालीन चारण-साहित्य की राष्ट्रीयता का आधार बना । इस काल का चारण-साहित्य मृत प्राय भारतीयों में निरन्तर शक्ति का संचार करता रहा ।

दलपति विजय का 'खुमानरासो' तथा नरपति नाल्ह की 'वीसलदेव रासो' इस काल की प्रारम्भिक प्रसिद्ध रचनाएं हैं ।

1:-- कीर्तिलता (विद्यापति) सं0 डॉ बाबूराम सक्सेना, पृ0 - 112

चारण साहित्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं तत्कालीन परिस्थितियों को अंकित करने ग्रन्थ 'पृथ्वीराजरासो' है । यद्यपि इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता संदिग्ध है तथापि तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में हम इस कृति को राष्ट्रीय काव्य धारा व्यक्त करने वाली कृति कह सकते हैं ।

'रासो' काव्य-साहित्य विशेष रूप से प्रेम एवं शौर्य का साहित्य है । परन्तु उसमें तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य युगीन परिस्थितियों का वर्णन उपलब्ध होता है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस युग के साहित्य को तत्कालीन युग की परिस्थितियों का वृहदकोश मानते हुए इसे तत्कालीन भारतीय समाज का काव्यात्मक इतिहास माना है ।"[1] बानगी के तौर पर कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं :—

गही तेग चहुवान हिन्दवान रॉन,
गजं जूथं परिकोप केहरि समान,
करे रूण्ड मुण्ड करी कुम्भ फारे,
वरं सूर सामन्त हुकि गर्ज मारे ।।
करी चीह चिप्कार करि कल्प भग्गे,
मदं तंजिय लाज उमंग भग्गे ।।
सिर नाय कम्मान प्रथिराज राजै,
पकरिये साहिं जिमि कुलिंग बाज ।।[2]

1:— हिन्दी साहित्य का आदि काल : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

2:— संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पद्मावती समय - सं०पं० विश्वनाथ गौड़ छन्द 60 ।

यद्यपि ऐसे वर्णन व्यापक राष्ट्रीयता के अन्तर्गत नहीं आते परन्तु उनमें वीरोत्तेजकता अवश्य विद्यमान है जो जाति के हृदय में वीरत्व का संचार करने में सक्षम है । इस सम्बन्ध में रासो साहित्य को लेकर- डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्त किये हुए विचार इस प्रकार हैं -- 'यह भारतीय राष्ट्र के स्वतन्त्रता के संघर्ष के प्रारम्भिक स्वरूप का व्याख्यात्मक इतिहास है अतः राष्ट्रीय चेतना के उत्तरोत्तर विकास और वृद्धि के साथ रासो का महत्व और सम्मान भी बढ़ता जायेगा । तिथियों, शिलालेखों और पुरानी पोथियों में लिखी बातों को इतिहास मानने वाले विद्वान भले ही उसे अनैतिहासिक एवं जाली कहते रहें, किन्तु भावात्मक सत्य पर विश्वास करने वाली सामान्य जनता का हृदय रासो में सदा रसमग्न होता रहा है और आगे भी होता रहेगा । युग-युग की असंख्य जनता के हृदय की भावुकता और विश्वासों की अक्षय शक्ति ही रासो की जीवनी शक्ति है । इसमें जब तक वह रहेगी, यह महा-काव्य अमर रहेगा ।' [1]

चारणकालीन वीर-रस प्रधान रचनाओं में जगनिक कृत 'आल्हाखंड' का विशेष स्थान है इसमें देश-प्रेम, राजभक्ति, निर्भयता, साहस, आत्माभिमान तथा अदम्य शक्ति के बल पर किये गये अनेक चमत्कारपूर्णकार्यों का वर्णन किया गया है जो जाति के जीवन में अक्षुण्ण शक्ति का संचार करने में समर्थ है । वीरता की भावना इसमें कूट-कूट कर भरी हुई है । कहा

1:-- संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, सं० हजारी प्रसाद द्विवेदी, नामवर सिंह प्रथम संस्करण, पृ० - 182-183 ।

जाता है कि लेकप्रियता से प्रभावित होकर सैनिकों में वीरोचित, भाव उत्साह, उमंग तथा वीरता का जोश पैदा करने के लिए प्रथम महायुद्ध के सैनिक को 'आल्हा' सुनाया जाता था । --

"गर्जत बोले आल्हा ठाकुर का तू रहो मोहिं उखाय
देखि भयंकर क्षत्री उरपै, कीरति जावै सवै नसाय
अपकीरति जब दुनियां में तब तो मृत्यु नीक ह्वै जाय
ऐसे वैसे हम क्षत्री न जो अब देवे धर्म नसाग ।" [1]

तत्कालीन राष्ट्रीय भावनाओं के विकास के लिए इसमें पर्याप्त सामग्री भरी है । इसकी ओजमयी धारा निर्विघ्न गति से प्रवाहित होती आई है । जिन राजपूत शासकों की यशोगाथा का वर्णन चारणों ने किया है उनके विषय में विचार किया जाय तो स्पष्ट होगा कि राजपूत भारतीय वीरता के प्रतीक थे और मध्ययुग में राजस्थान वह दुर्ग था जिससे भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के रक्षक निवास करते थे । "यही कारण है कि मध्य युग में वीर राजपूतों ने स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर मर मिटने में आनाकानी नहीं की । ऐसे वीरों की उज्ज्वल कीर्ति राजस्थान के चारण-काव्य में प्राप्त है ।" [2]

1:-- आल्हाखंड आठवां संस्करण, पृ0 559-60
नवलकिशोर प्रेस लखनऊ ।

2:-- वीरकाव्य - डॉ0 उदय नारायण तिवारी -
प्रथम संस्करण, पृ0 - 76 ।

इस काल की वीर-काव्यों को यदि पूर्णतया राष्ट्रीय न भी माना जाय तो भी इतना अवश्य स्वीकारना होगा कि राष्ट्रीय भावनाओं को उत्तेजना प्रदान करने में ये बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। भारतवर्ष के प्रति व्यापक प्रेम भावना की अभिव्यक्ति की कमी के कारण ही कुछ विद्वान आलोचक यह मानते हैं कि वीरगाथा-काल में राष्ट्रीय भावनाओं का अभाव था, परन्तु यह कहना सर्वथा निराधार होगा क्योंकि, उस युग में आज के अर्थों में न तो व्यापक राष्ट्र का ही अस्तित्व था न व्यापक राष्ट्रीयता का ही। छोटा सा राज्य ही राष्ट्र का प्रतीक था तथा उसके प्रति प्रकट प्रेम ही राष्ट्रीयता की भावना थी जो सीमित होते हुए भी तत्कालीन परिवेश के अनुकूल थी।

भक्तिकाल :--

वीरगाथा-काल के समाप्त होते-होते देश में मुगल साम्राज्य स्थिर होने लगा। हिन्दु-मुसलमानों का पारस्परिक द्वेष कम होने लगा। दो संस्कृतियों के संगम से नवीन राष्ट्रीयता का अभ्युदय हुआ। अकबर ने दोनों जातियों को एक सूत्र में बाँधने का भगीरथ कार्य किया। पण्डित राहुल सांकृत्यायन अकबर को अशोक और गाँधी के बीच की कड़ी मानते हैं।

इस युग के संतकवियों ने धार्मिक संकीर्णता का विरोध करते हुए रूढ़ियों पर प्रहार किए जिनमें कबीर, गुरूनानक, रैदास-पलटूदास,

---

1:-- अकबर : [भूमिका] : राहुल सांकृत्यायन, पृ0- 5-8

दादूदयाल आदि सन्तों ने धर्मगत, जातिगत तथा वर्गगत वैभिन्य को समूल नष्ट करने का प्रयास करते हुए भक्ति के माध्यम से भारतीयों में राष्ट्रीय भाव जागृत किये ।

भक्तिकालीन सन्त साहित्य में वर्णित राष्ट्रीय भावना समाजोन्मुख हो गयी तथा उसमें सामाजिक उत्थान एवं समाज सुधार वादी प्रवृत्ति के कारण धर्म, जाति एवं वर्ग के एकीकरण पर विशेष बल देकर आपसी मतभेदों को भुलाकर एक सूत्रता में बाँधने का स्तुत्य प्रयास किया गया ।

कबीर ने हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक भेद-भाव को मिटाकर एकता की प्रतिष्ठा का उपदेश दिया है :--

"कह हिन्दू मोहिराम पियारा तुरुक कहै रहिमाना ।
आपस में दोउ लरि-लरि मुए, मरम न काहू जाना ।।" [1]

"एक बूँद एक मलमूतर एक चाम एक गूदा ।
एक ज्योति यैं बस उत्पन्ना, कौन ब्राहमण कौन सूदा ।।" [2]

हिन्दू-मुस्लिम एकता पर दृष्टि रखते हुए दादूदयाल ने कहा है --

"हम सब देखी सोधि करि दूजा नाहीं आन ।
सबघर एकै आत्मा, क्या हिन्दू मुसलमान ।।" [3]

1:-- कबीर बचनावली : सं०पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय-द्वितीय संस्करण पृ० - 177 ।

2:-- कबीर ग्रन्थावली : स० श्याम सुन्दरदास संस्करण चौदहवाँ, पृ०- 82 2034 वि०

3:-- दादूदयाल की बानी - वे०प्रे० इलाहाबाद - प्रथम भाग दोहा, 24 पृ० - 136 ।

नामदेव ने हिन्दू मुस्लिम एकता के महत्व को स्वीकार करते हुए एक पद में यह भाव व्यक्त किया है :--

"हिन्दू पूजे देहरा, मुसलमान मसीत ।
नामा सोई सेविया, जहँ देहरा न मसीत ।"[1]

यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से सन्त कवियों की रचनाओं को उच्चतम स्थान नहीं दिया जा सकता, तथापि इन सन्तों ने समाज में आशातीत परिवर्तन किया ।

राजनीति के क्षेत्र में न सही, किन्तु सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय भावना की नींव डालने का अभूतपूर्व कार्य इन सन्तों ने किया ।"[2]

जायसी, कुतुबन, मंझन आदि निर्गुण शाखा के सूफी कवियों ने मुसलमान होकर भी हिन्दुओं की लौकिक प्रेमकथायें हिन्दुओं की ही बोली में अत्यन्त सहृदयता के साथ वर्णित करके प्रेम की पीर की व्यंजना के सहारे भारतीय जनता में एकता स्थापित करते हुए विभिन्न जातियों के बीच भेद-भाव की गहरी खाई को भर दिया । "सूफी कवि उक्त प्रेम कथाओं के माध्यम से हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों में सांमजस्य स्थापित करने में सफल हुए उन्होंने सूफी सिद्धान्तों का प्रचार हिन्दू संस्कृति के आदर्शों को अपनाकर किया और अपने काव्य में भारतीय जीवन की झांकी

1:-- श्री नाम देव गाथा - प्र0सं0 - शासकीय मुद्रण व लेखन सामग्री बम्बई सन् 1971 ई0 पृ0 - 864 ।

1:-- हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय भावना का विकास - डॉ0 के0के0 शर्मा, पृ0 - 86 ।

प्रस्तुत कर दोनों जातियों की एकता का सफल प्रयास किया ।"[1]

जायसी की "अखरावट" रचना का उदाहरण इस प्रकार है --

"बिरिछ एक लागी दुई डारा । एकहिं ते नाना परकारा,
मातु के एक पिता के बिन्दू । उपजे दोनों तुरुक और हिन्दू ।।"[2]

जाति-पाँति की अभेद भावना को अपने काव्य में प्रश्रय देने वाले कृष्णभक्त कवियों में सूरदास जी अग्रणी हैं :--भगवान के सामने छोटे-बड़े सभी एक हैं । इस भाव को व्यक्त करते हुए सूरदास जी कहते हैं :--

"बैठत सभा सबै हरि जू की कौन बड़ो को छोट ।
सूरदास के पारस के परसे मिटत लोह के खोट ।"[3]

भक्ति काल में राष्ट्रीय चेतना को बल देने वाले कवियों में राम-भक्ति शाखा के तुलसीदास को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । रामभक्ति के माध्यम से तुलसी ने समस्त मानव जाति को एक सूत्रता में पिरो दिया । "तुलसी ने अपने काव्य के विविध में प्रसंगों में राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त किया है । राम का अपनी जन्मभूमि के प्रति प्रेम जाति को मातृभूमि के प्रति कर्तव्य की प्रेरणा देता है । अपनी जन्म भूमि का प्रेम जाति में

1:-- हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना - डॉ० विद्यानाथ गुप्त, पृ० - 121 ।

2:-- जायसी ग्रन्थावली - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - अखरावट , पृ० -313

3:-- सूरसागर, ना०प्र० सभा-एक, 1, पृ० - 120, पद-232 ।

राष्ट्रीय भावना को विकसित करता है ।"[1]

अपनी अयोध्यापुरी को सर्वोत्तम बताते हुए कवि ने मातृभूमि तथा जन्मभूमि के प्रति अनन्य प्रेम भावना को प्रकट किया है

"जद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना ।
वेद पुरान विदित जग जाना ।।
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ ।
यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ ।।
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि ।
उत्तर दिशि बह सरजू पावन ।।
जा मज्जन ते विनय प्रयासा ।
मम समीप न पावहिं बासा ।।
अति मोहिं प्रिय इहाँ के बसी ।
मम् धामदा पुरी सुख रासी ।।
हरषे कवि सब सुनि प्रभु बानी ।
धन्य अवध जो राम बखानी" ।।[2]

भक्ति कालीन साहित्य के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्त कवियों ने सांस्कृतिक एकता तथा धार्मिक एकता को मानव कल्याण का एक मात्र उपाय माना है । यही सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकता आगे

1:— हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना – डॉ0 विद्यानाथ गुप्त
पृ0 – 155 ।

2:— रामचरित मानस – तुलसी दास – उत्तर कांड, 3.2.6 ।

चलकर समाज-सुधार तथा व्यापक राष्ट्रीय भावना की पोषक बनी ।

रीतिकाल :--

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल राजनैतिक दृष्टि से अशांति का काल था । तत्कालीन कवि राज्याश्रित बनकर आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना ही साहित्य का श्रेय समझने लगे । साहित्य में घोर श्रृंगार ही अंकित किया जाने लगा ।

देश में व्यभिचार बढ़ने लगा और गरीब प्रजा विलासियों के चक्र में पिसने लगी । देश जब अत्याचार एवं व्यभिचार के अन्धकार में डूब रहा था उस समय छत्रपति शिवाजी एवं छत्रसाल जैसे वीर शासक तथा भूषण लाल एवं सूदन जैसे राष्ट्रवादी कवि, आलोक-रश्मि के रूप में प्रकट हुए ।

शिवाजी ने देश को गुलामी के बन्धन से मुक्त कर एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास किया । उनकी दृष्टि महाराष्ट्र तक ही न सीमित होकर अखण्ड भारत तक विस्तृत थी । इस काल के कवियों में पृथ्वीराज, दुरसा, केशवदास, जटमल, मान, श्रीधर, सदानन्द, सूदन आदि प्रमुख हैं जिन्होंने अपने आश्रयदाताओं की वीरतापूर्ण प्रशस्ति की है । केशवदास के 'वीर सिंह -चरित' और 'रत्नावली' जैसी रचनाओं द्वारा इस धारा को प्रवाहित करते रहे ।

रीतिकालीन साहित्य में राष्ट्रीय काव्य धारा के कवियों में भूषण का प्रमुख स्थान है । शिवाजी को नायक चुनने का भूषण का हेतु यह

नहीं था कि वे हिन्दू हैं, वरन् एक महान वीर साहसी और जाति एवं धर्म की रक्षा में सक्षम महापुरूष होने के कारण भी उन्होंने उन्हें अपना काव्य नायक बनाया था। अपनी इस श्रद्धा को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है :—

"राखी हिन्दुआनी-हिन्दुवान को तिलक राख्यौ,
अस्मृति पुरान राखें वेद विधि सुनी मैं
राखी राजपूती राजधानी राखी राजन् को,
धरा में धरम राख्यो-राख्यो गुन-गुनी मैं।" 1

सूदन भी भूषण के समान ही राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत वीर रसोत्पादक कविता की रचना करने वाले कवि हैं 'सुजान चरित्र' उनकी प्रसिद्ध रचना है।

रणभूमि को तीर्थों के समान पवित्र भूमि बताकर स्वजाति को उधर उन्मुख होने की प्रेरणा देते हुए कवि कहता है :—

"आनि दोऊ बनी धन लोह कोह सनी धनी,
धर्मनु की मनो बान बीतन निसंग मैं।
हाथ हरि जात साथी संगत थिरात श्रेन,
भारती मैं न्हात गंग कीरति तरंग मैं।
भानु की सुता-सी कवि सूदन निकारी तेज,
बाहत सराहत कराहत न अंग मैं।

1:— शिवा बावनी - भूषण, छन्द क्र0 50 ।

वोर रस रंग यों आनन्द उमंग में सो,
पगु-पगु प्राग होत जोधन को जंग में ।।"[1]

यद्यपि इस काल के कवियों में व्याप्त राष्ट्रोय भावना व्यापक नहीं थी फिर भो उनके द्वारा सोमित रूप से जो प्रयास किये गये वह राष्ट्रोय गौरव से खालो नहीं कहा जा सकता ।

"राष्ट्रोयता के विकास में जहाँ इन वोर पुरूषों का नाम चिरस्मरणीय रहेगा, वहाँ उनके गुणों का वर्णन करने वाले कवियों को देन को कोई भो भुला नहीं सकेगा, जिनको अमर तथा ओजमयो वाणो से प्रेरणा पाकर वोर देश भक्त जोवन पर्यन्त अपने कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ रहे ।"[2]

---: आधुनिक काल :---

भारतेन्दु काल :--

हिन्दो साहित्य में राष्ट्रोयता का सुष्ठु-शोभन एवं व्यापक उदात्त रूप कहीं दिखाई देता हो तो वह आधुनिक काल में हो है । जैसा कि डॉ० सुधीन्द्र कहते हैं --"हिन्दो कविता ने अपने सुदोर्घ कालोन जोवन में राष्ट्रोयता का स्पन्दन इससे पूर्व नहीं हो पाया था । वोरगाथात्मक काव्यों का तो उपजीव्य अन्तर युद्ध का शौर्य था, भक्तों और सन्तों के भक्ति काव्यों का ध्येय भक्ति और ज्ञान था, रोति काव्यों का प्रधान लक्ष्य सामन्त नरेश थे और उप लक्ष्य श्रृंगार था, परन्तु आधुनिक युग को कविता का ध्येय समाज

1:-- 'सुजान चरित्र' - सं० राधाकृष्ण दास, ना०प्र० सभा, पृ० - 21 ।
2:-- हिन्दो कविता में 'राष्ट्रोय भावना' - डॉ० विद्यानाथ गुप्त, पृ०-189

और राष्ट्र हो गया है ।"[1]

भारतेन्दु का काल का राजनीतिक दृष्टि से पुनर्जागरण का काल है । इस काल में जिस राजनीतिक भावना का उद्भव हुआ, उसका भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है । आधुनिक राष्ट्रीयता का प्रथम उत्थान इसी काल में हुआ । अंग्रेजी शासन के विरुद्ध भारत की संगठित राष्ट्र भावना का वह प्रथम आह्वान था जिसके फलस्वरूप राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक नव चेतना का अंकुर प्रस्फुटित होने लगा । अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से भारतीयों का बौद्धिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण परिवर्तित होने लगा । युग की परिवर्तन के साथ ही साहित्यकारों की चिन्तनधारा भी बदल गयी । वे अब अपने उत्तर-दायित्व के प्रति पूर्ण सजग तथा जागरूक हो गये । उन्होंने अपनी कला द्वारा जन कल्याण का बीड़ा उठाया और वे अपनी कृतियों में नवीन उत्साह नया जीवन, आदर्श तथा अद्भुद् जागृति का सन्देश लेकर अग्रसर होने लगे ।

इस प्रकार अनेकानेक साहित्यिक संस्थाओं की स्थापना होने लगी जिससे साहित्याकार अपनी कृतियों को जनमानस तक सरलता पूर्वक पहुँचाने लगे । इस प्रकार साहित्य-विस्तार का सरल मार्ग बन जाने के कारण राष्ट्रीय भावना के विकास में गतिमयता आ गयी ।

भारतेन्दु युग की राष्ट्रीय कविता का प्रस्फुटन कई रूपों में हुआ । सबसे पहले उसकी अभिव्यंजना अतीत के गौरवमान के रूप में हुई ।

1:— हिन्दी कविता में युगान्तर – डॉ० सुधीन्द्र, पृ० – 167 ।

कवियों ने वर्तमान को भी उपेक्षित नहीं रखा, बल्कि वर्तमान की अधोगति को तरफ संकेत करके उन्होंने प्रतिक्रिया के रूप में अपनी क्षोभ युक्त वेदना भी प्रकट की है। भारतभूमि की वन्दना के द्वारा भी इन कवियों ने राष्ट्रीयता की अभिव्यंजना की है।

1:- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :--

भारतेन्दु ने युग के प्रतिनिधि कवि के रूप में एक नवीन दृष्टिकोण लेकर काव्य जगत् में प्रवेश किया। कविता के क्षेत्र में जनजागरण की ओर सर्वप्रथम ध्यान देने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही थे। उन्होंने जनता में एक नोवन भावोद्रेक किया। उनके हृदय में देश तथा जाति के उत्थान को प्रबल उमंग तरंगित हो रही थी। वे जनकवि थे और युगान्तरकारी परिवर्तन के लिए ही भारतभूमि में अवतरित हुए थे। उन्होंने आधुनिक काल में राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात करके हिन्दी साहित्यकाश में अपना स्थान चिरस्थायी बना लिया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को कविता का सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति की भावना का था। उन्होंने 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा' आदि नाटकों के अन्तर्गत कविताओं में देश दशा को मार्मिक व्यंजना की है। साथ ही 'भारत शिक्षा' 'विजयिनी विजय पताका' आदि बहुत सी स्वतन्त्र कविताओं में भी उन्होंने कहीं देशी अतीत गौरव-गाथा, कहीं वर्तमान अधोगति की क्षोभ भरी वेदना, तो कहीं भविष्य को भावना से जगी हुई चिन्ता आदि पुनीत भावों की व्यंजना करते हुए भारतवासियों में नव जागरण को भावना जागृत की है।

भारत जब हीन-दशा पर आँसू बहा रहा था तब भारतेन्दु युगीन कवि अपनी अतीत की समृद्धि और गौरव की गाथा के द्वारा देश को नई चेतना प्रदान कर रहे थे। भारत दुर्दशा पर अश्रुपूरित नेत्रों से राष्ट्रीयता का आवाहन करता हुआ कवि कहता है :—

"रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।"[1]

अपने प्राचीन वैभव की स्मृति को पुनर्जीवित करते हुए जन-जीवन में क्रान्ति एवं विद्रोह की आग सुलगाने का भारतेन्दु का प्रयास सचमुच ही सराहनीय है। भारत का अतीत कितना उज्ज्वल था? उसकी भुजाओं में विश्व की रक्षा करने की सामर्थ्य थी, किन्तु वही भारत आज निर्बल हो गया है, दुखी हो गया है। वर्तमान में परिस्थितियों के सन्दर्भ में भारत के अतीत के उज्ज्वल पृष्ठ की स्मृति हृदय पर प्रहार करती है और कवि का आहत हृदय चीत्कार कर उठता है :—

"हाय बहै भारत भुव भारी।
सब ही विधि तैं भई दुखारी।।
रोम ग्रीस पुनि निज बल पायौ।
सब विधि भारत दुखी बनायौ।।
अति निर्बली श्याम जापाना।
हाय न भारत तिनहु समाना।।"[2]

1:— भारत दुर्दशा - भारतेन्दु, डॉ० कृष्णदेव झारी, पृ० 33, प्रथम अंक
2:— भारतेन्दु ग्रन्थावली, द्वितीय भाग, पृ० - 803 ।

देश वासियों को देश की स्वाधीनता प्राप्ति के लिए कमर कसकर तैयार रहने के लिए कवि की ललकार भरी वाणी में राष्ट्रीयता का स्वर झंकृत होता है :--

उठो-उठो सब कमरन बाँधौ, शस्त्रन शान घटोरो ।
विजय निसान बजाई बावरे, आगेइ पाँव धरोरो ।।"[1]

अतीत के महापुरूषों का स्मरण दिलाकर भारतीयों में राष्ट्रीयता का भाव भरते हुए कवि कहता है :--

"उठो-उठो भैया क्यों हारो अपुन रूप सुमिरो हो ।
राम युधिष्ठिर विक्रम की तुम झटपट सुरत करोरो" ।।[2]

इस प्रकार भारतेन्दु के काव्य में राष्ट्रीय काव्य धारा का एक अक्षुण्ण प्रवाह बहता दिखाई देता है । उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा राष्ट्रीय चेतना को सशक्त रूप में जगाने का स्तुत्य प्रयास किया है । उनकी रचनाओं में सर्वत्र राष्ट्रीयता के तत्व बिखरे पड़े हैं जो देशवासियों के मन में राष्ट्रीय भावों को जागृत करने की क्षमता रखते हैं ।

भारतेन्दु के समान ही उनके समकालीन एवं सहयोगी श्री बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, बालमुकुन्दगुप्त इत्यादि भारतेन्दु मण्डल के कवियों ने भी अपने-अपनी रचनाओं

1:-- वही, पृ० - 406 ।

2:-- भारतेन्दु ग्रन्थावली, द्वितीय भाग, पृ० - 406 ।

के माध्यम से राष्ट्र प्रेम, स्वजाति हित, स्वदेश रक्षा एवं स्वराष्ट्र समृद्धि के हेतु सामूहिक रूप से प्रयास करने की प्रेरणा प्रदान की है। इन कवियों ने भी तत्कालीन भारतवासियों की दुर्दशा पर खेद व्यक्त करते हुए सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अनाचारों के प्रति क्षोभ ही प्रकट नहीं किया बल्कि भारतवासियों में स्वदेश प्रेम एवं देश भक्ति की भावना को उत्तेजित करते हुए अपने भविष्य को सुधारने की प्रेरणा प्रदान की।

बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन :--

भरतेन्दु के काव्य में प्राप्त होने वाली सभी प्रवृत्तियाँ 'प्रेमघन' की रचनाओं में समुपलब्ध हैं। उनका मुख्य क्षेत्र जातीयता समाज-दशा और प्रेम की अभिव्यक्ति है।

राष्ट्रीय भावना की नवीन लहर से उनका अविच्छिन्न सम्बन्ध था। "देश की दुरवस्था के कारणों और देशोन्नति के उपायों का जितना वर्णन उन्होंने किया है, उतना भारतेन्दु की कविताओं में भी नहीं मिलता।" समाज को सचेत करता हुआ कवि कहता है :--

"बीती जो उसको भूलो, संभलो अब तो आगे से,
मिलो परस्पर सब भाई, बन्धु एक प्रेम के धागे से।" [2]

1:-- प्रेमघन सर्वस्व, प्रेमघन, पृ0 - 375 ।

2:-- भारत वन्दना 'प्रेमघन सर्वस्व', प्रथम भाग, पृ0 - 629 ।

अपनी मातृभूमि से बढ़कर सुखदायी स्थान कवि को अन्यत्र नहीं दिखाई देता । निम्नांकित पंक्तियों में राष्ट्रीय भावों की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है :--

"वह मनुष्य कहिबे के योग न कबहुँ नीच नर ।
जन्मभूमि निज नेह नाहिं जाके उर अन्तर ।
यद्यपि वस्यो संसार सुखद थल विविध लखाहीं ।
जन्मभूमि की पै छवि मन ते बिसरत नाहीं ।" [1]

परन्तु उसी मातृभूमि के गौरवशाली पवित्र स्थानों की वर्तमान दुर्दशा पर कवि उद्विग्न होकर कहता है :--

"नहिं वह काशी रह गयी, हती हेममय जौन ।
नहिं चौरासी कोस की, रही अयोध्या तौन ।
राजधानी जो जगत की, रही कभी सुखसाज ।
सो बिगहा दस बीस मैं, सिकुड़ी सी जनु आज ।"

भारतीयता की भावना से ओत-प्रोत कवि भारतीय जन मानस में एक सूत्रता की कामना करता हुआ आवाहन करता है :--

हिन्दू मुसलमान जैन पारसी ईसाई सब जात ।
सुखी होय हिय भरे प्रेमघन सकल भारती भ्रात । [2]

1:-- वही, पृ0 - 69 ।
2:-- वही, पृ0 - 632 ।

अपनी सभी वस्तुओं पर आत्मीयता तथा प्रेम भावना से व्यक्त करता हुआ कवि सबको अपने देश-भाषा, आचार-विचार रीति-रिवाज और वेशभूषा को अपनाने का अनुरोध कर राष्ट्रीय भावना की सच्ची उमंग उत्पन्न करता है :--

अपनी जाति वस्तु अपने आचार देश भाषा से,
रक्खौं प्रीति रीति निज धर्म वेष पर अतिममता से ।"[1]

<u>प्रतापनारायण मिश्र :--</u>

भारतेन्दु के समान प्रताप नारायण मिश्र ने भी राष्ट्रीय भाव-परक काव्य रचना की है । भारत देश में आर्थिक संकट उत्पन्न करने वाले विदेशियों की करतूतों का भंडा फोड़ करते हुए कवि ने तत्कालीन मंहगाई, भूख, अकाल आदि से ग्रस्त जनता की कारूणिक स्थिति का यथार्थ चित्र उपस्थित किया है :--

"भागो-भागो अब काल पड़ा है भारी ।
भारत पै घेरी घटा विपत की कारी
सब गये बजन व्यापार इतै से भागो
उधम पौष नसि दियो, बनाय अभागो
अब बची खुची खेती हूं खिसकन लागो
चारहु दिसि लागो है मंहगी की आगो " [2]

1:-- प्रेमघन सर्वस्व - प्रथम भाग, पृ0 - 376 ।
2:-- कविता कौमुदी - सं0 पं0 रामनरेश त्रिपाठी, पृ0 - 38 ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए एकता के महत्व पर बल देते हुए कवि ने कहा कि भाई-भाई के बैर के कारण हम परदेशियों के पैर पड़ते हैं और यही द्वेष भारत-शशि के लिए राहु बना। घर के भेदिया ने ही लंका दहन किया :--

"भाय-भाय आपस में लरैं, परदेसिन के पायन परैं।
यह द्वेष भारत शशि राहु घर का भेदिया ही लंका दाहू।"[1]

इस प्रकार प्रताप नारायण मिश्र ने अपनी कविताओं में भारतीय जनता के सामने अपनी आर्थिक विषमता एवं पराधीनता जन्य दुर्दशा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करके जाति में राष्ट्रीय चेतना भरने के अपने कर्तव्य को अच्छी तरह निभाया है।

राधेदेवी प्रसाद 'पूर्ण' :--

राष्ट्रीयता के सैद्धान्तिक तत्वों में जातीय एकता के महत्व से भी भारतेन्दु कालीन कवि अच्छी तरह परिचित थे। जातीय एकता का सन्देश न्यूनाधिक मात्रा में भारतेन्दु कालीन सभी कवियों ने दिया है। भारतेन्दु के समकालीन कवि रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' ने जातीय एकता पर विश्वास प्रकट करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि विविध जातियाँ भारत के ही विविध अंग हैं अतः उन्हें आपसी भेद-भाव को भूल जाना चाहिए।

1:-- लोकोक्ति शतक - पं० प्रताप नारायण मिश्र, पृ० - 3 ।

"भारत-तनु में है विविध प्रान्त-निवासी अंग
पंजाबी सिन्धी सुजन महाराष्ट्र तैलंग ।
महाराष्ट्र तैलंग वंग देशीय बिहारी
हिन्दुस्तानी मध्य हिन्द जन वृन्द बराटी
गुजराती उत्कली आदि देशी सेवारत,
सभी लोग हैं अंग बना है जिससे भारत " [1]

राधाकृष्णदास :--

भारतेन्दु कालीन कवियों ने समाज में नवीन चेतना भरने का प्रयत्न किया । कुछ कवियों ने अतीत का गान प्रस्तुत कर तो कुछ ने वर्तमान पर आँसू बहाकर तथा कुछ ने भविष्य की कामना कर जनमानस को एक नई दृष्टि देने का प्रयत्न किया । राधाकृष्ण दास ने अपने गौरवमय अतीत को स्मरण करते हुए सुनहरे भविष्य की कामना की है :--

"कहाँ परीमित कहाँ जनमेजय, कहँ कहँ विक्रम कह भोज ।
नन्द वंश कहं चन्द्रगुप्त, कहं हाय कहाँ वह ओज ।" [2]

मातृ भूमि की वन्दना राष्ट्रीय कवियों की प्रवृत्तियों में से एक प्रवृत्ति रही है । राधाकृष्णदास ने भी भारत की भौगोलिक सुषमा का वर्णन करते हुए उसके प्रति अपनी श्रद्धा को प्रकट किया है :---

---

1:-- स्वदेशी कुण्डल, रायदेवी प्रसाद पूर्ण, पृ0 - 12 । ।

2:-- राधाकृष्ण दास ग्रन्थावली, सं0 श्याम सुन्दर दास, पृ0 - 8 ।

"हमारो उत्तम भारत देश ।
जाके तीन ओर सागर है उत हिमगिरो अतिवेश ।।
श्री गंगा यमुनादि नदो है विंध्यादिक परवेश ।
राधा चरण निस्मृति साढ़ों जब लौं रवि-राकेश ।।" [1]

बालमुकुन्द गुप्त :--

भारतेन्दु के समकालीन कवियों में से अपनो राष्ट्रीय भावों से युक्त कविता द्वारा भारतीय जनमानस में एकता के भावों का सृजन करने वाले बालमुकुन्द गुप्त का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है । भारत की आर्थिक विषमता के सबसे बड़े शिकार एवं श्रमिक लोग रहे हैं । बालमुकुन्द गुप्त के हृदय में किसानों के प्रति अपार सहानुभूति थी । किसानों की दयनीय दशा पर आँसू बहाते हुए कवि कहता है :--

"अहा विचारे दुख के मारे
विसि दिन पच-पच मरे किसान
जब अनाज उत्पन्न होय
तब सब उठा ले जाय लगान ।" [2]

वर्तमान दुर्दशाग्रस्त भारत का स्वरूप देखकर गुप्त जो करुणा विह्वल हो उठते हैं और वे भारत के अतीत कालीन सुख समृद्धि युक्त साम्राज्य को पुनः एक बार देखने के लालायित हैं :--

---

1:-- आधुनिक काव्य धारा, डा० केशरीनारायण शुक्ल, पृ० - 38 में उद्धृत

इन दुखियान अंखियान में बसे आपको राज ।
जहँमारी को डर नहीं, अरू अकाल को त्रास
जहाँ करे सुख सम्पदा, बारह मास निवास
जहाँ प्रबल को बल नहीं, अरू निबलन को हाय
एक बार सो दृश्य पुनः आँखिन देहु दिखाय ।" [1]

भारतेन्दु युगी कवियों का झुकाव राजनीतिक धार्मिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में आदर्शमय सुधार की ओर लक्षित होता है । राजनीतिक क्षेत्र में उदारवादी राष्ट्रीयता की चेतना व्याप्त थी । कवि एक ओर जनता के व्याख्याता थे तो दूसरी ओर सरकारी रूख के पक्षधर भी थे । वे सरकार तथा जनता के बीच व्याप्त खाई को पाटकर एक सुदृढ़ सेतु का काम कर रहे थे । जिससे सरकार तथा जनमानस के बीच फैला वैमनस्य समाप्त हो जाय ।

जैसा कि डॉ० जितराय पाठक ने लिखा है :-- भारतेन्दु युगीन कवियों ने राजभक्ति की जो कविताएं लिखी उससे यह नहीं समझना चाहिए कि वे चाटुकार थे अथवा उनमें देशभक्ति की भावना का अभाव था । वे पूर्णतः देश भक्त थे और उनमें राष्ट्रीय चेतना का ज्वार उमड़ रहा था, लेकिन उक्त काल में राष्ट्रीयता का आदर्श ब्रिटिश राज्य को उखाड़ फेंकने के बदले उसकी छत्र-छाया में रहकर औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना चाहता था । इसलिए उग्रवादी विचारधारा का पवर्तन उस काल में न हो सका ।"

1:-- बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली, प्रथमभाग, पृ0-588-589 ।

कहने का तात्पर्य यह है कि भारतेन्दु युगीन कवि शासन-विद्रोही हैं, राज विद्रोही नहीं । उनका शासन के प्रति निष्क्रिय विद्रोह राजभक्ति के आवरण में प्रच्छन्न हैं । परन्तु जब कवियों की आँख से राजमोह का परदा हटता गया और समय एवं दासता की कठोरता सामने आती गयी तो उनमें व्याप्त असंतोष खुलकर प्रकट होने लगा तथा शासन के प्रति उनका दृष्टिकोण परिवर्तित होता गया ।

विवेच्य काल में काव्य की विभिन्न धाराओं के होते हुए राष्ट्रीय भावना प्रबल रही । इस युग की कविताओं में हिन्दू संगठन और हिन्दू उत्थान के भाव अधिक मिलते हैं । कवियों ने राष्ट्रीय स्वाधीनता के लक्ष्य को सदा सम्मुख रखा । इन कवियों की सबसे बड़ी और प्रमुख विशेषता यह थी कि एक तरफ वे भारत के उज्ज्वल अतीत को वर्ण्य विषय बनाकर भारतीयों में राष्ट्रीय भावना जागृत करने की प्रेरणा देते रहे तो दूसरी ओर नवीन की स्थापना कर भारतीयों में नव-चेतना भरते रहे ।

अतः हम कह सकते हैं कि प्राचीन और नवीन का समन्वय ही इनकी विशिष्टता है ।

इस युग के कवियों का हृदय उमंग से भरपूर था और वे एक राष्ट्रीय सन्देश जनता तक पहुँचाना चाहते थे । इनकी कविताओं में देश की वास्तविकता दशा झलकती है और राष्ट्रीय जीवन की उन्नति की ओर ले जाने के लिए उनमें पर्याप्त उपकरण विद्यमान हैं । "वे राष्ट्रीय कवि थे उनकी कविताएं राष्ट्रीय कविताएं कही जा सकती है ।" [1]

1:-- आधुनिक काव्य धारा - डॉ० केसरी नारायण शुक्ल, पृ० - 39

द्विवेदी युग :--

द्विवेदी युगीन कवियों ने अपने पूर्ववर्ती युग के कवियों की आधार शिला पर ही अपने राष्ट्रीय काव्य के भवन का निर्माण करने का प्रयास किया था। भारतेन्दु युगीन साहित्य की अपेक्षा द्विवेदी कालीन साहित्य में राष्ट्रीयता का स्वर और अधिक तीव्र तथा प्रखर हो उठा। राष्ट्रीय भावना की उत्तेजना में राजभक्ति का स्वर मन्द पड़ गया था। अंग्रेजों की नीति और शोषण के प्रति लोगों में अब मात्र उदासीनता ही नहीं रही गई, वरन् उससे मुक्ति का उपाय भी सब मिलकर सोचने लगे। फलतः इस युग के कवियों ने राष्ट्रीय चेतना अत्यधिक सशक्त एवं सबल रूप से परिलक्षित होती है। इस युग के सबसे उल्लेखनीय कवि हैं। अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और मैथिलीशरण गुप्त। हरिऔध ने अपने 'प्रियप्रवास' वैदेही' 'वनवास' चोखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' आदि काव्यों द्वारा स्वराष्ट्र प्रेम, देशभक्ति जाति सेवा, लोकहित आदि भावनाओं की व्यंजना की।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने अनेक काव्यों में राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हुए अपनी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय भावों का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार किया। जनजीवन में राष्ट्रीय भावना का प्रयास करने वालों में पं० रामचरित उपाध्याय, पं० नाथूराम शंकर शर्मा, पं० गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', लाला भगवानदीन, पं० रामनरेश त्रिपाठी आदि उल्लेखनीय हैं। द्विवेदी युग में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति विविध रूपों में दिखाई देती है ---

§1§ मातृभूमि वन्दना :--

भारत भूमि को दिव्य मातृभूमि में कल्पित करके इस काल के कवियों ने मातृभूमि वंदना के शत् शत् गीत प्रस्तुत किये हैं। इन गीतों का स्वर क्रान्तिवाहक बनकर जनमानस पर छा गया जिसका आरम्भ किया श्रीधर पाठक ने। वे ही भारत देवी के प्रथम महागायक थे। उन्होंने "हिन्द वन्दना", भारतोत्थान, "भारत श्रीगीत" आदि अनेक कविताओं में भारत माँ की वन्दना की है।

"जय-जय प्यारा भारत देश, जय-जय प्यारा जग से न्यारा
शोभित सारा देश हमारा, जगत मुकुट जगदीश दुलारा
जय सौभाग्य सुदेश
जय-जय प्यारा भारत देश

× × × ×

स्वर्गिक शीश फूल पृथ्वी का, प्रेम-मूल, प्रिय लोकत्रयी का
सुललित प्रकृति नटी का टीका, ज्यों निशि का राकेश
जय-जय प्यारा भारत देश।" [1]

मैथिलीशरण गुप्त जी ने भारत वर्ष को पुण्य भूमि के रूप में प्रस्तुत किया है ---

---

1:-- भारतगीत श्रीधर पाठक,
द्वितीय संस्करण, पृ० - 42 ।

"प्रभु ने स्वयं पुण्यभू" कहकर

यह पूर्ण अवतार लिया ।

देवों ने राज सिर पर रखी,

दैत्यों का हिल गया हिया ।

लेखा श्रेष्ठ इसे शिष्यों ने

दुष्टों ने देखा दुर्द्धर्ष

हरि की क्रीड़ा क्षेत्र हमारा

भूमि भाग्य सा भारत वर्ष । [1]

§ 2 § अतीत का गुणगान :--

भारतेन्दु युगीन कवियों ने अतीत के जो स्वर छेड़े थे, इस युग के कवियों ने उन स्वरों में गूँज उत्पन्न कर दी । देश का भव्य रूप अंकित करते हुए उसके विश्वव्यापी रूप का उत्कर्ष पूर्ण चित्र निरूपित किया गया । देश के उन वीरों ने जिन्होंने स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए सर्वस्व बलिदान किया थ । इस प्रकार के चित्र सर्वाधिक रूप में मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में विशेष रूप से अंकित हुए हैं :--

'नीलांबर परिधान हरित पट पर सुन्दर है

सूर्य, चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है

नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डल हैं

बंदी जन खग-वृन्द शेष फन सिंहासन है

1:-- मंगलघट - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० - 55 ।

करते अभिषेक पयोद हैं बलिहारी इस वेष की ।

हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की " । [1]

अतीत का गुणगान रामनरेश त्रिपाठी, डा० गोपाल शरण सिंह, हरिऔध, सियाराम शरण गुप्त, मन्मथ द्विवेदी आदि सभी कवियों ने बड़ी ही तन्मयता से किया है । अतीत की इन गाथाओं ने सचमुच वर्तमान वीरों के प्राणों में चैतन्य की ज्योति जगाई । गुप्त जी ने भारत भारती के राशि-राशि छन्दों में भारत के गौरवोज्ज्वल अतीत का अनेक प्रकार से आख्यान किया है :--

देखो हमारा विश्व में कोई नहीं उपमान था ।

नर देव थे हम और भारत, देवलोक समान था"।। [2]

आर्यभूमि की देवियाँ भी स्वयं वीर थीं और वीर पुत्रों को जन्म देती थीं । उनकी प्रशस्ति में द्विवेदी जी ने लिखा है --

"वीरांगना भारत-भामिनी थीं,

वीर प्रसू भी कुल कामिनी थीं

जो थीं, जगत्पूजित वीर-भूमि

वही हमारी यह आर्यभूमि है ।।" [3]

1:-- वही०, पृ० - 9 ।

2:-- भारत भारती मैथिली शरण गुप्त, अतीत खण्ड, छन्द - 74, पृ० - 76 ।

3:-- द्विवेदी काव्य माला, पृ० - 407 ।

§ 3 § वर्तमान का चिंतन :--

राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए वर्तमान ही अतीत का प्रेरक रहा है। इसलिए वर्तमान स्थिति के चिंतन से समन्वित काव्य का सृजन भी हिन्दी में राष्ट्रीयता की भावना को अभिव्यंजित करने का हेतु हुआ। मैथिलीशरण गुप्त ने वर्तमान पर क्षोभ व्यक्त करते हुए लिखा है कि अब भारत में मात्र पंक ही बचा है कमल तो क्या, जल भी अब शेष नहीं है --

"अब कमल क्या, जल तक नहीं, सर-मध्य केवल पंक है
वह राज-राज कुबेर अब हा! रंक भी रंक है।" 1

पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी 'पथिक' शीर्षक रचना के माध्यम से भारत की बुभुक्षा एवं दारिद्रय का विदारक किन्तु यथार्थ चित्र खींचा है--

धधक रही है सब ओर भूख की ज्वाला है घर-घर में,
माँस नहीं है निरी साँस है, शेष अस्थि पंजर में।
अन्न नहीं है वस्त्र नहीं, रहने का न ठिकाना।
कोई नहीं किसी का साथी, अपना और बिगाना।।" 2

§ 4 § जागरण गीत :--

इस काल के कवियों ने जागरण गीत लिखकर देश के युवक वर्ग

1:-- भारत-भारती, मैथिलीशरण गुप्त, वर्तमान खण्ड-2, पृ0 9।
2:-- पथिक, रामनरेश त्रिपाठी, पृ0 - 45 ।

की चेतना प्रदान की । गाँधीवाद से प्रभावित अहिंसा और सत्य का जयघोष करने वाले जागरण-गीत मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं में विशेष रूप से मिलते हैं ।"[1]

प्रायः प्रत्येक कवि ने देश के नौजवानों में स्वदेशाभिमान जागरण किया और मुक्ति का संदेश प्रेषित किया इनके गीतों में आक्रोश और करुणा के स्वर मिश्रित हैं । सुभद्रा कुमारी चौहान ने "वीरों का कैसा हो बसन्त" और "झाँसी की रानी" जैसे गीत लिखकर प्रेरणा की चिनगारी फूँक दी ।

डॉ० सुधीन्द्र ने ठीक ही लिखा है :— "जिस समय राष्ट्र में स्वराज्य या स्वशासन की सार्वभौम आकांक्षा जन-कण्ठ से मुखरित हो रही थी, देश-प्रेम की वह भावना जो केवल मानस के कच्छ से उच्छ्वास बनकर मंडरा रही थी, अब प्राणों की उत्कट चेतना लेकर वज्र की भाँति गर्जन करने लगी । उस वज्रनाद को सुनकर हिन्दी राष्ट्रीय-वीणा में स्वाधीनता के तार बजने लगे ।"[2]

§ 5 § <u>अभियान गीत</u> —

जागरण गीतों की भाँति अभियान गीत भी इस युग में राष्ट्रीय चेतना को उत्तेजित करने के लिए लिखे गये । इन गीतों में 'राष्ट्र एका दर्प और ओज ही प्रतिध्वनित हुआ' ।

1:— भारत भारती, मंगलघट आदि ।

2:— डॉ० सुधीन्द्र, हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० - 179 ।

इनमें सेवा, त्याग और कर्मयोग की भावनाएं सर्वोपरि थीं, जिनमें स्वराज्य के जन्मसिद्ध होने का भाव मुखरित हो रहा था। प्रायः प्रत्येक कवि 'बढ़े चलो' की प्रेरणा देकर कठिनाइयों, दुर्गमताओं को पार करने का मंत्र प्रदान कर रहा था।

§ 6 § क्रान्ति की चेतना :--

द्विवेदी युगीन कवियों में क्रांति की चेतना का भी अभाव नहीं है। न्याय के लिए इन कवियों ने क्रांति का आह्वान किया और वीर पूजा के माध्यम से उसकी आराधना की।"[1] कर्मवीर बनने की प्रेरणा देते हुए गुप्त जी ने कहा है --

"वीर वीर बनकर आप अपनी विघ्न बाधाएं हरो।
मर कर जियो, बन्धन, विवश पशु सम न जीते जी मरो।।[2]

उत्तेजना का यही स्वर और भी उग्ररूप से प्रकट हुआ है बद्रीनाथ भट्ट की इन पंक्तियों में :--

"उठो ! वीरगण उठो ! शास्त्र लो,
ले, लो खड्ग पटक दो म्यान।
बढ़ो सुदृढ़ हो विजय करो, या
रणक्षेत्र में दे दो प्राण।"[3]

1:-- मर्म स्पर्श, हरिऔध ! पृ0-107 ।
2:-- चेतन ! स्वदेश संगीत : मैथिलीशरण गुप्त ।
3:-- राष्ट्रीय वीणा, प्रथम भाग, श्री बद्रीनाथ भट्ट, पृ0 - 13 ।

§ 7 § जातिगत एकता :--

द्विवेदी कालीन कवियों ने राष्ट्रीयता की उद्‌भावना में जातीय एकता के महत्व को भी जानकर स्थान-स्थान पर उसका प्रतिपादन किया है। मैथिलीशरण गुप्त ने भी जातीय वैमनस्य एवं विभेद को राष्ट्र के कल्याण के लिए विघातक मानकर हिन्दू-मुसलमानों को एक होने का संदेश दिया है :--

"हिन्दू मुसलमान दोनों अब छोड़ें वह विग्रह की नीति।
प्रकट की गयी यह केवल अपने वीरों के प्रति प्रीति।"[1]

उर्दू के प्रसिद्ध कवि अकबर ने भी हिन्दू और मुसलमान दोनों कौमों को एक रहकर जीने का संदेश देते हुए कहा है :--

"कहता हूँ मैं हिन्दू और मुसलमाँ से यही।
अपनी-अपनी रविश पै तुम नेक रहो।
लाठी है हवाय-दहेर पानी बन जाये।
मौजों की तरह लड़ो मगर एक रहो।"[2]

§ 8 § भाषिक एकता :--

राष्ट्रीयता के पोषक एवं संवर्द्धक के लिए भाषा भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस तथ्य से द्विवेदी युगीन कवि अनभिज्ञ नहीं थे।

1:-- गुरुकुल, उपोद्‌घात - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० - 3।

2:-- महाकवि अकबर - रघुराज किशोर, पृ० - 36।

वे भारतेन्दु के 'निज भाषा उन्नति अहै सर्व उन्नति को मूल' सिद्धान्त पर चलने वाले थे। जगन्नाथ प्रसाद द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा का मार्मिक शब्दों में प्रतिनिधित्व करते हुए कहा है :--

"जो हिन्दू-हिन्दी तजै, बोलै इंगलिश जाय।
उनकी बुद्धि पै परयौ, निहचय पाथर हाय।।
देशन में भारत भलौ, हिन्दी भाषन माहिं।
जातिन में हिन्दू भलो, और भलो कुछ नाहिं।।" [1]

§ 9 § स्वदेशी आन्दोलन :--

बंग भंग के फलस्वरूप जब देश में स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात हो गया तथा कवियों ने उसके समर्थन में स्वदेशी के प्रति अनुराग की भावना को उत्तेजित करने में योग दिया। श्रीधर पाठक के शब्दों में यही भाव व्यक्त हुआ है :---

वन्दनीय वह देश जहाँ के देसी निज अभिमानी हों,
बान्धवता में बंधे परस्पर परता के अज्ञानी हों।" [2]

आलोच्य काल की राष्ट्रीय कविता सर्वाधिक ओज पूर्ण है। उसके भीतर जीवन का यथार्थ अधिक तीव्र स्वर में प्रकट हुआ है। द्विवेदी युग की कविता राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता है। "इस युग की राष्ट्रीयता साम्प्रदायिक और प्रान्तीयता के ऊपर अति उदार और व्यापक राष्ट्रीयता

1:-- महाकवि अकबर - रघुराज किशोर, पृ0 - 36 ।

2:-- राष्ट्र भारती, राष्ट्रीय शिक्षा ग्रन्थ माला, प्रथम संस्करण पृ0 - 74 ।

है मातृभूमि पर सर्व स्वर बलिदान-स्वार्थ त्याग तथा पारस्परिक वैमनस्य को दूर करने को अमोघ प्रेरणा देकर इन कवियों ने अंतर्कीर्ण राष्ट्रीय भावना को विकसित किया तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों को जन्म दिया ।"

देश प्रेम, जातीय एकता, वर्तमान के प्रतिक्षोभ तथा अतीत के प्रति अगाध श्रद्धा का भाव जागृत करने वाले ये कविगण निश्चय ही राष्ट्रीय कवि थे ।

संक्षेप में कह सकते हैं कि द्विवेदी युग में भारतीय राष्ट्रीयता की भावना अधिक तीव्रता के तथा प्रखरता से काव्य माध्यम से प्रकट हुई । राष्ट्रीय भावों से प्रेरित होकर ही उन्होंने नवयुग का निर्माण किया तथा देश एवं जाति को राष्ट्रीय जीवन का संदेश देकर पुनः जीवित एवं स्वतंत्र रहने योग्य बनाया दिया । इनका यह राष्ट्रीय प्रयास भारतीय साहित्य तथा इतिहास के गौरव को सदा अमरता प्रदान करता रहेगा ।

छायावादी काव्य में राष्ट्रीयता :--

वर्तमान क्षोभ, निराशा एवं कोलाहल से ऊबा हुआ कवि क्षणिक एकान्त एवं शान्त वातावरण में जाकर शान्ति पाना चाहता था । यद्यपि छाया-वाद युग का काव्य सौन्दर्य प्रेम का काव्य है तथापि उसमें राष्ट्रीयता के स्वर भी समाहित हुए हैं । श्री शिवदान सिंह चौहान ने छायावाद की कविता को राष्ट्रीय जागृति में ही पनपी हुई काव्य धारा के रूप में स्वीकार किया है :--

---

1:-- हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं० डॉ० नगेन्द्र पृ० - 513

"जब छायावादी कविता को मान्यता प्राप्त हुई तो हिन्दी के आलोचकों ने यह स्वीकार किया कि छायावादी कविता हमारे देश की राष्ट्रीय जागृति की हलचल में ही पनपी और फूली-फली है और इसकी मुख्य प्रेरणा राष्ट्रीय और सांस्कृतिक है।"[1]

छायावादी राष्ट्रीय काव्य-धारा में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से दृष्टव्य हैं :--

1:- <u>प्रशस्ति गान</u> :--

प्रसाद, पंत और निराला के गीतों में देश की प्रशस्ति के स्वर सुन्दरता से व्यक्त हुए हैं। निराला जी देश को जड़ प्रतीक न मानकर उसे सजीव-दिव्य और सौन्दर्य का प्रतीक मानते हैं।"[2]

प्रसाद जी ने अपने नाटकों और अनेक गीतों में भारत का मंगलमय चित्र प्रस्तुत किया है :--

"अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को
मिलता एक सहारा
सरस-तामरस-गर्भ विभा पर
नाच रही तरु शिखा मनोहर
छिटका जीवन हरियाली पर
मंगल कुंम-कुंम सारा।"[3]

1:-- हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : शिवदान सिंह चौहान, पृ0 - 61
2:-- गीतिका - निराला, पृ0 - 68
3:-- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद, पृ0 - 100

पंतजी ने भारत माता को ग्रामवासिनी के रूप में अंकित कर गाँधी नीति का समर्थन किया है। जन्मभूमि को स्वर्ग से महान् मानकर उसका स्तवन किया है जिसमें अतीत का गौरव-गान भी है।" [1]

देश का मनोरम उज्जवल अतीत :--

पूर्व परम्परा की भाँति छायावादी कवियों ने भी देश के उज्जवल अतीत के गीत गाये हैं :--

गौरवमय भारत के बारे में कवि का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है :--

जगे हम लगे जगाने विश्व-विश्व में फैला फिर आलोक
व्योमतम पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संस्कृति हो उठी अशोक [2]

डॉ० राम कुमार वर्मा अतीत के शहीदों का स्मरण करते हुए युवकों को प्रेरणा देते हैं।" [3]

वर्तमान का चित्रण एवं आक्रोश :--

छायावाद के कवि देश की आर्थिक विषमता, मजदूरों और किसानों की दयनीय, गाँव के उजड़े रूप आदि विषयों पर भी काव्य सृजन कर लोगों में प्रेरणा भरते रहे। भारत की आर्थिक तथा दयनीय दशा का चित्रण निराला जी ने भिखारी के शब्द चित्र के माध्यम से किया है :--

---

1:-- स्वर्ण-धूलि : सुमित्रा नन्दन पन्त, पृ० - 21 ।
2:-- स्कन्दगुप्त, जयशंकर प्रसाद, पृ० - 150 ।
3:-- आकाशगंगा, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० - 89 ।

"वह आता---

दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर जाता

पेट-पीठ दोनों मिलकर है एक,

चल रहा लकुटिया टेक,

मुट्ठी भर दाने को

भूख मिटाने को,

मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता,

दो टूक कलेजे के करता,

पछताता, पथ पर आता" [1]

नारीस्वातन्त्र्य का समर्थन :--

छायावादी कवियों ने युग-युग से वन्दिनी नारी को श्रद्धा के रूप में देखने की कामना की है और उसे मुक्त करने का सन्देश दिया है । प्रसाद ने प्रायः सभी नारी पात्र सौन्दर्य और स्वतन्त्रता के समन्वय हैं ।

सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपने वीरतापूर्ण गीतों के माध्यम से आत्मोत्सर्ग की भावना को जागृत किया तथा "झाँसी की रानी" कविता के द्वारा स्वराष्ट्र के लिए बलिदान का मार्ग प्रशस्त किया ---

"सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,

बूढ़े भारत में भी फिर से आई नयी जवानी थी,

गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,

दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी ।

1:-- परिमल - निराला, पृ0 - 133 ।

चमक उठी सन् सत्तावन में
वह तलवार पुरानी थी,
बुन्देलों हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मरदानी वह तो,
झाँसी वाली रानी थी ।"[1]

सचमुच छायावादी युग में लिखी गई राष्ट्रीय रचनायें प्रेरणादायी और ग्राह्य बन गयी । छायावादी सौन्दर्य काव्य सरिता में राष्ट्रीय स्वर तत्व से भरपूर रचनायें द्वीप की तरह अपना व्यक्तित्व बनाये हुए हैं।

सन् 1921 के पश्चात विस्तृत राष्ट्रीय स्वर :--

सन् 1921 के पश्चात राष्ट्रीय काव्यधारा में क्रांति की तीव्र झंझा उठने लगी । कवि अवमार्ग युग द्रष्टा नहीं था, वह मोहन के साथ कारागृह में जाने में गौरव अनुभव करने लगा । स्वतन्त्रता के गीत उसके अनुभव गीत थे । बलिदान और क्रांति इन गीतों के मुख्य स्वर थे । श्री विद्यानाथगुप्त के शब्द उल्लेखनीय हैं:--

"भारतेन्दु काल में स्वतन्त्रता यज्ञ की तैयारी मात्र थी, द्विवेदी काल में यज्ञ की अग्नि प्रज्जवलित हो चुकी थी । परन्तु प्राणों की आहुतियां डालकर यज्ञ को सम्पूर्ण करना तो नवीन युग में ही सम्भव हो सका ।"[2]

1:-- मुकुल - सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ0 - 54 ।
2:--विद्यानाथ गुप्त - हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृ0 - 307 ।

इस युग की राष्ट्रीय काव्य प्रवृत्तियों के अन्तर्गत क्रांति के स्वरों की गूँज और बलिदान की भावना के स्वर ही मुख्य थे।

क्रान्ति के स्वरों की गूँज :--

इस युग के कवियों ने देश की विशालता और अतीत का स्मरण करते हुए उसके हिमालय से हुंकार उठने की प्रार्थना की" [1] और दिनकर ने उज्जवल अतीत का स्मरण करते हुए वर्तमान दुर्दशा का अन्त करने के लिए पुनः पुनः क्रांति कुमारी आराधना की है।

कविवर 'नवीन' जी ने अपनी 'विप्लवगान' शीर्षक कविता से काव्य जगत में एक धूम मचा दी। उनके एक-एक शब्द से प्रलयकारी भावना व्यक्त होती है :--

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाये।
एक हिलोर इधर से आये
एक हिलोर उधर से आये।
प्राणों के लाले पड़ जायें
त्राहि-त्राहि नभ में छाये जाये।
नाश और सत्यानाश सत्यानाशों का
धुआँ धार जग में छा जाये।
बरसे आग जलद जल जाये
भस्मसात् भूधर हो जाये।

पाप पुण्य सद्भावों की धूलि,

उड़ उठे दाएँ बायें

नभ का वक्षस्थल फट जाये,

तारे टूक-टूक हो जायें ।[1]

वर्तमान स्वतन्त्रता के रण-मतवालों का उद्बोधन करते हुए सोहन लाल द्विवेदी ने मेवाड़ को जगाया है :—

ऐ रण मतवाले जाग-जाग,

जौहर व्रतवाले जाग-जाग,

हे स्वतन्त्रता की आग जाग,

हे देश मुकुट मणि जाग-जाग ।"[2]

बलिदान की भावना :—

राष्ट्रीय भावना की सशक्त अनुगूँज श्री माखन लाल चतुर्वेदी के काव्य में जगह-जगह प्रकट हुई है । उनकी राष्ट्रीय भावना सार्वभौमिक तथा सार्व कालिक प्रतीत होती है । उनकी कविता में बलिदान की उत्कट भावना अभिव्यंजित हुई है :—

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,

चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,

1:— कुंकुम – बालकृष्ण शर्मा नवीन, पृ० – 10 ।

2:— मेवाड़ के प्रति, सोहन लाल द्विवेदी, चार नवम्बर सन् 1931, पृ०–

चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,

चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ और इतराऊँ,

मुझे तोड़ लेना बनमाली

उस पथ में देना तुम फेंक

मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने,

जिस पथ जायें वीर अनेक ।" [1]

काव्य क्षेत्र में दिनकर का अवतरण हिन्दी साहित्य की एक महान घटना है । कविवर श्री रामधारी सिंह दिनकर का आविर्भाव उस काव्य धारा से हुआ जो भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्राकुमारी चौहान, माखन लाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से बहती आ रही थी । दिनकर उक्त धारा के अग्रणी कहे जायेंगे । श्री ज थनाथ गुप्त के शब्दों में :—

"आजादी की लड़ाई में लगे हुए बलिदानी भारत की जो वीरता, जो स्वाभिमान, जो अधीरता जो आक्रोश दिनकर में आकर प्रकट हुआ, कला के रूप में उसका विस्फोट पहले उतने जोर से नहीं हुआ था । उदय के साथ ही दिनकर का स्थान हिन्दी के क्रान्तिकारी कवियों में बन गया और काव्य लोभी जनता उनके प्रत्येक स्वर को अपने कंठ में बसाने लगी । दिनकर जी को जनता का प्यार राष्ट्रीय कविताओं के कारण मिला ।" [2]

1:— मरण ज्वार – माखनलाल चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, पृ0 – 15

2:— आजके लोकप्रिय हिन्दी कवि – रामधारी सिंह दिनकर, मन्मथ नाथ गुप्त पृ0 – 13 ।

राष्ट्र की तत्कालीन समस्याओं का एक मात्र समाधान प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है :--

"अर्पित करो समिधि आओ,
हे समता के अभिमानी
इसी कुण्ड से निकलेगी
भारत की लाल भवानी" ।

भूख से बिलखते बच्चों का करूण क्रन्दन सुनकर कवि का भावुक मन पिघल जाता है और वह अपने सम्पूर्ण ओज से प्रलंयकारी स्वरों में हृदय की व्यथा प्रकट करता है:---

"दूध-दूध ! ओ वत्स, मन्दिरों में बहरे पाषाण यहां है,
दूध-दूध तारे बोले, इन बच्चों के भगवान कहाँ हैं?
हटो व्योम के मेघ, पंथ से स्वर्ग लूटने हम जाते हैं,
दूध, दूध । ओ वत्स, तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं ।"[2]

शोषण एवं अत्याचार के प्रति कवि का हृदय क्षुब्ध हो उठता है और उसे भस्मसात् करने के लिए कवि क्रान्ति-धात्रि का आह्वान करता है :--

"क्रान्ति-धात्रि कविते ! जाग उठ,
आडम्बर में आग लगा दे ।

1:-- सामधेनी (दिल्ली और मास्को), दिनकर, पृ० - 59 ।
2:-- हुंकार, (हाहाकार), दिनकर, पृ० - 23 ।

पतन पाप पाखण्ड जलें,
जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे ।"[1]

जब अत्याचार अधिक बढ़ जाता है तो स्वतन्त्रता उसी प्रकार जन्म लेती है जिस प्रकार वन्दीगृह में भगवान कृष्ण अत्याचारी कंस का नाश करने के लिए अवतरित हुए थे । इसी भाव को श्री राम कृष्णदास ने यों व्यक्त किया है :--

होती हूँ अवतीर्ण वहाँ मैं आप ही,
खुल जाते हैं आप स्व निभिषार्ध में,
वे अति कपट कपाट बंद जो आप भी,
रहते हैं परतन्त्र जनों को बन्द रख ।
स्वयं उन्हीं परतन्त्र जनों की गोद में,
होती हैं झट प्रकट, मार्ग सभी खुलते सभी ।"[2]

छायावादी काव्य का समन्वित अध्ययन करने पर यह सुस्पष्ट हो जाता है कि इस काल के कवियों ने वर्तमान की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रलय का ज्ञान किया, तत्कालीन, अत्याचार, और अनाचार के बढ़ते रूप को देखकर कवियों ने विद्रोह का स्वर बुलन्द किया । इस युग के कवियों पर किसी न किसी रूप में महात्मागाँधी के अहिंसा का प्रभाव पड़ा और जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में गाँधी जी अपने उद्देश्य में सफलहुए उसी प्रकार साहित्यिक क्षेत्र में कवियों ने मानवीय मूल्यों की स्थापना में सफलता पाई ।

1:-- रेणुका - (कस्मैदेवाय), पृ0 - 3। ।
2:-- स्वतन्त्रता का जन्म स्थान - रायकृष्णदास ।

स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य में राष्ट्रीयता :--

1857 से प्रारम्भ किया गया राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संघर्ष अनेक आरोहों-अवरोहों से गुजरता हुआ नब्बे वर्ष की अवधि के पश्चात् लाखों बलिदान लेकर पूर्ण हुआ। शताब्दियों की गुलामी के पश्चात् देश ने स्वतन्त्रता के दर्शन किये। भारत की स्वतन्त्रता एशिया के लिए नया सन्देश लेकर अवतरित हुई। एशिया खण्ड में स्वतन्त्रता की दुन्दुभी बज उठी।

स्वतन्त्रता संग्राम में कवियों की वाणी ने जिस ओजस्वी रश्मियों का आलोक फैलाया था वे ही मंगलगीत रूपी ज्योति से स्वतन्त्रता देवी की आरती उतारने लगे। उनके गीत जनतंत्र के विकास के लिए लिखे जाने लगे। भारत का जनतन्त्र तैंतीस करोड़ जनता के लिए था।

सबसे विराट जनतंत्र जगत का आ पहुंचा,
तैंतीस कोटि हित सिंहासन तैयार करो,
अभिषेक आज राजा का नहीं प्रजा का है,
तैंतीस कोटि जनता के सिरपर मुकुट धरो।" 1

कवि जिस भव्य उज्ज्वल भविष्य की प्रतीक्षा में आस लगाये बैठा था, जिस कल्पना का संसार उसने अपनी भावनाओं में संजोया था, वह धूमिल होने लगा। समाजवाद की कल्पना करने वाले कवि ने अमीरी

1:-- नीलकुसुम (जनतंत्र का जन्म) दिनकर, पृ0 - 66 ।

गरीबी की बढ़ती हुई खाइयां देखी । जिन नेताओं को उन्होंने देश का कर्णधार और नवसर्जक माना था, वे भी लोभवृत्ति वश अपने घरों को भरने में लग गये । राम राज्य के प्रणेता की हत्या कर दी गयी । भ्रष्टाचार पनपने लगा । अमीर अमीर बनता गया और गरीब और भी अधिक गरीब । भ्रष्टाचार के उस ताण्डव को देखकर कवि दिनकर नेताओं से सिंहासन त्यागने के लिए कहता है :—"सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।" मजबूर मजदूरों के असन्तोष ने उन्हें मार्क्सवाद के लाल झण्डे के नीचे एकत्र होने के लिए बाध्य कर दिया ।'

साहित्य में एकाएक आमूल परिवर्तन दिखाई दिया । कवि भूखों नंगों का पक्षपाती हो गया । वह अपने काव्यों द्वारा इन असहायों की दयाजनक स्थिति का चित्रांकन करने लगा और घूंसखोर एवं काले बाजारियों के प्रति अपनी धिक्कार की भावना व्यक्त करने लगा । त्रिलोचन नरेन्द्र शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, भगवती चरण वर्मा, रामविलास शर्मा, केदार नाथ अग्रवाल, दिनकर, सुमन, अज्ञेय आदि कवियों ने इस वर्ग संघर्ष की आवाज बुलन्द की । समाज में व्याप्त इस कलुषित वातावरण को, स्वार्थ और अन्याय को जीर्ण पत्रों की तरह झर जाने का संदेश पंत जैसे छायावादी कवियों ने भी दिया ।

देश की तरह विश्व की परिस्थिति भी बड़ी संघर्षोत्पादक बन रही थी । राष्ट्रसंघ की अवहेलना कर विश्व के शक्तिशाली राष्ट्र निर्बल राष्ट्रों पर आधिपत्य जमाने का छद्म-प्रयत्न कर रहे थे । रूस

और अमेरिका के बीच साम्यवाद और साम्राज्यवाद का संघर्ष बढ़ रहा था। कोरिया का युद्ध एवं काश्मीर की समस्या मे राष्ट्रसंघ के प्रभाव पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। भारत और चीन, भारत और पाकिस्तान, वियतनाम एवं इजराइल के युद्ध ने तो राष्ट्र संघ के खोखलेपन को सिद्ध होकर दिया। भारत के पंचशील और विश्व एकता के स्वप्न दो युद्धों से चूर-चूर हो गये। कवि दिनकर ने कभी भूमध्य देश, चीन और भारत की एकता का जो स्वप्न देखा था वह टूट गया। इन युद्धों ने देश के सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक विकास में अवरोध उत्पन्न किए।

राष्ट्रीयता का अन्तर्राष्ट्रीयता में पर्यवसान :--

भारत में एक दीर्घ कालीन संघर्ष के पश्चात् स्वदेशी राज्य की स्थापना हुई। शताब्दियों की दासता से त्रस्त भारतवासियों ने स्वतन्त्रता देवी के शुभ-दर्शनों से अपने नेत्र परितृप्त किये। भारत पुनः एक बार संसार को मानवता का गौरवमय आदर्श देने के लिए अग्रसर हो रहा है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता विश्व मानवताके लिए प्रेम के प्रतीक के रूप में स्वीकार की गई है। "राष्ट्र प्रेम मानव प्रेम या विश्व प्रेम की प्रयोगशाला है। किस भौगोलिक सीमा की ओर किस ऐतिहासिक परिवेश में हमने सहस्रमुखी सत्य के किस पक्ष या रूप के दर्शन करने का प्रयत्न किया है। यह भावना राष्ट्रीयता की भावना से ही सम्भव है।"[1]

1:-- आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य - रामेश्वर लाल खण्डेलवाल, पृ0 - 132 ।

अन्तर्राष्ट्रीयता के स्वरों का निनाद वर्तमान युग के राष्ट्रीय कवियों के काव्य में यत्र-तत्र सुनाई देता है । रांगेयराघव ने अत्यन्त उग्र स्वर में विश्व भर में सामंतवादी शोषण का अन्त करने की कामना की है:--

हम नहीं प्रशंसा के भिक्षुक,
हम नहीं किसी के दीनदास,
सामंतवाद को ठोकर दे,
निर्वन्ध गुजरते मुक्तहास,
हम रक्त शोषकों को अपनी,
करते न अपनी कला ज्योति ।"[1]

कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने भी विश्व, साम्राज्यवाद को नष्ट भ्रष्ट के हेतु शिवजी को तांडव नृत्य के लिए आवाहित किया है --

उठो-उठो मेरे शिव, ताण्डव नृत्य करो
कुहराम मचा दो
कंकालों की अस्थि नींव पर खड़े
विश्व साम्राज्यवाद को
आज ईंट से ईंट बजा दो ।"[2]

1:-- पिघलते पत्थर - रांगेय राघव, पृ0 - 3 ।

2:-- विश्वास बढ़ता ही गया - शिवमंगल सिंह सुमन, पृ0 - 32 ।

इसी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीयता के भाव इस युग के अन्यान्य कवियों ने भी व्यक्त किये हैं ।

हमारी राष्ट्रीयता के इस विकसित अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को देखा जाय तो स्पष्ट रूप से पता चलता है कि राष्ट्रीयता की परम्परा बड़ी ही प्राचीन है और उसका प्रमुख उद्देश्य है विश्व के मानवमात्र का कल्याण । इसी भाव को स्पष्ट करते डॉ० सुधीन्द्र ने लिखा है :--

"राजाराम मोहन राय के युग में यह देशभक्ति और वैयक्तिक राष्ट्रवाद के रूप में थी स्वामी दयानन्द सरस्वती और विवेकानन्द के समय में वह धर्म, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के रूप में परिणत हो गयी । उसकी भावी दिशा विश्वगत राष्ट्रवाद की होगी, सब राष्ट्रवाद विश्व मानववाद में पर्यवसित हो जायेगा ।" [1]

वर्तमान युग का हिन्दी कवि विश्वव्यापी मानव प्रेम सम्बन्धी कविताओं के माध्यम से समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाता जा रहा है । काव्य के माध्यम से मानव मात्र के मंगल एवं कल्याण की भावनाओं की अभिव्यक्ति इस बात की द्योतक है कि निकट भविष्य में भौतिकता से ग्रस्त विश्व अपनी राष्ट्रीय संकीर्ण सीमा से ऊपर उठकर समस्त विश्व को अपना राष्ट्र मानने लगेगा और प्रत्येक देश का प्रत्येक नागरिक भूतलवासी प्रत्येक व्यक्ति से आत्मवत् आचरण करने के लिए प्रेरित होगा ।

1:-- हिन्दी कविता में युगान्तर - डॉ० सुधीन्द्र, पृ० - 184 ।

इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं कि हिन्दी के कवि इस गुरूतर कर्तव्य को सफल बनाने में सहायक होंगे। शायद इसी आशा और विश्वास के कारण राष्ट्र कवि मैथीलीशरण गुप्त ने भूतल के समस्त मानवमात्र के सुख एवं समृद्धि की कामना करते हुए तथा स्वर्ग का भूमीकरण नहीं, वरन् भूमि के स्वर्गीकरण की उदात्त भावना से प्रेरित होकर श्रीराम के माध्यम से साकेत में लिखा है :--

> सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
> इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।"[1]

1:-- साकेत -- मैथिलीशरण गुप्त, अष्टम सर्ग ।

---: चतुर्थ अध्याय :---

000
0

----दिनकर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व----

रामधारी सिंह दिनकर का जन्म बिहार प्रान्त में सिमरिया नामक ग्राम के कृषक परिवार में हुआ था प्रामाणिक जन्म पत्र उपलब्ध न होने के कारण इनकी जन्म तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। इनका जन्म 30 सितम्बर, 1908 को हुआ माना गया है।

दिनकर जी की जन्मभूमि सिमरिया पटना से लगभग 60 मील पूर्व गंगा के उत्तरी तटपर स्थित है। गंगा के नवनिर्मित राजेन्द्र सेतु का उत्तरी छोर इस गाँव में पड़ता है। यह ग्राम दो ओर से दो नदियों से घिरा है -- इसके दक्षिण में गंगा नदी तथा पश्चिम में बो नदी बहती है और ये दोनों नदियां, सिमरिया में ही चलती हैं।

कवि दिनकर जन्म स्थान सिमरिया गरीब किसानों का गाँव था। इनके काव्यों में अत्याचार अनाचार शोषण और सामाजिक वैषम्य के प्रति जो विद्रोह भाव व्यक्त हुए हैं उनकी प्रेरणा इन्हें अपनी जन्मभूमि सिमरिया की शोषित, दलित, पीड़ित निर्धन जनता के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं से मिली है। वहाँ की जनता को भूख से पीड़ित देख कवि ने नेत्र आसुंओं से और हृदय आक्रोश से भर उठता था। गाँव के सवर्ण किसानों का अत्याचार शूद्रों और हरिजनों पर होता ही रहता था। कवि दिनकर का अनुभूति प्रवण व्यक्तित्व अखबारों के सम्पर्क में आने से पहले ही शूद्रों का पक्षपाती हो गया था। 'रेणुका' में संकलित 'मिथिला में' शार कविता में कवि ने अपनी जन्मभूमि का बखान करते हुए लिखा है :--

"हे जन्मभूमि ! शत बार धन्य । तुझ सा न सिमरिया धार अन्य ।
तेरे खेतों की छवि महान, अनिमन्त्रित आ उर में अजान ।
भावुकता बन लहराती है, फिर उमड़ गीत बन जाती है ।"[1]

× × × × ×

"बाँयीं की यह कृश विमल धार, गंगा की यह दुर्गम कछार
कूलों पर कास-पटी फूली, दो दो नदियाँ तुझ पर भूलीं
कल-कल कर प्यार जताती है, छू पार्श्व सरकती जाती हैं" ।[2]

सिमरिया के कृषक पिता श्री रवि सिंह एवं जननी मनरूप देवी के वे द्वितीय पुत्र हैं जब दिनकर एक वर्ष के थे तभी पिता का स्वर्गवास हो गया था । आर्थिक विषमताओं के बीच ममतामयी माँ ने इनका लालन-पालन किया । यही कारण है कि माँ की समस्त आस्था में माँ के व्यक्तित्व में केन्द्रीभूत हो गयी जिसने जन्मभूमि और भारत माता का स्वरूप ग्रहण कर लिया ।

इनका विवाह किशोरावस्था में ही हो गया था । इनकी पत्नी ने सहधर्मिणी के समस्त उत्तरदायित्व को निभाते हुए उसने दिनकर की साहित्य साधना में अपने आप को न्योछावर कर दिया । सहधर्मिणी की त्याग वृत्ति की प्रशंसा करते हुए डॉ० सावित्री सिन्हा ने लिखा है--"जब उनका सिद्धार्थ सरस्वती की साधना में दिन-रात एक कर रहा था, यशोधरा रागिनी होकर भी विरागिनी हो रही थी, जब उनका पति साधु सन्यासियों के चक्कर में 'द्वन्द्वगीत' की उलझनों में फँस रहा था, उनके

1:-- रेणुका, पृ० 57-58 ।

2:-- रेणुका

दायित्वों का निर्वाह करने के लिए वह स्वयं आग में खेल रही थी । अपने गौरांग को उन्होंने संकीर्ण सीमाओं में बाँधकर नहीं रखा था, प्रत्युत विष्णु प्रिया बनकर परिवार की सेवा-सुश्रुषा और श्रम को भी जीवन का साध्य बना लिया और फिर जब प्रतिष्ठा एवं कीर्ति ने उर्वशीकार के चरण चूमे वह 'औशीनरी' तपस्या, त्याग और साधना की मूर्ति ही बनी रही"।[1]

कवि दिनकर की जन्मभूमि सिमरिया गाँव की भूमि को गंगा बहुत अर्सों से अपने पावन जल से सींचती आ रही है । कवि के बाल नयनों ने सिमरिया की हर्ष एवं उल्लास से भरी प्रकृति को देखा था । इनके किशोर नेत्रों ने अपने गाँव के उजड़ते खेत खलिहानों, जमींदारों के शोषण, उत्पीड़न से तबाह-परेशान क्षीणकाय कृषक, कृषक पत्नी व भूख से बिलखते बिल-बिलाते उनके नादान-शिशु अपने खेतों में भी अनाज पैदा करके भी भूखों मरने वाले, दिनभर अथक परिश्रम करने के बावजूद भी लोटा भर पानी पीकर सन्तोष की साँस भरते हुए रात्रि गुजार देने वाले, आँसू का घूँट पीकर काम करके सन्ध्या समय खाली हाथ घर लौटते असंख्य किसानों को देखा था । इन्होंने बाल्यावस्था में ही अपनी पैनी दृष्टि से नालंदा और तक्षशिक्षा की संस्कृति का दर्शन किया था । माता की ममतामयी गोप तथा नालंदा के मधुर गान ने दिनकर को हृदय को कवि रूप दे डाला ।

1:— युगचारणं दिनक : डॉ0 सावित्री सिन्हा, पृ0 – 3 ।

दिनकर ने प्राथमिक शिक्षा गाँव में ही प्राप्त की । मिडिल की शिक्षा के लिए वे 'बारी' नामक राष्ट्रीय पाठशाला में गये । इस पाठशाला का व्यय भिक्षाटन से अर्जित की जाने वाली आय से होता था । दिनकर भी एक भिक्षुक के रूप में भिक्षाटन करते हुए अपनी शिक्षा-दीक्षा में विकास करते रहे । इस पाठशाला का परिवेश राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत था।सभी वर्णों एवं धर्मों की एकता की व्यावहारिक शिक्षा यहाँ दी जाती थी । दिनकर के व्यक्तित्व में स्वावलम्बन सह अस्तित्व एवं जातीय सम्भावना और उदात्त विचार आदि गुणों का प्रादुर्भाव यहीं हुआ । इन्हीं सामाजिक भावनाओं में राष्ट्रीयता का बोध भी उनमें अंकुरित हुआ ।

मोकामाघाट के एच0ई0 स्कूल से सन् 1929 ई में दिनकर जी ने सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी के गौरव के साथ मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की । सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी होने के कारण इन्हें 'भूदेव पदक' से सम्मानित किया गया ।

दिनकर जी ने गरीबी को निकट से देखा ही नहीं अपितु स्वयं भोगा भी था । गरीबी के कारण उनका विद्यार्थी जीवन अत्यन्त कष्टमय रहा । सन् 1931 ई0 में उन्होंने पटना कालेज से बी0ए0 आनर्स की परीक्षा इतिहास विषय को लेकर उत्तीर्ण की ।

दिनकर जी को बचपन से ही कविता के प्रति रूचि थी । मिडिल पास करने के बाद ही उन्होंने कई गीतों की रचना की ।

सन् 1828-29 ई0 का काल भारत की राजनैतिक हलचलों का काल माना जाता है । "बारदौली सत्याग्रह" तथा "साइमन कमीशन" के बहिष्कार-आन्दोलन ने सम्पूर्ण भारत की युवा-पीढ़ी के जनमानस को झकझोरा । दिनकर जी भी इन आन्दोलनों से प्रभावित एवं उत्साहित हुए ।

मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् दिनकर जी ने नियमित रूप से काव्य लेखन का क्रम अपनाया । श्री रामनरेश त्रिपाठी की 'पथिक' एवं श्री मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती नामक काव्य कृतियों से दिनकर ने अपनी काव्य साधना के लिए प्रेरणा एवं स्फूर्ति प्राप्त की ।

कवि हृदय अपने परिवेश से प्रभावित होता ही है । सौभाग्य से दिनकर जी को पटना में विशाल साहित्यिक वातावरण प्राप्त हुआ । जिसके कारण इनकी काव्य-कला क्रमशः निखरती चली गयी । साहित्यिक दायित्व निभाने के 'साथ-ही-साथ दिनकर जी को अपने पारिवारिक दायित्व के निर्वाह में' सतर्क रहना पड़ा । उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है :--

"मैं न तो सुख में जन्मा था, सुख में पलकर बढ़ा हूं । किन्तु मुझे साहित्य में काम करना था यह विश्वास मेरे भीतर छुटपन से ही पैदा हो गया था । इसलिए ग्रेज्युएट होकर जब मैं परिवार के लिए रोटी अर्जित करने में लग गया तब भी, साहित्य की साधना मेरी चलती रही।" [1]

1:-- दिनकर सृष्टि और दृष्टि (दिनकर से भेंटवार्ता) गोपाल कृष्ण कौल, पृ0 - 17 ।

सन् 1928-29 के आस-पास 'युवक' पत्र के सम्पादक रामवृक्षबेनीपुरी से दिनकर जी परिचित हुए एवं अमिताभ उपनाम से दिनकर जी की कविताएं प्रकाशित होने लगी ।

बी0ए0 उत्तीर्ण होने के बाद अर्थाभाव ने दिनकर जी को नौकरी करने पर मजबूर कर दिया । हृदय में उद्वेलित राष्ट्रीयता के भाव एवं काव्य प्रेरणा को भीतर ही भीतर दबाकर परिवार के पोषण के लिए उन्हें हेडमास्टरी स्वीकारनी पड़ी । पाठशाला के संचालकगण जमींदारों के प्रति समर्पित थे और अंग्रेजों के प्रति अपनी सम्पूर्ण निष्ठा व्यक्त करने वाले थे । अंग्रेजों की स्तुति एवं भक्ति को ही अपने जीवन की सम्पूर्ण सार्थकता मानने वाले चाटुकारों से भला स्वच्छन्द प्रकृति का कवि दिनकर कैसे समझौता कर सकता था? अतएव इस नौकरी से मुक्त होकर उन्होंने 'सब रजिस्टार' की सरकारी नौकरी को स्वीकार किया ।

'सब रजिस्टार' के पद पर होते हुए कवि दिनकर जी अपनी योग्यता के बलपर अपनी योग्यता के बल पर अपनी सूझ-बूझ से प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच अपनी जीवन नौका खेते रहे । इस प्रकार उनकी लेखनी एक साथ दो कर्तव्य निभा रही थी । नौकरी के दिनों में कवि को जिस मानसिक संघर्ष का सामना करना पड़ा था, उसकी अभिव्यक्ति उन्होंने "कल्पना" में प्रकाशित अपने एक लेख में इस प्रकार की है-- "मैंने सोचा कि नौकरी छोड़ दूँ पर नौकरी छूट गयी तो परिवार खायेगा क्या?" दिनकर जी ने नौकरी में रहते हुए 'रेणुका' तथा 'हुंकार' जैसी प्रखर राष्ट्रीय

भावों से युक्त काव्य कृतियों का सृजन किया। भारतीय जनमानस को राष्ट्रीय भावनाओं से उद्वेलित करने वाली इन रचनाओं ने दिनकर जी को जनता के हृदय में प्रतिष्ठित किया।

कवि को अपनी काव्य-प्रतिभा पर इतना आत्मविश्वास था कि नौकरी को उन्होंने कभी भी आर्थिक आवश्यकता से अधिक महत्व नहीं दिया। आजीविका के लिए अनिच्छा से सरकारी नौकरी करनी पड़ रही है इस कुंठा और संत्रास के निराकरण के लिए इतना ही पर्याप्त था कि सरकार दिनकर जी को क्रान्तिकारी कवि समझती थी।

द्वितीय विश्व युद्ध के समय कवि की नियुक्ति युद्ध-प्रचार-विभाग में 'डिप्टी डायरेक्टर' के पद पर कर दी गई जहाँ अंग्रेजों की युद्ध नीति का समर्थन करना कवि की नियति बन गयी थी। यहाँ कवि एक बार फिर द्वन्द्व में फँस गया। परन्तु, कवि ने उस दुहरे दायित्व को भी चतुराई के साथ निभाया। बात-चीत में वे युद्ध का समर्थन अवश्य करते रहे, किन्तु कविताएं सरकार के खिलाफ ही लिखते रहे। फलतः राष्ट्रीय लोकप्रिय कवि के रूप में दिनकर जी का स्थान जनमानस में बना रहा और सरकारी नौकरी भी सुरक्षित रही।

सरकारी नौकरी से दिनकर जी का मन उचट गया था इसलिए आगे चलकर दिनकर जी ने युद्ध प्रचार विभाग की नौकरी से त्याग पत्र दे

दिया । इस समय तक दिनकर जी साहित्य जगत में प्रतिष्ठित हो चुके थे । उनके काव्य कौशल से प्रभावित होकर बिहार सरकार ने मुजफ्फरपुर के पोस्ट ग्रेज्युएट कालेज में हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद पर नियुक्त कर उन्हें सम्मानित किया । यहाँ पर कवि को अनुकूल शैक्षणिक एवं साहित्यिक वातावरण मिला ।

सन् 1952 में राज्य सभा के सदस्य हो जाने के कारण उन्होंने प्राध्यापक पद से त्यागपत्र दे दिया और दिल्ली पहुँचे । दिल्ली में गुण ग्राही विद्वानों का सत्संग पाकर उनकी कीर्ति फैलती चली गयी । सन् 1962 में उन्हें भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति के उच्च पद पर नियुक्त कर सरकार ने इनको सम्मानित किया । कवि की काव्य प्रतिभा एवं ज्ञान-गरिमा का अधिकाधिक लाभ जनमानस को प्राप्त हो सके इस विचार से भारत सरकार ने विश्वविद्यालय के संकीर्ण वातावरण से निकालकर उन्हें पुनः दिल्ली बुला लिया ।

हिन्दी काव्य संसार में अपनी प्रतिभा द्वारा भारतीय जनमानस को चेतना देने वाले इस कवि को समय-समय पर विभिन्न सम्मानों से भूषित किया गया है । 'रश्मिरथी' काव्य प्रणयन पर कवि को पुरस्कृत किया गया । 'संस्कृति के चार अध्याय' पर उन्हें साहित्य

एकादमी का राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किया गया । उनकी साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष्य में राष्ट्रपति शासन द्वारा सन् 1959 में ही उन्हें 'पदम-भूषण' की विशिष्ट उपाधि से अलंकृत किया गया । सन् 1973 ई0 में उन्हें उर्वशी पर भारत का सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार (ज्ञान-पीठ) प्रदान किया गया । इसके अतिरिक्त भारत सरकार, उत्तर प्रदेश सरकार, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, साहित्यकार संसद विराट नगर, राष्ट्रभाषा परिषद, पटना एवं अन्य साहित्यिक संस्थाओं द्वारा दिनकर जी को समय-समय पर सम्मानित तथा पुरस्कृत किया गया । दिनकर जी की 'कुरुक्षेत्र' 'रश्मिरथी' 'नीलकुसुम' 'संस्कृति के चार अध्याय' तथा 'उर्वशी' नामक कृतियाँ भारत की विभिन्न संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत हुईं । किन्तु दिनकर जी इन पुरस्कारों के बहुत ऊपर थे । उन्हें तो वास्तविक सर्वोच्च पुरस्कार मिला भारतीय जनमानस के हृदय का असीम प्यार ।

कवि दिनकर का व्यक्तित्व उस धरती पुत्र का व्यक्तित्व है जिसमें एक ओर आत्मविश्वास, दृढ़ता, दार्शनिकता है तो दूसरी ओर ओज एवं तेज की प्रखरता का बाहुल्य है ।

डॉ0 सावित्री सिन्हा ने दिनकर जी के व्यक्तित्व का

चित्रण इस प्रकार किया है -- "दिनकर के व्यक्तित्व में धरती पुत्र का आत्मविश्वास और दृढ़ता, साहित्यकार की अनुभूति-प्रवणता, दार्शनिक का तत्व विधान तथा राजपुरूष का ओज और तेज है। दूसरे शब्दों में उनके जीवन की कहानी हल, हँसिया, लेखनी और पार्लियामेन्ट की बैठकों की कहानी है। उनके बाहय व्यक्तित्व में भी क्षत्रिय का तेज ब्राहमण का अहँ, परशुराम का गर्जन और कालिदास की कलात्मकता है।" [1]

कवि दिनकर जी ने वज्रादपि कठोर कुसुमादपि कोमल स्वभाव पाया था। उनके स्वभाव की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि वे अपने से छोटों के प्रति आदर-भाव रखते थे। यद्यपि वे क्रोधी स्वभाव के थे तथापि उनका क्रोध दुर्भावनापूर्ण नहीं था, बल्कि क्रोध-शमन के तत्काल पश्चात उन्हें गहरा पश्चाताप होता था। मद्रास में हिन्दी प्रचार सभा में भाषण देने के पश्चात उन्होंने विद्यार्थियों के समक्ष प्रश्नोत्तर के समय उन्होंने कहा था --' कि क्रोध अब नहीं करूँगा क्यों कि अक्सर क्रोध करने के बाद मुझे रोना आ जाता है"। वैसे साहित्यकार में क्रोध रचनात्मक रूप धारण करता है। वह विध्वंसक रूप नहीं लेता। दिनकर जी के क्रोध की यही भावना प्रेरण स्रोत बनकर 'रेणुका' 'हुंकार', 'सामधेनी', 'कुरूक्षेत्र' तथा 'परशुराम की प्रतीक्षा' मे प्रस्फुटित हुई है। वास्तविकता यह है कि ये सभी रचनाएं क्रोध की विभिन्न दशाओं में ही लिखी गयी हैं।

1:-- युगचारण दिनकर - डॉ0 सावित्री सिन्हा, पृ0 - 22 ।

सन् 1947 ई0 में दिनकर जी सपरिवार वैद्यनाथ धाम दर्शनार्थ गये हुए थे। वहाँ उन्होंने देखा कि मन्दिर का पुजारी शीत से काँपती हुई ग्रामीण श्रद्धालु महिलाओं को अन्दर प्रवेश नहीं दे रहा है। पुजारी अपने धनवान यजमान की पूजा विधि पूर्ण किये बिना किसी अन्य व्यक्ति को प्रवेश नहीं देना चाहता था। क्रोधी दिनकर ईश्वर के मन्दिर में इस भेद-भाव एवं सामन्तवादी रूप को देखकर आक्रोश करते हैं--"हे भगवान दुनिया मुझे क्रान्तिकारी रूप में मानती है यदि मैं तुझ पराधीन की पूजा करूँ तो यह मेरे प्रशंसकों का अपमान है। इतना कहकर जल से भरा कलश महादेव के सिर पर दे मारा और बाहर आकर मार-पीट की तैयारी करने लगे।"[1]

स्वाभिमानी कवि हृदय में कोमलता के भी दर्शन होते है। भूख से व्याकुल भारतीय नौनिहालों की करुण स्थिति देखकर कवि हृदय द्रवित हो जाता है :--

> दूध, दूध। ओ वत्स। मन्दिरों में बहरे पाषाण यहरे हैं
> दूध, दूध। तारे बोलो। इन बच्चों के भगवान कहाँ हैं,
> हटो व्योम के मेघ, पंथ से स्वर्ग लूटने हम आते हैं?
> दूध-दूध। वो वत्स। तुम्हारा दूध खोजने हम आते हैं"।[2]

1:-- रामधारी सिंह दिनकर : मन्मथ नाथ गुप्त, पृ0 - 6 ।

2:-- हुंकार - दिनकर - हाहाकार, पृ0 - 22-23 ।

दिनकर जी का व्यक्तित्व हास-परिहास की रसिकता विनोद प्रियता तथा हाजिर जवाबी का समन्वित रूप था जिसका प्रतिबिम्ब उनकी काव्यकृतियों में यत्र-तत्र परिलक्षित होता है ।

बड़ों के प्रति उनमें अपार श्रद्धा भाव था । श्री मैथिलीशरण गुप्त जी को वे परमादरणीय मानते थे ।

दिनकर जी का व्यक्तित्व अत्यन्त शालीनता पूर्ण रहा है । अपनी मित्र मंडली को वे स्वजन-परिजन के समान मान्यता देते थे ।

निष्कर्षतः यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि दिनकर जी का व्यक्तित्व अत्यन्त स्वाभिमानी तथा राष्ट्रभावना के उदात्त गुणों से परिपूर्ण था । उनमें सहृदयता तथा आत्मीयता के भाव विद्यमान थे । उनकी ओजस्वी वाणी लोगों के लिए प्रेरणादायी थी । वे सुख-दुख को स्वभाव से स्वीकार करते थे । दिनकर का व्यक्तित्व एक चिन्तक का व्यक्तित्व है । वे कलम के सिपाही एवं राष्ट्र के सजग प्रहरी हैं ।

व्यक्तित्व-निर्माण में सहायक महापुरूष तथा साहित्यकार :--

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में जिस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियों का तथा पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान होता है, उसी प्रकार अतीत एवं वर्तमान के महापुरूषों के व्यक्तित्व एवं पूर्ववर्ती तथा समकालीन साहित्यकारों के विचारों का भी विशिष्ट स्थान होता है । दिनकर जी का व्यक्तित्व भी इसके लिए अपवाद नहीं है ।

राष्ट्र कवि दिनकर का व्यक्तित्व अनेक श्रेष्ठ व्यक्तियों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित था ।

तुलसी ने परोक्ष रूप से दिनकर के व्यक्तित्व को प्रभावित किया । तुलसी का 'रामचरितमानस' दिनकर के साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक सिद्ध हुआ । कवि पर कबीर और तुलसी का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है, क्योंकि कवि द्वय को भाव परक एवं प्रसाद गुण युक्त अभिव्यक्ति दिनकर को भाव विभोर कर देती थी ।

कवि पर सामयिक साहित्यकारों का भी प्रभाव पड़ा है जिनमें मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, रवीन्द्रनाथ टैगोर ,नजरूल इस्लाम डाक्टर मुहम्मद इकबाल प्रमुख हैं । कवि ने स्वयं चक्रवाल की भूमिका में स्वीकार किया है -- "अपनी तत्कालीन रूचि का स्मरण करने पर मुझे याद आता है कि छायावादी युग में मेरे सबसे प्रिय कवि मैथिलीशरण, माखनलाल, सुभद्रा, नवीन और राम नरेश त्रिपाठी ही थे । कालिज में मुझ में शैली और वर्ड्स वर्थ, दोनों के लिए उत्साह था और बंगला सीखकर तभी मैंने रवीन्द्र और नजरूल से भी परिचय बना लिया था । पीछे, जब नौकरी लगा तब मैंने उर्दू सीखी और 'इकबाल' तथा 'जिगर', का मैं भक्त बन गया । यह भी विचित्र बात है कि निराला जी की कविताओं से अधिक समीपता मेरी पंत जी की कविताओं से रही और प्रसाद से बढ़कर मैं मैथिलीशरण के पास रहा । इसके अतिरिक्त और जो लोग मुझसे कुछ पहले या बाद में लिखते रहे, उनके बीच मेरी रूचिगत आत्मीयता श्री भगवती चरण वर्मा, श्री राम सिंहासन राय 'मधुर' (बलिया वाले) नरेन्द्र बच्चन, सुमन, नेपाली

और नागार्जुन से ही बैठती है ।" [1]

कवि दिनकर की कृतियों को प्रेरणा एवं समादर श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, गंगाशरण सिंह, पंडित राहुल सांकृत्यायन तथा डाक्टर काशी प्रसाद जायसवाल से प्राप्त हुआ है, जिन्होंने कवि को काव्य-सृजन के लिए सदैव प्रोत्साहित कर उनके व्यक्तित्व-विकास में सहयोग दिया है ।

दिनकर के व्यक्तित्व-निर्माण में जहाँ एक ओर क्रान्तिकारियों की वीरता एवं साहस पूर्ण कार्यों का योगदान है, वहाँ दूसरी ओर महात्मा गाँधी की अहिंसा-नीति का प्रभाव है । कवि दिनकर समाजवाद के समर्थक जयप्रकाश तथा राममनोहर लोहिया से भी प्रभावित हैं जिनका दर्शन उनके प्रारम्भिक काल की कविताओं में होता है । सबसे अधिक प्रभाव उन पर जयप्रकाश नारायण जी का है । इस समकालीन महापुरूष की कर्मठता और ईमानदारी कवि को सदा ही प्रेरित करती रही है । सुभाष चन्द्र बोस के राष्ट्र प्रेम से भी दिनकर जी ने प्रेरणा प्राप्त की है ।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि दिनकर के राष्ट्रीय व्यक्तित्व को बनाने में तत्कालीन परिस्थितियों एवं महापुरूषों का विशेष योगदान रहा है । फिर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कवि दिनकर की राष्ट्रीय कविताओं के प्रेरणास्रोत एवं उत्प्रेरक तो तत्कालीन राष्ट्रीय काव्य धारा को प्रवाहित करने वाले हिन्दी के कवि हैं, और यही प्रखर

1:-- चक्रवाल - दिनकर {भूमिका} पृ0 - 26, 27 ।

राष्ट्रीयता का स्वर दिनकर जी की कृतियों में क्रमिक रूप से मुखरित हुआ है। जिसका वर्णन आगे किया जायेगा।

-: दिनकर का कृतित्व :-

कवि दिनकर बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं, जिन्होंने गद्य एवं पद्य दोनों में समान रूप से अपने भावों की अभिव्यक्ति की है। दिनकर जी का चिन्तन बहुमुखी है तथा उसका क्षेत्र व्यापक है। कवि ने प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक काव्य दोनों में विभिन्न विषयों को लेकर काव्य, प्रणयन किया है। कै शोर्य से लेकर प्रौढ़ावस्था तक के दिनकर जी के समस्त कृतित्व में एक विकासक्रम दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने अपनी कृतियों में उदात्त भावों की ही अभिव्यक्ति की है। जीवन भर राष्ट्र हित, समाज हित, तथा मानव हित, चिंतन में ही उन्होंने अपनी लेखनी का सम्पूर्ण विनियोग किया है। इनकी समस्त काव्य कृतियों का मूल भाव राष्ट्रीयता ही है, किन्तु इसके अतिरिक्त इन्होंने श्रृंगार, नैराश्य, आशावाद तथा आध्यात्मिक भावना से रचनायें भी प्रस्तुत की हैं।

चाहे प्रबन्ध काव्य हो अथवा मुक्तक काव्य दिनकर जी की एक ही कृति में अनेक विध काव्य-प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं, जिससे उनके चिन्तन की व्यापकता तथा विशालता का परिचय मिलता है।

दिनकर जी की काव्य रचना का श्रीगणेश तब हुआ था जब सन् 1924 ई0 में उनकी पहली कविता जबलपुर से प्रकाशित होने वाले पाक्षिक-पत्र "छात्र सहोदर" में छपी थी, जिसके संपादक श्री नरसिंह दास जी थे।

तत्पश्चात् दिनकर जी की बहुत सी कविताएं कलकत्ता से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र 'सेनापति' और 'विश्वमित्र' में तथा मासिक पत्र 'नारायण' और 'सरोज' में छपने लगीं । पटना से निकलने वाले पत्र देश और महावीर में भी उनकी आरम्भिक रचनाएं छपी थीं। गुजरात में सरदार बल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में जो 'बारदोली सत्याग्रह-संग्राम' चल रहा था, उसमें किसानों की जीत हुई थी । उससे प्रेरणा प्राप्त कर दिनकर जी ने, जब वे पटना कालेज के छात्र थे जो दस बारह गीत लिखे थे वे सन् 1928 ई में 'बारदोली-विजय' नाम से प्रकाशित हुए ।

दिनकर जी की अधुनातम काव्य-संग्रह है:--'रश्मि लोक' । 'बारदोली-विजय' से लेकर 'रश्मिलोक' तक के बीच रचित उनकी काव्य कृतियाँ निम्नलिखित हैं :--

§ क § प्रबन्ध काव्य :--

1:-- प्रण भंग — सन् 1929 ई0

2:-- कुरुक्षेत्र — सन् 1946 ई0

3:-- रश्मिरथी — सन् 1952 ई0

§ ख § मुक्तक काव्य :--

1:-- रेणुका — सन् 1935 ई0

2:-- हुंकार — सन् 1938 ई0

3:-- रसवंती — सन् 1939 ई0

4:-- सामधेनी — सन् 1947 ई0

5:— इतिहास के आँसू सन् 1951 ई०

6:— धूप और धुआँ सन् 1951 ई०

7:— दिल्ली सन् 1954 ई०

8:— नीम के पत्ते सन् 1954 ई०

9:— नीलकुसुम सन् 1955 ई०

10:— नये सुभाषित सन् 1957 ई०

11:— परशुराम की प्रतीक्षा सन् 1963 ई०

12:— कोयला और कवित्व सन् 1964 ई०

13:— मृत्ति-तिलक सन् 1964 ई०

14:— हारे को हरिनाम सन् 1970 ई०

(ग)

1:— द्वन्द्वगीत (रूबाइयाँ) सन् 1940 ई०

2:— बापू (शोक काव्य) सन् 1947 ई०

3:— सीपी और शंख सन् 1957 ई०

4:— आत्मा की आँखें सन् 1964 ई०

(घ) बालोपयोगी साहित्य :—

1:— धूप छाँह सन् 1947 ई०

2:— मिर्च का मजा सन् 1951 ई०

3:-- सूरज का व्याह सन् 1955

§ ङ. § गीतिनाट्य §महाकाव्य§ :--

1:-- उर्वशी सन् 1961 ई0

उपर्युक्त काव्य संग्रहों के अतिरिक्त दिनकर जी के 'चक्रवाल' 'कवि श्री' 'लोकप्रिय कवि दिनकर' 'दिनकर की सूक्तियाँ' तथा दिनकर के 'शीर्षक गीत' शीर्षक काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें कवि की अन्यान्य कृतियों से चुनी हुई कविताएं अन्तर्भुत हैं ।

दिनकर जी का रचना संसार व्यापक है । यहाँ उनकी प्रमुख काव्य-कृतियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जायेगा ।

§ क§ प्रबन्ध काव्य :--

1:- प्रण भंग :--

दिनकर जी की प्राप्त काव्य कृतियों में 'प्रणभंग' को प्रथम प्रकाशित काव्य-पुस्तक होने का गौरव प्राप्त है । यह राष्ट्रकवि दिनकर का एक सशक्त खण्ड-काव्य है जिसमें महाभारत के युद्ध में भगवान श्रीकृष्ण के हथियार न उठाने के प्रण के भंग का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है । यह महत्वपूर्ण पुराण-कथा कवि की तेजस्वी लेखनी से व्यक्त होकर और भी प्रखर हो उठी है ।

मैथिलीशरण गुप्त जी के 'जयद्रथ-बध' के अनुकरण पर लिखा गया यह खण्ड काव्य सन् 1929 में प्रकाशित हुआ है । इसका कथानक महाभारत

से लिया गया है । अतः उसकी कथावस्तु में कोई नई विशेषता नहीं है । कवि सत्य का अन्वेषी है और इस सत्य को उद्घाटित करने से परम्परा से चली आ रही सर्वमान्य मान्यताओं को कुचलना भी पड़े अथवा बड़ों की निन्दा भी सहनी पड़े तो कवि को जरा भी संकोच नहीं होता । कृष्ण ने प्रण किया था कि महाभारत के युद्ध में हथियार नहीं उठायेंगे, परन्तु भीष्मपितामह के दारूण एवं संहारक आघातों से अपने प्रिय अर्जुन की रक्षा जीवन-रक्षा के लिए श्रीकृष्ण को विकराल रूप धारण कर तथा महाकाल बनकर शस्त्र ग्रहण करना पड़ा ।

भक्त लोगों की दृष्टि से भगवान कृष्ण का यह व्यवहार शायद भक्त वत्सलता में गिना जाय, देश भक्तों को इसमें नीति दृष्टिगोचर होती हो, किन्तु सत्य का अन्वेषी उसे बेहिचक कलंक कहने को तैयार है । इसमें वास्तविकता चाहे जो रही हो, किन्तु कवि दिनकर लोगों में स्वयं सोचने की रूढ़ि पैदा करना चाहते हैं और यही इसकी मौलिकता है, नवीनता है, आधुनिकता है ।

§ 2 § <u>कुरूक्षेत्र</u> :—

'कुरूक्षेत्र' सन् 1946 ई० में प्रकाशित दिनकर जी का प्रथम महाकाव्य है । जिसमें युद्ध, युद्ध के कारणों तथा तज्जनित परिणामों की बड़ी ही गम्भीरता के साथ विवेचना प्रस्तुत की गई है । इसीलिए 'कुरूक्षेत्र' को युद्ध का महाकाव्य कहा जाता है । कवि ने स्वतः स्वीकार किया है— 'कुरूक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महा-

भारत को दुहराना मेरा उद्देश्य था । मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना कहा जा सकता था, किन्तु तब यह रचना शायद प्रबन्ध के रूप में नहीं उतर कर मुक्तक बन गयी होती । तो भी यह सच है कि उसे प्रबन्ध के रूप में लाने की मेरी कोई निश्चित योजना नहीं थी । 'कुरूक्षेत्र' के प्रबन्ध की एकता उसमें वर्णित विचारों को लेकर है ।" [1]

सन् 1941 में कलिंग विजय शीर्षक कविता की रचना के पश्चात् द्वितीय महायुद्ध के भीषण विभीषिका से आन्दोलित कवि हृदय में युद्ध और उसके समाधान का अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा और अन्त में उसके हृदय मंथन से निकले नवनीत को कवि ने काव्य में गुंफित कर कुरूक्षेत्र के रूप में प्रस्तुत किया । कवि ने वास्तव में प्राचीन कथानक का आश्रय लेकर आधुनिक जीवन के निष्ठुरता, स्वार्थपरता, भोगलिप्सा हिंसा परायणता आदि प्रश्नों को उठाया है । युद्ध की समस्या को लेकर उभरने वाले द्वन्द्व का समाधान करने का सफल प्रयास कवि ने किया है । संसार में कालुष्य को धोने के लिए युद्ध की अनिवार्यता मानकर भी चिरंतन सुख और समृद्धि के लिए कवि शान्ति की महत्ता को स्वीकार करता है । कवि ने निवृत्ति से अधिक प्रवृत्तिमय बनकर युद्ध को टालने का संदेश दिया है ।

1:-- कुरूक्षेत्र {निवेदन} दिनकर, पृ0 - 1.2

§ 3 § रश्मिरथी :--

'रश्मिरथी' दिनकर का स्वातन्त्र्योत्तर प्रबन्ध काव्य है जिसका प्रकाशन सन् 1951 ई0 में हुआ था। इस काव्य की प्रेरणा और उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए स्वयं कवि ने 'रश्मिरथी' की भूमिका में कहा है :--

'कुरूक्षेत्र की रचना कर चुकने के बाद ही मुझमें यह भाव जगा कि मैं कोई ऐसा काव्य लिखूँ जिसमें केवल विचारोत्तेजकता ही नहीं, कुछ कथा संवाद और वर्णन का भी माहात्म्य हो। स्पष्ट ही उस यह उस मोह का उद्गार था जो मेरे भीतर उस परम्परा के प्रति मौजूद रहा है। जिसके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त जी हैं।[1]

'रश्मिरथी' काव्य का नामकरण कर्ण के पौरूषपूर्ण प्रताप को केन्द्र स्थान में रखकर किया गया है। कर्ण ही इस काव्य का नायक है। एक पौराणिक काव्य होते हुए भी कवि ने अत्यन्त मार्मिकता के साथ जीवन से उसे संबद्ध करके प्रस्तुत किया है। इसमें जातिगत वैषम्य की समस्या को उठाकर मानवता का सन्देश दिया है।

§ 4 § उर्वशी §गीति नाट्य §

'उर्वशी' दिनकर जी की उत्कृष्ट काव्यकृति है, जिसका प्रकाशन सन् 1961 ई0 में हुआ था। इसमें समस्त काव्य प्रवृत्तियों का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

1:-- रश्मिरथी §भूमिका§ दिनकर

इसके प्रथम अंक में नटी और सूत्रधार तथा अप्सराओं के संवाद के माध्यम से देव-योनि की न्यूनता और मानव-योनि की महत्ता का वर्णन है ।

द्वितीयांक में पुरूरवा और उर्वशी के प्रेम-प्रसंग को प्रस्तुत करते हुए उर्वशी के सौन्दर्य तथा सौन्दर्यानुभूति के उन्मादक का आनन्द वर्णन है।

तृतीयांक में सौन्दर्य और प्रेम के मादक बिम्बों के साथ गम्भीर विचारों की व्यंजना और पुरूरवा तथाउर्वशी की मनोदशा का वर्णन है ।

चौथे अंक में महर्षि च्यवन का आश्रम तथा सुकन्या का च्यवन ऋषि से ब्याह तथा उर्वशी के श्राप इत्यादि का वर्णन है ।

पंचम अंक में पुरूरवा के साथ सन्यास ग्रहण का वर्णन है । शाप से मुक्त उर्वशी का स्वर्ग-गमन होता है और कर्मचारी और औशीनरी राज-माता का पद प्राप्त करती है ।

नर और नारी आदि काल से एक दूसरे के प्रेति आकर्षित होते आए हैं । इस आकर्षण के मूल में एक स्वाभाविक भूख तथा तृष्णा छिपी रहती है । नारी के भीतर अन्तर्मन में छिपी नारी की प्राप्ति मनुष्य तभी कर पाता है जब वह शारीरिक सम्पूर्ण बन्धन को तोड़कर मानस-तल में उतर जाता है । वैसे ही नर के भीतर से सूक्ष्म नर की प्राप्ति नारी को भी तभी होती है जब वह नर की आत्मा में विलीन हो जाती है । यही प्रेम की पूर्णता हैं । यही उर्वशी का मुख्य प्रतिपाद्य है । दिनकर की समस्त काव्य-साधना का चरम परिपाक उनकी 'उर्वशी' में दिखाई देता

है । भाषा सौन्दर्य एवं शिल्प की दृष्टि से भी दिनकर की यह सर्वोत्तम कलाकृति है ।

§ ख § मुक्तक रचनाएं §मौलिक§

§1§ रेणुका :--

'रेणुका' का प्रकाशन सन् 1935 में हुआ था । यद्यपि यह कवि का प्रारम्भिक प्रकाशन है पर इसमें अपरिपक्व लेखनी अथवा अपरिमार्जित शैली का एक भी चिन्ह नहीं दिखाई देता । दिनकर की राष्ट्रीय रचनाओं का यह प्रथम संग्रह है । जिसने लोगों को अधिक संख्या में आकृष्ट करके अत्यल्प समय में ही कवि को लोकप्रिय बना दिया ।

'रेणुका' में दिनकर की उन विभिन्न प्रवृत्तियों के बीज प्राप्त होते हैं जिनका विकास उनकी साधना में समयानुसार हुआ है । हिन्दी काव्य जगत् में प्रारम्भिक रचना में इतनी प्रौढ़ता कदाचित ही अन्य किसी कवि की रचना में परिलक्षित हुई हो । भाषा अभिव्यंजना शैली में एवं भावों में सर्वथा नवीनता के दर्शन इस कृति में होते हैं । कवि की वाणी में तेज, पौरूष और स्वदेश के प्रति असीम प्यार झलकता है ।

'रेणुका' में तीन प्रकार की रचनाएं हैं । प्रथम वे रचनाएं हैं जिनमें प्रखर राष्ट्रीयता गरिमामय अतीत का गौरव-गान तथा तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण है जिसमें क्रान्ति परक भावना भरी पड़ी है और जिनमें विद्रोही स्वर सहषता से सुने जा सकते हैं । दूसरी वे रचनाएं हैं जिनमें

श्रृंगारिकता ईश प्रार्थना तथा उद्बोधन और प्रेरणादायी भाव भरे हैं जो नितान्त व्यक्तिगत अनुभूतियों पर आधारित हैं। इन कविताओं में कवि की वैयक्तिक सौन्दर्य एवं श्रृंगार की भावनाएं अंकित हैं। इन भावनाओं में कवि पर युग का छायावादी प्रभाव स्पष्ट तथा दृष्टिगोचर होता है। तीसरे प्रकार की वे रचनाएं हैं जो विदेशी कविताओं के छायानुवाद मात्र हैं।

जब अंग्रेजी शासन के घोर अत्याचारों से जब मानवता ही संकरापन्न हो गयी थी तो सच्चे कवि का कर्म सुनहले स्वर्गीय स्वप्न लोक का निर्माण करना नहीं हो सकता था। स्वभावतः युग की मांग के अनुसार दिनकर ने रेणुका में मुख्यतः जागृति एवं राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत भावों तथा अतीत की गौरवमयी गाथा का अंकन किया है। उसमें कवि का क्रांति का स्वर-जहाँ-तहाँ उद्घोषित दिखाई देता है। कवि ने कविता को क्रांतिवाहिका मानकर कहा है:—

"क्रान्ति-धात्रि कविते ! जाग उठ आडम्बर में आग लगादे।" [1]

रेणुका में अन्याय एवं अत्याचार एवं शोषण के प्रति कवि की विद्रोह की भावना यत्र-तत्र दिखाई देती है। स्वकालीन समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता से विक्षुब्ध होकर कवि संसार के ध्वंस की कामना बड़े ही ओजस्वी शब्दों में प्रकट करता है।

1:— रेणुका - दिनकर - कामेदेवाय, पृ0 - 3।

अतीत के प्रति गौरव गान, वर्तमान के प्रति निराशा, नारी की समस्यायें एवं कहीं कहीं प्रेम और सौन्दर्य की सुकुमार और कोमल अनुभूतियों की अभिव्यक्ति भी रेणुका की विभिन्न कविताओं में दिखाई देती है। किन्तु देश भर में परिव्याप्त दमन एवं शोषण का उन्मूलन ही कवि का प्रधान लक्ष्य रहा है।

§ 2 § हुँकार :—

'हुँकार' आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना के विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। 'हुँकार' में आकर दिनकर की राष्ट्रीय भावना का एक रूप स्थिर करती है। 'हुँकार' का प्रकाशन सन् 1938 में हुआ। इसकी कवितायें मुख्य तथा क्रांतिकारी भावों से भरी हुई राष्ट्रीय कविताएं हैं। कवि की राष्ट्रीय रचनाओं का यह दूसरा संकलन है। इस संकलन में दिनकर एक उग्र क्रांतिकारी के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं।

रामवृक्ष बेनी पुरी :—

"क्रांतिवादी को जिन-जिन हृदयमंथनों से होकर गुजरना पड़ता है दिनकर की कविता उसकी सच्ची तस्वीर रखती है।" 1

एक प्रकार से हुंकार में दिनकर जी ने हमारे क्रान्तियुग का सही-सही प्रतिनिधित्व किया है। रेणुका की ही वोह इसमें भी श्रृंगार रस पूर्ण

1:— हुंकार दिनकर परिचय, पृ0 – 2 ।

कुछ रचनाएं अपवादात्मक रूप में अवश्य प्राप्त होती है, जिसे छायावादी प्रभाव कहा जा सकता है किन्तु क्रान्ति का स्वर इस संकलन में अत्यधिक तीव्र एवं स्पष्ट रूप से मुखरित हुआ है ।

प्रो० कामेश्वर शर्मा ने दिनकर की इस क्रांति की व्यंजना बहुत ही मार्मिकता के साथ निम्नांकित शब्दों में की है:—"रेणुका में अंगारों के ऊपर कोयले के नये टुकड़े पड़े थे, हुंकार में वे सभी आग हो गये हैं । विषमताओं की धौंकनी इस बीच इतनी तेजी से चली है—दिनकर के पौरूष का ज्वाल इस बीच इतनी तेजी से भभका है कि शीतल और जड़ पड़ी कुमी शिरायें धधकने लगी हैं —उसमें एक नये खून का संचार हुआ है ।"[1]

यहाँ कवि दिनकर अतीत के सुनहले सपनों में विचरण करने की छायावादी प्रवृत्ति को छोड़कर वर्तमान संघर्ष के यथार्थ धरातल पर उतर आये हैं ।

हुंकार की निम्नांकित पंक्तियों में कवि ने एक प्रकार से अपने क्रांतिकारी व्यक्तित्व का परिचय ही दिया है :—

"सुनूं क्या सिन्धु में गर्जन तुम्हारा?
स्वयं युग धर्म की हुंकार हूँ मैं,
कठिन निर्घोष हूँ भीषण अशनि का,
प्रलय गांडीव की टंकार हूँ मैं ।"[2]

1:— दिग्भ्रमित राष्ट्र कवि – प्रो० कामेश्वर शर्मा, पृ० 37 ।
2:— हुंकार – दिनकर परिचय – पृ० – 86-87 ।

§ 3 § रसवन्ती :--

'रसवन्ती' में कवि की वैयक्तिक सौन्दर्य भावना की अभिव्यंजना है। इस कृति को प्रस्तुत करने के मूल में कवि का कोई खास उद्देश्य निहित नहीं है। इस कृति में कवि पर छायावादी प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। 'रसवन्ती' का प्रकाशन सन् 1929 ई0 में हुआ। इस संकलन में प्रेम और सौन्दर्य की कविताएं हैं।

दिनकर का प्रकृत क्षेत्र क्रान्ति एवं राष्ट्रीयता का होने पर भी मानवीय कोमल भावनाओं का अभाव नहीं है। कवि ने 'चक्रवाल' की भूमिका में हमें इसका प्रमाण दिया है। दिनकर ने लिखा है :-- संस्कारों से मैं कला के सामाजिक पक्षका प्रेमी अवश्य बन गया था, किन्तु मन मेरा अब भी चाहता था कि गर्जन तर्जन से दूर रहूँ और केवल ऐसी ही कविताएं लिखूँ जिनमें कोमलता और कल्पना का उभार हो। यही कारण था कि जिन दिनों हुंकार की कविताएं लिखी जा रही थीं, उन्हीं दिनों रसवन्ती और द्वन्द्वगीत की रचना कर रहा था। और अजब संयोग की बात थी की सन् 1936-40 ई0 में ही ये तीनों पुस्तकें एक वर्ष के भीतर-भीतर प्रकाशित हो गयीं और सुयश तो मुझे 'हुंकार' से ही मिला, किन्तु आत्मा मेरी अब भी रसवन्ती में बसती है।" [1]

दिनकर के उक्त स्पष्टीकरण का प्रयोजन शायद यह है कि पाठक यह न समझले कि वे मात्र पुरुष भावों के ही कवि हैं, हृदय की कोमल

1:-- चक्रवाल - भूमिका - दिनकर, पृ0 - 83

भावनाओं का उनमें सर्वथा अभाव है । उक्त अनुमानित तर्क का उत्तर देते हुए मानों कवि पूछ रहा हो :--

'जग तो समझता है यही,
पाषाण में कुछ रस नहीं,
पर गिरि हृदय में क्या न,
व्याकुल निर्झरों का वास है ।' [1]

'रसवन्ती' की समय, आश्वासन् और रहस्य इत्यादि कविताएं विचार प्रेरित हैं, जिनमें दिनकर की सौन्दर्य चेतना का विचार-संपुष्ट रूप मिलता है, जिसमें आशा और विश्वास का स्वर प्रधान है । स्वयं कवि के ही शब्दों में :-- रसवन्ती के कूल पर बैठकर तृषित मानव अपनी पिपासा शान्त कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं । 'रसवन्ती' की सरस रचनाओं को देखकर कहना पड़ेगा कि रसवन्ती अपना नाम सार्थक करती है ।

§ 4 § द्वन्द्वगीत :--

'द्वन्द्वगीत' दिनकर की रचनाओं में एक विशेष प्रवृत्ति की रचना है । यह उनकी कुछ स्फुट कविताओं-रूबाइयों का संग्रह है । इसका आरम्भ कवि के ही शब्दों में :---

'--उन दिनों हुआ था जब कविता की गर्मी मेरी धमनियों में पहले पहल महसूस होने लगी थी और मैं आग की पहली लपट के बहुत करीब था ।' [2]

1:-- रसवन्ती - दिनकर, पृ0 - 3 ।

2:-- द्वन्द्वगीत - इतिहास - दिनकर, पृ0 - 1 ।

द्वन्द्वगीत का प्रथम प्रकाशन सन् 1939 में हुआ । जैसा कि शीर्षक से सूचित होता है द्वन्द्वगीत में मानव-हृदय में उद्भूत होने वाले अन्तर्द्वन्द्वों का काव्यमय चित्रण है । कवि की यह कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है । इसमें अन्तर्गत अधिकांश द्वन्द्वात्मक भावों की अभिव्यक्ति दिनकर की 'रेणुका', 'हुंकार', 'रसवन्ती' आदि पूर्ववर्ती रचनाओं में पहले ही हो चुकी है । कवि ने समय-समय पर उठने वाले अपने द्वन्द्वों को रूबाइयों में बांधकर प्रस्तुत किया है और यही उसकी नवीनता है ।

लोकहित की भावना को भी इस कृति में स्थान-स्थान पर प्रश्रय मिला है । कवि लोकहित के मार्ग में आने वाले क्लेशों एवं दुखों का आनन्द स्वागत करता है ।

ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं मार्मिकता के साथ सौन्दर्य बोध का चित्रण भी इस संग्रह में मार्मिकता के साथ किया गया है । एक प्रकार से द्वन्द्वगीत दिनकर की समस्त काव्य चिन्तन धारा की पृष्ठभूमि है, जिसमें कवि के काव्य तत्वों के बीज सर्वत्र बिखरे पड़े हैं ।

द्वन्द्वगीत का आकर्षण उसकी प्रतीकात्मक अभिव्यंजना में है । प्राकृतिक उपकरणों को प्रतीकों के रूप में अपना कर कवि ने गूढ़ एवं गम्भीर भावों की मार्मिक सरल एवं सुगम अभिव्यंजना की है ।

§ 5 § सामधेनी :---

'सामधेनी' का प्रकाशन सन् 1946 ई0 में हुआ था । यह दिनकर की स्फुट कविताओं का संग्रह है जिसमें उनकी सन् 1941 ई0 तक की रचनाएं संगृहित है । यह काल भारत के ही नहीं, बल्कि विश्व के राजनैतिक

इतिहास में भी एक महत्वपूर्ण काल है, जागतिक उथल-पुथल का काल है ।
इस काल में एक ओर द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया था और दूसरी ओर
भारत स्वातन्त्र्य-संग्राम में कूद पड़ा था । इस तथ्य की पृष्ठभूमि पर
इस संग्रह का 'सामधेनी' नाम अत्यन्त सार्थक जान पड़ता है ।

डॉ० विश्वनाथ मिश्र ने 'सामधेनी' ऋग्वेद की उन ऋचाओं
को कहा गया है जो यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित करते समय पढ़ी जाती थी ।
दिनकर जी ने स्वाधीनता के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए नवयुवकों
का आह्वान करते हुए जो गीत लिखे हैं, उनका भी नामकरण 'सामधेनी'
ठीक ही किया गया है ।" [1]

'सामधेनी' एक प्रकार से युग की वाणी है। इसमें युग की राज-
नीतिक परिस्थितियों का चित्रण है और विद्रोह एवं क्रान्ति का स्वर विशेष
रूप से मुखरित हुआ है । 'सामधेनी' में दिनकर अन्तर्राष्ट्रीय चेतना को
भी लेकर उपस्थित हुए हैं, परन्तु देश की स्वातन्त्र्य चेतना के प्रति भी
वे सजग हैं । 'सामधेनी' में राष्ट्रीय भावों की अभिव्यंजना के साथ-साथ
जनता के सुख-दुख को, हर्ष-विषाद को भी अभिव्यक्ति मिली है ।

§ 6 § बापू :--

महात्मा गाँधी विषयक काव्यों में दिनकर के 'बापू' का अपना
विशिष्ट स्थान है । बापू का प्रकाशन सन् 1947 ई० में हुआ था । जिसमें

1:-- दिनकर : सावित्री सिन्हा, पृ० - 56 ।

महात्मा गाँधी के महान व्यक्तित्व का चित्रण किया गया है । लेकिन बाद में सन् 1949 ई0 में बापू की हत्या के परिणामस्वरूप कवि के मन में उद्भूत वेदना और रोष के भावों को भी उसमें सम्मिलित किया गया । इस प्रकार कुल मिलाकर यह बापू पर चार खण्डों में लिखी कविता है, जिसका पहला खण्ड बापू के महाप्रयाण के पहले का है और शेष तीन खण्ड महाप्रयाण के बाद के, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं :—

§1§ वज्रपात §2§ बलिदानवाद §3§ अघटन घटना क्या समाधान ।

प्रथम खंड में 'बापू' के महान व्यक्तित्व को साकार किया गया है । द्वितीय खण्ड - महाबलिदान में बापू के महाप्रयाण का वर्णन है । शेष दो खण्डों वज्रपात और अघटन घटना क्या समाधान" में बापू के महाबलिदान पर शोक की व्यंजना है ।

§ 7 § <u>इतिहास के आँसू</u> :—

इस रचना का प्रकाशन सन् 1952 ई0 में हुआ । यह दिनकर जी की कोई स्वतन्त्र रचना नहीं, बल्कि समय-समय पर रचित ऐतिहासिक कविताओं का संकलन है ।

मगध-महिमा, वैशाली तथा बसन्त के नाम पर शीर्षक कविताओं में भारत के गौरवशाली अतीत का एवं बुद्ध चन्द्रगुप्त तथा अशोक का गौरवगान किया गया है । कवि इन्हीं के भावनाविशेषों की स्मृतियों को ताजा करके आज की विश्व को विस्फोटक तथा द्वेषपूर्ण एवं छल कपट से परिपूर्ण

समस्याओं का समाधान और विश्व में शान्ति तथा सेवा भाव का विकास करना चाहता है । उक्त तीन कविताओं को छोड़कर शेष प्रायः सभी रचनाएं 'रेणुका' 'हुंकार' 'सामधेनी' आदि पूर्ववर्ती रचनाओं में अन्तर्भूत हो गयी हैं ।

§ 8 § धूप और धुँआ :—

"धूप और धुँआ" 31 कविता-संग्रह का प्रकाशन सन् 1953 ई0 में हुआ । उसमें कवि की सन् 1947 ई0 की और स्वातन्त्र्योत्तर काल की रचनाएं समाविष्ट हैं । इसके नामकरण के स्पष्टीकरण में स्वयं कवि ने लिखा है :—

"स्वराज्य से फूटने वाली आशा की धूप और उसके विरुद्ध जन्में हुए असंतोष का धुँआ, ये दोनों ही इन रचनाओं में यथास्थान प्रतिविम्बित मिलेंगे । अतएव जिनकी आँखें धूप और धुँआ देख रही है, उनके लिए वह नाम कुछ निरर्थक नहीं होगा ।" [1]

इस संकलन में मुख्यतया स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रहित और बापू तथा अन्य शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि के भाव मुखरित हुए हैं । इसमें विषय-वैविध्य है और वीरत्व की भावनाओं तथा नवनिर्माण की कल्पनाओं को स्वीकार करने की प्रेरणा यत्र-तत्र दी गई है । स्वातन्त्र्योत्तर रचित मुक्तक संग्रहों में दिनकर की धूप और धुँआ" कृति का प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से

1:— धूप और धुआँ – दिनकर, पृ0 – ।

विशेष महत्व है। इसमें दिनकर जी प्रजातन्त्र की प्रगति के इच्छुक और शान्ति तथा बन्धुत्व के गायक के रूप में उपस्थित होते हैं।

§9§ नीम के पत्ते :--

व्यंग्य एवं वक्रोक्तिपूर्ण रचनाओं का यह संग्रह सन् 1956 में प्रकाशित हुआ जिसमें से अरुणोदय, सपनों का धुँआ, हे राम, गाँधी व्यक्ति पंचतिक्त आदि रचनायें 'धूप और धुँआ' में ग्रहण की जा चुकी हैं। नीम के पत्ते की लगभग सभी कवितायें शीर्षक की सार्थकता को प्रकाशित करती हैं। जिस प्रकार नीम के पत्ते खाने में कड़ुवे होते है लेकिन उनका सेवन अत्यन्त गुणकारी होता है, उसी प्रकार इस संग्रह की कविताओं की कड़ुवी व्यंग्योक्तियां देश को अनाचार की बीमारी से मुक्त कर उसे स्वस्थ बना सकती हैं। अधिकारियों एवं व्यापारियों का जो नैतिक पतन देशभर में विराट रूप में व्याप्त था, उस पर कवि ने स्थान-स्थान पर तीखा व्यंग्य किया है। इस संग्रह के माध्यम से दिनकर जी ने अपना परिचय एक सच्चे लोकप्रिय कवि के रूप में दिया है, जिनका मुख्य उद्देश्य लोक जीवन का सुधार है। भाषा की दृष्टि से यह एक सुन्दर एवं सक्षम कृति है।

§10§ दिल्ली :--

यद्यपि यह संग्रह सन् 1956 ई0 में प्रकाशित हुआ था परन्तु कवि के शब्दों में :---"इस संग्रह में दिल्ली पर चार कवितायें संगृहीत हैं। पहली कविता यद्यपि सन् 1933 ई0 में रची गयी थी, किन्तु उसकी पृष्ठ भूमि सन् 1929 की है। नई दिल्ली का प्रवेशोत्सव सन् 1929 में मनाया

गया था । उसी वर्ष भगत सिंह पकड़े गये थे और लाहौर-कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ । सन् 1930 में सत्याग्रह-आन्दोलन उठा और देश में दमन चक्र जोरों से चलने लगा । उत्सन और दमन, इन्हीं विरोधों पर पहली कविता आधारित है ।" [1]

इस संग्रह की प्रत्येक कविता में दिल्ली का मानवीकरण किया गया है । कवि का दिल्ली से तात्पर्य शासक वर्ग से है । इसमें 'नई दिल्ली के प्रति', दिल्ली और मास्को, 'हक की पुकार' और 'भारत का यह रेशमी नगर' शीर्षक चार कविताएं संग्रहीत हैं । प्रथम दो रचनाएं पूर्ववर्ती काव्य-संग्रहों में आ चुकी हैं और अन्तिम दो रचनाएं नवीन हैं । इन चारों रचनाओं में देश की दुर्दशा, अत्याचार, दिल्ली के साज-श्रृंगार आदि पर व्यंग्यात्मक शैली में विचार व्यक्त किये गये हैं ।

§11§ नील कुसुम :—

'नील कुसुम' दिनकर की स्फुट कविताओं का संग्रह है । इस काव्य संग्रह का प्रकाशन सन् 1954 ई0 में हुआ । उसमें बहुत सी कविताएं कवि की पूर्ववर्ती धूप और धुँआ" रचना में संकलित हैं । 'नील कुसुम' की रचनाओं का मुख्य स्वर-कल्पना लोक से यथार्थ धरातल पर उतरकर रंगीनियों के स्थान पर ठोस धरती के गान का है । 'स्वप्न और सत्य' 'व्याल-विजय' इत्यादि रचनाएं इसका प्रमाण हैं ।

1:— दिल्ली - भूमिका - दिनकर, पृ0 - । ।

इस संग्रह की कतिपय कविताएं ऐसी है जो शान्ति और मानवतावाद को लेकर लिखी गयी हैं। कुछ कविताओं में व्यक्तिवादी और सामाजिक विचारों की अभिव्यंजना है और कुछ श्रृंगारिक और दार्शनिक भी हैं।

"नील कुसुम" दिनकर जी के नये विचारों का वाहक है। कवि व्यक्ति समाज, धर्म आदि को नये परिवेश में देखने का प्रयास करता रहा है।

§ 12 § नये सुभाषित :—

इस लघु संग्रह का प्रकाशन सन् 1957 में हुआ। इसमें लगभग सौ विषयों पर छोटी-छोटी कविताएं संगृहीत हैं। जो जीवन के विभिन्न पहलुओं को बड़े ही सहज ढंग से व्यक्त करती हैं।

प्रत्येक सुभाषित में जीवन को सरल ढंग से समझने तथा अपने दोषों को दूर करने की प्रेरणा दी गयी है। मार्मिकता स्पष्टवादिता, रोचकता एवं निर्भीकता इन सुभाषितों की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं। एक प्रकार से दिनकर जी ने इन सुभाषितों में बिहारी के दोहों की तरह गागर में सागर भर दिया है।

§13§ परशुराम की प्रतीक्षा :—

'परशुराम की प्रतीक्षा' सन् 1962 ई० के चीनी आक्रमण के पश्चात् सन् 1963 में प्रकाशित हुई थी जिसमें कुल 18 ओजपूर्ण कविताएं हैं। इस

संग्रह की लगभग सभी रचनाओं का स्वर क्रान्ति की आराधना का है और इनमें 'हुंकार' से भी अधिक तेज है ।

'परशुराम की प्रतीक्षा' शीर्षक कविता इस संग्रह की सबसे बड़ी कविता है जो पाँच खण्डों में विभाजित है । इसमें कवि ने भारत के सोते सिंहों को जगाने के लिए शंखनाद किया है । भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् शांति-संदेश का वहन करने वाले कवि को परशुराम की प्रतीक्षा में फिर से क्रान्तिदूत बनाना पड़ा । यह काव्यकृति एक प्रकार से कवि का पुनर्जागरण है ।

§14§ मृति तिलक :--

'मृति तिलक' दिनकर की मुक्तक और अनूदित कविताओं का संग्रह है, जिसका प्रकाशन सन् 1964 ई0 में हुआ । इसमें कुल 27 रचनाएं हैं 6 रचनाएं अनूदित हैं तथा अन्तिम रचना उर्वशी महाकाव्य की समाप्ति पर पन्त जी को लिखा गया पत्र है । कुछ रचनाओं में वर्तमान युग के राजर्षि टन्डन, राजेन्द्र प्रसाद, बापू आदि महापुरुषों के प्रति सद्भावनाएं तथा श्रद्धांजलियाँ हैं तो कुछ में राष्ट्र प्रेम तथा रानेताओं के गुणों और त्याग की प्रशंसा एवं मंगल भावना के गीत सन्निहित किये गये हैं ।

§15§ कोयला और कवित्व :--

चालीस कविताओं से सज्जित कोयला और कवित्व नामक संग्रह सन् 1946 ई0 में प्रकाशित हुआ । इस संग्रह में भी कवि का कोई निश्चित

उद्देश्य सामने नहीं आता है । 'गृह सुख' अन्तिम पुरूषार्थ अतिथि, काल, चुनौती आदि रचनाएं भाव प्रधान हैं । अन्य रचनाओं में त्याग की महिमा, संसार की क्षणभंगुरता, ईश्वर के प्रति आस्था तथा उसकी विराटता और नारी-प्रेम की आध्यात्मिकता पर प्रकाश डाला गया है ।

§16§ चक्रवाल :--

'चक्रवाल' कविवर दिनकर की कविताओं की चयनिका है, जिसका प्रकाशन सन् 1956 ई0 में हुआ था । इस काव्य संग्रह में रेणुका से लेकर नील कुसुम तथा रश्मिरथी प्रबन्ध काव्यों के कुछ अंश जोड़ देने से इस संग्रह की सार्थकता तथा उपादेयता में और भी श्रीवृद्धि हुई है । चूँकि इस संकलन में समाविष्ट कविताएं पूर्ववर्ती विभिन्न काव्य-संग्रहों के ही अंग हैं, जिनका परिचय इसके पहले दिया जा चुका है, यहां उस चर्चा को फिर से दुहराना उचित नहीं है ।

§ ग § मुक्तक रचनाएं §अनूदित§

§1§ सीपी और शंख :--

उस संग्रह का प्रकाशन सन् 1957 ई0 में हुआ था जिसमें अनेक कवियों की रचनाओं का अनुवाद है । इसमें 44 रचनाएं संगृहीत की गयी हैं । कवि ने अनुवाद में मूल कवि के भावों को ज्यों का त्यों रख दिया है । भाषा के प्रयोग के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कवि ने स्वयं लिखा है :--

"इन कविताओं में भाषा, कोमल और रंगीन होने के लोभ में नहीं पड़ी है, न वह श्रोताओं पर कोई प्रभाव जमाना चाहती है। उसका मूल उद्देश्य कथ्य को अधिक ईमानदारी से चित्रित करना है और इस कार्य को वह अत्यन्त विनय शीलता किन्तु दृढ़ता के साथ सम्पन्न करती है।" [1]

§2§ आत्मा की आँखें :--

इस संग्रह में कुछ 70 रचनाएं हैं, जिनका प्रकाशन सन् 1964 ई० में हुआ था। इसमें अंग्रेजी के कवि स्वर्गीय डी०एच० लोरन्स की कविताओं का भावानुवाद है जिनका सम्बन्ध भारतीय चेतना के अनुकूल है। इस अनुवाद में प्रगतिवादी, रहस्यवादी, काम सम्बन्धी तथा अन्य विषयक रचनाएं समाविष्ट की गयी हैं। अनुवादित होते हुए भी इन कविताओं में मौलिकता का आनन्द मिलता है।

§3§ हारे को हरिनाम :--

एक सौ दो कविताओं का यह संग्रह सन् 1970 ई में प्रकाशित हुआ था। जैसा कि इस संग्रह के निवेदन में कवि ने स्वयं स्वीकार किया है-- "कविता मेरे बस में नहीं है, मैं ही उसके अधीन हूँ। पहले उस तरह की कविता आती थी, तब वैसी लिखता था, अब इस तरह की आ रही है, इसलिए ऐसी लिखता हूँ।" [2]

1:-- सीपी और शंख §भूमिका, च§ दिनकर ।
2:-- हारे को हरिनाम - निवेदन - दिनकर ।

यह संग्रह कविता के नये शिल्प को स्वीकार कर मुक्तक शैली में लिखा गया है। परन्तु आस्थावादी होने के कारण कवि ने इसमें नई कविता के द्वन्द, कुंठा और संत्रास आदि को स्थान नहीं दिया है।

§घ§ <u>बालोपयोगी काव्य</u>

§1§ <u>धूप-छाँह :--</u>

दिनकर ने रवीन्द्र नाथ टैगोर से प्रेरणा लेकर कुछ बालोपयोगी कविताएं भी रचीं थी, जो धूप छाँह में संकलित है। इस संग्रह का प्रकाशन सन् 1946 ई0 में हुआ था। इसमें 16 कविताएं समाविष्ट है। जिनमें 10 अनूदित हैं और शेष मौलिक। बालोपयोगी रचनाओं का सृजन यद्यपि साहित्यिक धरातल पर विशेष महत्व नहीं रखता किन्तु इन रचनाओं में भी दिनकर जी की राष्ट्रीय चेतना का किंचित संकेत प्राप्त होता है, जो उनकी राष्ट्रीयता के बीज वपन के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। 'धूप छाँह' की 'कैंची और तलवार' 'भारतेन्दु-स्मृति' जैसी कविताएं उनका उदाहरण हैं। काव्य के क्षेत्र में बोये गये इसी बीज का क्रमिक विकास हम दिनकर जी की आगे की रचनाओं में देखते हैं।

'धूपछाँह के अतिरिक्त दिनकर जी ने खास करके बालकों के लिए मिर्च का मजा एवं सूरज का व्याह रचनाएं भी प्रकाशित की हैं।

दिनकर का काव्य चिंतन बहुमुखी एवं व्यापक था। उन्होंने जो कुछ सोचा अन्तर्राष्ट्रीयता के धरातल पर विश्व बन्धुत्व की पावन एवं

::--- पंचम अध्याय ---::

'दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता'

प्रथम अध्याय में राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के विकास का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है । परन्तु जहाँ राष्ट्र और राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में देसाई को 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि' शीर्षक पुस्तक का पुनः उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है । तत्पश्चात् दिनकर की काव्य कृतियों में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना सम्बन्धी विचार किया जायेगा ।

अन्य सामाजिक तथ्यों की तरह राष्ट्रवाद भी ऐतिहासिक तथ्य है । लोक जीवन के विकास क्रम में वस्तुनिष्ठ और भावनिष्ठ दोनों प्रकार के ऐतिहासिक तत्वों की परिपक्वता के पश्चात राष्ट्रवाद का उदय हुआ । जैसा ई0 एच0 कार ने लिखा है :-- 'सही अर्थों में राष्ट्रों का उदय मध्य युग की समाप्ति पर ही हुआ'[1] व्यापक राष्ट्रीयता के आधार पर समाज, राज्य और संस्कृति के उद्भव के पूर्व संसार के विभिन्न भागों का जन-जीवन, मोटे तौर पर इन परिस्थितियों से गुजरा, कबीलों की जिन्दगी दास प्रथा सामन्तवाद । सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के खास दौर में राष्ट्रों का जन्म हुआ । सामाजिक अस्तित्व के पूर्ववर्ती कालों के अराष्ट्रिक जन समुदाय से आधुनिक युग के राष्ट्र अपने निम्नलिखित गुणों के कारण भिन्न है, राष्ट्र के सारे

सदस्य किसी निश्चित भू-भाग में एक ही अर्थ तन्त्र के अन्तर्गत परस्पर
दैविक रूप से संयुक्त होते हैं, जिसके फलस्वरूप उनमें सम्मिलित आर्थिक
अस्तित्व का अभाव होता है, वे प्रायः एक ही भाषा का प्रयोग करते
हैं, उनकी एक सी मनोवैज्ञानिक संरचना और उससे विकसित सार्वजनिक
लोक संस्कृति होती है । ऐसा आदर्श राष्ट्र जो पूर्णतः विकसित हों और
जिसमें ये सब गुण विद्यमान हों, भावात्मक कल्पना मात्र है, क्यों कि
प्रत्येक राष्ट्र के अर्थ, तन्त्र, सामाजिक संगठन, चिंतन प्रकृति और संस्कृति
में अतीत के तत्व विभिन्न अंशों में उत्तरजीवी रहे हैं । फिर भी
सोलहवीं सदी से ही मानव इतिहास के विशाल रंग-मंच पर राष्ट्रगत
समेकन की विभिन्न अवस्थाओं में राष्ट्रीय जन समुदायों का अविर्भाव
होता रहा है ।

ई०एच० कार द्वारा दी गयी राष्ट्र की परिभाषा :--

जो विशिष्ट गुण किसी राष्ट्र को अराष्ट्रिक जन समुदायों
से पृथक करते हैं उनके बारे में ई०एच० कार ने कहा है--- राष्ट्र शब्द से
जैसे मानव समूह का बोध होता है उसके लक्षण हैं --

§1§ अतीत और वर्तमान में वास्तविकता अथवा भविष्य के लिए
आकांक्षा के रूप में सर्वनिष्ठ सरकार की धारणा ।

§2§ अपना अलग विशिष्ट आकार और सदस्यों का पारस्परिक सम्पर्क
सामीप्य ।

§3§ ऐसी चरित्रगत विशेषताएं §भाषा इनमें सर्वाधिक बहुल§ जो किसी
राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों और अराष्ट्रिक समुदायों से अलग करती हैं ।

§4§ न्यूनाधिक निर्धारित भू-भाग ।

§5§ सदस्यों के सम्मिलित स्वार्थ ।

प्रथम विश्व युद्ध एवं द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र-संघ की स्थापना इस बात का सबूत है कि आज का मानव समाज मूलतः राष्ट्र निर्मित है, मानव समाज की सगुटिका है । आधुनिक युग में राष्ट्र ही लोक जीवन का सर्वमान्य प्रचलित रूप है । इस तरह राष्ट्र ही आज का युग सत्य है और राष्ट्रीयता मानव मात्र की मूल भावना ।

राष्ट्र चेतना के उद्भव के लिए आवश्यक है सम्मिलित और एकतापूर्ण राजनीतिक और आर्थिक जीवन और इसके अभाव में भारत में राष्ट्रबोध का जागरण नहीं हो सका । एकीकृत राष्ट्रीय जीवन तभी संभव है जब उत्पादक शक्तियां काफी विकसित हों, श्रम विभाजन सार्वजनीन हो और व्यापक आर्थिक विनिमय क्रियाशील हो तभी देश में एकता की भावना बढ़ती है ।

राष्ट्र क्रमशः ऐसी संस्कृति की संरचना करता है जो संगीत, स्थापत्य, चित्रकारी, नाटक उपन्यास या समाजशास्त्रीय साहित्य के माध्यम से स्वतन्त्र और सम्पन्न सामाजिक, आर्थिक जीवन के लिए व्यक्तियों, दलों और वर्गों की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करती है । प्राक राष्ट्रीय ऐतिहासिक काल के सामंती अवशेष या विदेशी प्रभुत्व जैसी जो शक्तियां राष्ट्रीय समाज के विकास

को अवरुद्ध करती है, राष्ट्रीय संस्कृति उनका पर्दाफाश करती है। जागरण शील सामाजिक वर्गों और राष्ट्रीय उपजातियों की संस्कृतियों से आधुनिक भारतीय राष्ट्र बना है हमारे कवि राष्ट्रीयता के भारतीय आदर्श को ही स्वीकार करते हैं जिनके अनुसार देश-प्रेम का अर्थ अन्य देशों से घृणा करना नहीं है। राष्ट्राराधन उनके मत में पूजा है जो मिलकर की जाती है तथा जिसमें वैर भाव को कोई स्थान नहीं है।

कवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है। उसका व्यक्तित्व एवं कृतित्व युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होता है। स्वभावतः दिनकर की समग्र काव्य रचना युग का प्रतिबिम्ब है। दिनकर ने चक्रवाल की भूमिका में लिखा है:-- "कवि मानवता का वह चेतन यंत्र है जिस पर प्रत्येक भावना अपनी तरंग उत्पन्न करती है, जैसे भूकम्प मापक यंत्र में पृथ्वी के अंग में कहीं भी उठने वाली सिहरन आप से आप अंकित हो जाती है। सच पूछिये तो हम कवि उसी मात्रा में होते हैं जिस मात्रा में हम भावुक होते हैं और कवि हम तभी तक रहते है जब तक भावुकता हममें शेष रहती है।"[1] यह भावुकता आती है उसकी देश, कालगत विभिन्न युगीन परिस्थितियों के परिवेश से।

निर्धनता में पले, जीवन व्यापार की कंटकमय बीथी में भटकते हुए परम्परागत प्राचीन संस्कारों में ढले एवं क्रांतिकाल में खिले, चिरतारुण्य

1-- चक्रवाल - दिनकर भूमिका, पृ० - 14

के प्रतीक महाकवि दिनकर अपने समय की देश की दुखदस्थिति से उदासीन नहीं रह सके । अंग्रेज शासकों की सेवा में रहते हुए, वाणी की परतन्त्रता ने कवि को इस प्रकार उद्वेलित किया कि उनकी समस्त काव्यगत चेतना राष्ट्रीयता की ओर मुड़ गयी । दिनकर ने स्वयं स्वीकार किया है-- "राष्ट्रीयता मेरे व्यक्ति के भीतर नहीं जनमी उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया ।"[1] डॉ० अवधनारायण त्रिपाठी ने राष्ट्रीयता का विश्लेषण करते हुए कहा है --

"राष्ट्रीयता का अर्थ किसी देश की भौगोलिक सीमा के भीतर निवसित जनसमूह की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक-सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना के समन्वित रूप से है । राष्ट्रीयता एक ऐसी भावना है जो देश की चेतना को फूँकती है, मुक्ति संग्राम में मर-मिटने का आह्वान करती है और कवियों तथा रचनाकारों को राष्ट्र, जाति और धर्म की रक्षा के लिए आदोलन जगाने और राष्ट्र पर सर्वस्व समर्पण की भावना भरने वाली रचनाएं लिखने का प्रोत्साहन भी देती हैं ।"[2]

राष्ट्रीयता की यह भावना दिनकर जी में पूरी मात्रा में विद्यमान थी ।

1:-- चक्रवाल - दिनकर भूमिका, पृ० - 33

2:-- राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना- डॉ० अवध नारायण तिवारी, पृ० - 41 ।

अंग्रेजों के अकल्पनीय क्रूर अत्याचारों से भारतीय जनमानस का अस्तित्व विंध रहा था। सम्पूर्ण देश दासत्व की अकथनीय मर्मांतक पीड़ा से ग्रस्त था। अंग्रेजों का दमन चक्र बड़ी ही क्रूरता से चल रहा था। उनकी फोड़ो और राज्य करो की नीति संग्रह-कलह तथा साम्प्रदायिकता की विषवल्ली फैलने लगी थी। भारतीय अस्मिता तथा स्वाभिमान अंग्रेजों द्वारा कुचला जा रहा था। वैयक्तिक अनुभूतियां पुंजीभूत होकर सामूहिक कर्तव्य एवं सामूहिक अनुभूतियों में बदल रही थी। ऐसे वातावरण में संवेदनशील कवि जन-जन की मर्मांतक पीड़ा एवं राष्ट्रीयता के ओज तथा आक्रोश से भरे क्रान्तिकारी गीतों का सृजन करने लगा। कवि के हृदय की यह भावुकता उनकी ओजमयी वाणी से जन-मन तक पहुंचने लगी। देश की विषमता एवं परतन्त्रता का अन्त करने के लिए भारत की सुप्त जनता को जागृत कर उसे अपने कर्तव्य तथा स्वाभिमान की पहचान कराने के लिए स्वराष्ट्र के रक्षार्थ आत्मबलिदान की भावना उसमें जगाने के लिए, कवि का सम्पूर्ण व्यक्तित्व समाज तथा राष्ट्र के अधीन हो गया। जनमानस की अन्तस्थ सुप्त भावनाओं को जागृत करने की सामर्थ्य जिसमें होती है वही युग कवि कहलाने का सच्चा अधिकारी होता है। दिनकर जी इसी कसौटी पर खरे उतरते हैं।

कवि की काव्य कृतियों पर जितना युगीन परिस्थितियों का उतना ही समकालीन कवियों का भी प्रभाव पड़ता है। राष्ट्रकवि

दिनकर भी उसके लिए अपवाद नहीं है । जिन विषम परिस्थितियों में उनका बचपन एवं विद्यार्थी जीवन गुजरा उन्होंने उन्हें क्रांतिकारी रचनाओं के लिए प्रेरित-उत्तेजित किया । जिस देहात में वे पले-पुसे, उसमें बचपन में ही उन्होंने अनेक बार दरिद्र जनता को दुर्भिक्ष महामारियों का शिकार होते देखा था, जमींदारों द्वारा गरीबों पर किये जाने वाले अन्यायपूर्ण शोषण को निकट से देखा था । गाँव की जिस पाठशाला में वे पढ़ते थे उसके दुर्भिक्ष से पीड़ित अपने अध्यापक को उन्होंने महुए के फलों के छिलके खाकर जैसे-तैसे गुजारा करते देखा था । जब दिनकर की प्राथमिक शिक्षा पूरी हुई तब देशभर में असहयोग आन्दोलन छिड़ गया था फलतः दिनकर अपनी आगे की पढ़ाई के लिए सरकारी स्कूल में दाखिल न होकर, राष्ट्रीय विद्यालय में दाखिल हुए । राष्ट्रीय विद्यालय में पाई हुई शिक्षा ने ही दिनकर के राष्ट्रीय व्यक्तित्व का निर्माण किया । दिनकर के काव्य में जो पौरुषपूर्ण ओज पाया जाता है उसका बीज इसी राष्ट्रीय विद्यालय में बोया गया । इसी विद्यालय में उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता का पाठ पढ़ा और यही हिन्दी की राष्ट्रीय कविताओं से भी व्यक्त हो गयी ।

दिनकर जी ने रामगुरु धीरेन्द्र शास्त्री से राष्ट्र प्रेम स्वदेशानुराग एवं राष्ट्रभाषा प्रेम का प्राथमिक पाठ पढ़ा था । राष्ट्रकवि की प्रतिभा का जो ढाँचा गढ़ा गया था उसमें स्वरंग भरने का काम उनके समकालीन

पं0 माखन लाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्रा कुमारी चौहान, रवीन्द्र नाथ टैगोर, नजरूल इकबाल, जोशमलीहाबादी आदि शिल्पियों ने किया ।

दिनकर पर जिन कवियों का प्रभाव पड़ा उसका जिक्र उन्होंने स्वयं किया है --

"मेरे सबसे प्रिय कवि मैथिलीशरण, माखन लाल, सुभद्रा, नवीन और रामनरेश त्रिपाठी ही थे । बंगला सीखकर मैंने रवीन्द्र और नजरूल से भी परिचय बढ़ा लिया था । पीछे जब मैं नौकरी करने लगा तब मैंने उर्दू सीखी और इकबाल तथा जोश का भक्त बन गया ।" [1]
'जिस प्रकार मैं हिमालय एवं हिन्द महासागर का ऋणी हूँ उसी प्रकार रवीन्द्र, इकबाल और दूसरे कवियों का ऋण भीमुझ पर है ।" [2]

परतन्त्रता से मुक्ति पाने के लिए युवकों के हृदय में उग्र क्रान्ति का उत्साह भरने में माखनलाल की कविताएं बहुत ओजस्विनी सिद्ध हुई हैं । फलतः युवक दिनकर का माखनलाल जी से प्रेरणा प्राप्त करना स्वाभाविक था । माखनलाल जी का सीधा असर दिनकर जी पर पड़ा जिसकी स्वीकृति स्वयं दिनकर ने निम्नांकित पंक्तियों मे दी हैं--

"आज से 25 वर्ष पूर्व जब 'प्रताप' में 'भारतीय आत्मा' की 'तिलक' शीर्षक कविता छपी थी तब मैं कोई 10-12 साल का था ।

1:-- चक्रवाल-दिनकर, पृ0 - 26-27
2:-- रेणुका - (भूमिका) दिनकर

किन्तु मुझे भली-भाँति याद है कि वह कविता मुझे अत्यन्त पसन्द आयी थी और मैंने उसे कंठस्थ कर बहुत लोगों को सुनाया भी था। आगे चलकर मेरी मनोदशा के निर्माण में तथा उस 'भारतीय आत्मा' की अन्य कविताओं ने मुझ पर बहुत प्रभाव डाला।"[1]

जहाँ तक राष्ट्रीय कविता का प्रश्न है दिनकर सबसे अधिक पं० माखनलाल चतुर्वेदी से प्रभावित हुए हैं। राष्ट्रीय कविता का विश्लेषण करते हुए एक स्थान पर माखन लाल चतुर्वेदी ने लिखा है --

"राष्ट्रीय कविता क्या है? राष्ट्रीय कविता केवल खून-फाँसी, हथकड़ी, बेड़ियों आदि की कविता नहीं है। राष्ट्र की प्रत्येक चीज पवित्र है, गौरव की वस्तु है राष्ट्र को मैं महान विशाल मानता हूँ। उसे मैं समस्त भूतकाल से लेकर भविष्य काल की नाप से नापता हूँ। ऐसे ही सनातन राष्ट्रवादी है। राष्ट्रीय कविता घूँघरू बाँधकर ही मनोरंजन नहीं करती या मधुर आलापों से माधव का गायन ही नहीं करती, किन्तु वह युद्ध के प्रभातकाल में लंकाकांड का भीषण रूप भी धारण कर लेती है और सैनिकों को बलिपथ पर आमंत्रित करती है।"[2]

माखनलाल चतुर्वेदी ने राष्ट्रीय कविता की जिन विशेषताओं की ओर उपर्युक्त परिभाषा में संकेत किया है वे सब दिनकर के समस्त राष्ट्रीय काव्य में विद्यमान हैं।

1:-- मिट्टी की ओर-दिनकर, पृ० 185

2:-- दिनकर की सृष्टि और दृष्टि - डॉ० छोटेलाल दीक्षित

दिनकर की 'हुंकार' शीर्षक रचना की अधिकांश कवितायें ऐसी हैं जिनमें सीधे माखनलाल जी की कविताओं का प्रभाव दिखाई देता है । मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं का भी पर्याप्त प्रभाव दिनकर पर पड़ा है । उनकी सर्वप्रथम कृति 'प्रण भंग' पर गुप्त जी के जयद्रथ वध' का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । कवि ने प्रणभंग की भूमिका में स्वयं स्वीकार किया है :--

कि यह काव्य 'जयद्रथवध' के अनुकरण पर लिखा गया है । दिनकर जी गुप्त जी की भारत-भारती', किसान, शकुन्तला आदि अन्य रचनाओं से तथा रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' से भी प्रभावित हैं । दिनकर ने 'जयद्रथ वध' के और 'पथिक' के अनुकरण पर बीर-बाला खण्ड काव्य रचने का भी प्रयास किया किन्तु वह अधूरा ही रह गया ।

दिनकर जी पर पूर्वोल्लेखित राष्ट्रीय कवियों का प्रभाव ही निःसंदेह उनकी वाणी से प्रस्फुटित क्रान्ति स्वरों के लिए उत्तरदायी है ।

दिनकर की काव्य प्रतिभा बहुमुखी है, किन्तु राष्ट्रीय चेतना ही उनके काव्य का प्रमुख स्वर है ।

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता के प्रतिपाद्य विषयों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम वर्ग में उन कविताओं का अन्तर्भाव है जिनमें कवि ने देश प्रेम की भावना को सामयिक प्रेरणा से सम्बद्ध

करके व्यक्त किया है । दूसरा वर्ग उन कविताओं का है जिनमें अतीत के माध्यम से देश-प्रेम की अभिव्यंजना हुई है । तीसरे वर्ग में उन कविताओं का समावेश है जिनमें देश प्रेम की भावना से अधिक सामयिक घटनाओं की ही अभिव्यक्ति तीव्र रूप में हुई है ।

सामयिक जीवन की अभिव्यक्ति :--

दिनकर ने अपने काव्यों में सर्वप्रथम सामयिक जीवन की चुनौती को न केवल स्वीकार किया है बल्कि उसका एक प्रभावशाली उत्तर देने का प्रयास भी किया । उनकी कविताओं में क्रान्ति का स्वर यथा स्थान सुनाई पड़ता है विशेष रूप से हुंकार की आमुख कविता में । हुंकार की 'आमुख' कविता का दिनकर की राष्ट्रीय विचारधारा के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान है । इस कविता से कवि के सम्पूर्ण काव्य-विकास का स्पष्ट संकेत मिल जाता है । वर्तमान के क्षण जिस समय कवि को बुलाने के लिए आये उस समय वह शाश्वत-सनातन आदर्शों में खोया हुआ था, अपने आप में मग्न था, उसे भारत पर छिड़े हुए भयानक युद्ध का ज्ञान भी नहीं था । वर्तमान ने ही उसे क्रान्ति के गीत गाने और अपना बलिदान करने को प्रेरित किया --

समय ढूह की ओर सिसकते मेरे गीत विकल धाये
आज खोजते उन्हें बुलाने वर्तमान केवल आये?
शैल शृंग पढ़ समय-सिन्धु के आर-पार तुम हेर रहे
किन्तु ज्ञात क्या तुम्हे भूमि का कौन दनुज का पथ घेर रहे?

जो वज्रों का घोष, विकट संघात धरा पर जारी है,
वहि रेणु चुन स्वप्न सजा लो, छिटक रही चिनगारी है,
रण की घड़ी जलन की बेला, रुधिर पंक में गान करो,
अपना साकल धरो कुण्ड में, कुछ तुम भी बलिदान करो । [1]

इस उद्धरण की तीसरी पंक्ति का संबन्ध हिन्दी के उन अधिकांश कवियों से है जो बसुन्धरा की वास्तविकता से दूर, काफी दूर, पर्वत की ऊँची चोटी पर खड़ा होकर सनातन मूल्यों की खोज में इतने व्यस्त दिखाई पड़ते हैं कि तत्कालीन सामाजिक संघर्ष उन्हें किंचित मात्र भी प्रभावित नहीं कर सकते । लेकिन कवि दिनकर अपने वर्तमान कालिक संघर्ष से प्रभावित होता है । उसकी दृष्टि देश की वर्तमान दशा की ओर आकृष्ट होती है । वह देश के हित सब कुछ बलिदान करने के लिए तत्पर हो जाता है । जैसे ही वह कुछ गाना चाहता है अपनी पराधीनता और बेबसी का उसे ज्ञान हो जाता है • [2] और वह व्याकुल हो जाता है । अपनी व्याकुलता को सह सकने में असमर्थ वह जनता को क्रान्ति करने के लिए प्रेरित करता है ।" [3]

1:-- हुंकार - दिनकर, पृ० - 1
2:-- वही
3:- वही, पृ० - 2

श्रृंग छोड़ मिट्टी पर आया, किन्तु कहो क्या गाऊं मैं?
जहाँ बोलना पाप, वहां क्या गीतों से समझाऊँ मैं?
विधि का शाप, सुरभि साँसों पर लिखूँ चरित मैं क्यारी का,
चौराहे पर बँधी जीभ से मेल करूँ चिनगारी का ।[1]

कवि को नये युग के निर्माण के लिए क्रान्ति की आवश्यकता महसूस होती है । उसे अपने क्रान्तिकारी स्वर पर अपनी शक्ति पर, देश की सफलता पर पूर्ण विश्वास है :--

जय हो, युग के देव पधारो! विकट रूद्र हे, अभिमानी
मुक्त केशनी खड़ी द्वार पर कब से भावों की रानी ।
अमृत गीत तुम रचो कलानिधि! बुनो कल्पना की जाली
तिमिर ज्योति की समर भूमिका में चारण मैं बैताली" [2]

इस प्रकार दिनकर की काव्य चेतना वर्तमान की पुकार से सजग होती है, क्रान्ति का नारा लगाती है ।

मातृभूमि वन्दना :--

मातृभूमि का वन्दना राष्ट्रीय कवियों की एक प्रमुख प्रवृत्ति रही है । मातृभूमि के प्रति प्रेम राष्ट्रीय तत्वों में से एक प्रमुख

1:-- हुंकार - दिनकर, पृ० - 1
2:-- वही, पृ० - 2

तत्व है । दिनकर ने भी मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावना अपनी कुछ कविताओं में व्यक्त की है । मातृभूमि के हिमकिरीट हिमालय को एक तपलीन यती के रूप में कल्पित करके उसका वर्णन उन्होंने 'हिमालय' शीर्षक कविता में किया है । कवि तपस्वी यती को जगाकर स्वातन्त्र्य यज्ञ में सहभागी होने के लिए उसे आवाहित करता है :--

"मेरे नगपति मेरे विशाल ।
साकार दिव्य गौरव विराट
पौरूष के पुंजीभूत ज्वाल ।
मेरी जननी के हिमकिरीट ।
मेरे भारत के दिव्य भाल
मेरे नगपति मेरे विशाल ।
× × ×
ओ मौन तपस्या लीन यती
पलभर को तो कर दृगोन्मेष।
रे ज्वालाओं से दग्ध विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश ।
× × ×
तू मौन त्याग कर सिंहनाद
रे तपी ! आज तप का न काल ।
नवयुग शंख ध्वनि जगा रही
तू, जाग, जाग मेरे विशाल ।" 1

1:-- चक्रवाल - दिनकर, हिमालय, पृ0 6-8 ।

'किसको नमन करूँ मैं'? शीर्षक एक दूसरी कविता में कवि ने भारत की वंदना करते हुए उसके माध्यम से भारत की प्राकृतिक सुषमा का एक दिव्य एवं भव्य चित्र हमारे सम्मुख रखा है और उसके द्वारा भारत की महान संस्कृति, उसके उच्चादर्शों एवं उसके उदात्त गुणों का बहुत ही मार्मिक एवं ढंग से वर्णन किया है । निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

तुझको या मेरे नदीश, गिरि वन को नमन करूँ मैं?
मेरेग प्यारे देश ! देह या मन को नमन करूँ मैं?
किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं ।

× × ×

तू तो है वह लोक जहाँ उन्मुक्त मनुज का मन है
समरसता को लिए प्रवाहित शीत-स्निग्ध जीवन है
जहाँ पहुँचते नर-नारी दिग्बंधन को
आत्म रूप देखते प्रेम में भरकर निखिल भुवन को
कहीं खोज इसी रूचिर स्वप्न पावन को नमन करू मैं?
किसको नमन करूँ मैं भारत किसको नमन करूँ मैं?
भारत नहीं स्थान का वाचक गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं शील यह भूमण्डल भर का है ।
जहाँ एकता खंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्वर है ।

निखिल विश्व की जन्मभूमि वन्दना को नमन करूँ मैं?

किसको नमन करूँ मैं भारत किसको नमन करूँ मैं?

× × ×

उठे जहाँ भी घोष शान्ति का, भारत, स्वर तेरा है,

धर्मदीप हो जिसके भी कर में वह नर तेरा है।

तेरा है वह वीर, सत्य पर जो अड़ने जाता है,

किसी न्याय के लिए प्राण अर्पित करने जाता है।

मानवता के इस ललाट चन्दन को नमन करूँ मैं?

किसको नमन करूँ मैं भारत किसको नमन करूँ मैं? [1]

यहाँ यह बात स्पष्ट करती है कि उक्त पंक्तियों में यद्यपि मातृभूमि की वंदना के उद्गार अंकित है, किन्तु कवि को इस कविता में मातृभूमि की वंदना अभिप्रेत नहीं है, स्वतन्त्रता के पश्चात् कवि भारत को जिस नवनिर्मित उज्जवल रूप में देखने को इच्छुक था, ठीक उसके विपरीत उसकी सामाजिक एक एवं राजनीतिक स्थिति देखकर कवि के मन में जो उद्वेग उत्पन्न हुआ उसी का सूक्ष्म संकेत इस कविता में किया गया है। कविता की निम्नांकित पंक्तियों में कवि की यह उद्विग्नता स्पष्टतः दिखाई देती है।

"जहाँ जनों से ही मनुजों को भय है

सबको सबसे त्रास सदा सब पर सबका संशय है।

1:— चक्रवाल – सं0 दिनकर – किसको नमन करूँ मैं, पृ0 357-360

जहाँ स्नेह के सहज स्रोत से हटे हुए जनगण हैं,

झंडो या नारों के बीच बँटे हुए जनगण हैं

कैसे इस कुत्सित, विभक्त जीवन को नमन करूँ मैं

किसको नमन करूँ मैं भारत किसको नमन करूँ मैं? "[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दिनकर जी की मातृभूमि-वंदना उनके पूर्ववर्ती या समकालीन कवियों की विशुद्ध वंदना नहीं है, बल्कि उसमें उनकी राष्ट्रीय चेतना ही प्रबल है। वंदना परक कविताओं में वंदना के बहाने कवि ने प्रधानतया राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति को ही स्थान दिया है।

राष्ट्रीय ध्वज राष्ट्र का प्रतीक होता है। देश की स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर कवि ने ध्वज वंदना के गीत भी गाये हैं। ध्वज वंदना शीर्षक दो कविताओं में कवि ने राष्ट्रीय ध्वज के प्रति अपनी श्रद्धा के फूल समर्पित करते हुए अपने देश प्रेम को अभिव्यक्त किया है :--

"मंगल मूर्ति तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा"

बल-बलिदान, विजय का साका

सखा शूरता, निर्भयता का,

जनता की यह राज पताका,

जन-जन की आँखों का तारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।

1:-- चक्रवाल सं0 दिनकर - किसको नमन करूँ मैं, पृ0 - 358

उसमें गौरवगान भरा है,

बल, पौरूष, बलिदान भरा है,

यौवन का अरमान भरा है,

उगता हिन्दुस्तान हमारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा ।" [1]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि विशुद्ध वंदना के बदले उनमें राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति ही प्रमुख है । उपर्युक्त पंक्तियों में भारत के सौख्य, शील, शक्ति, प्रेम, उदारता, बलिदान, पौरूष आदि गुणों का अंकन विशेष रूप से किया गया है ।

जातीय एकता

राष्ट्रीयता के सैद्धान्तिक तत्वों में जातीय एकता का विशेष महत्व है । महात्मा गाँधी ने इसलिए जातिगत विषमता का निर्मूलन करने के एक मार्ग के रूप में दलित जातियों के उत्थान का प्रयास किया था । हरिजन उद्धार भी उनके इसी प्रयास का एक रूप था । वे दलितों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाकर उन्हें समाज का एक अभिन्न अंग बनाना चाहते थे । राजनैतिक एकता में सुदृढ़ता लाने के लिए वे इसे आवश्यक समझते थे ।

1:— प्रणभंग तथा अन्य कविता - ध्वजवंदना - दिनकर
पृ0 118-119

दिनकर ने भी युग का साथ देते हुए देशवासियों को अपनी अनेक कविताओं में जातीय एकता की प्रेरणा प्रदान की है ।

भारत में जातिगत वैषम्य के कारण अनेक बार सांप्रदायिक दंगों का विस्फोट हुआ । सन् 1927 में कांग्रेस और मुस्लिमलीग की हिन्दू-मुस्लिम एकता के विषय में समझौता-वार्ता जब असफल हो गयी तब देश भर में सांप्रदायिक दंगों की भीषण आग धधक उठी । हिन्दू और मुस्लिम-दानव बनकर एक दूसरे का खून पीने पर उतारू हो गये । दिनकर इस घटना से बड़े उद्विग्न हुए । हिन्दू-मुस्लिम जातियों के बीच वैमनस्य को दिनकर स्वतन्त्रता-प्राप्ति के मार्ग में बाधक समझते थे । उन्होंने इसे कौम की तकदीर का बँटवारा मानकर दोनों जातियों को ध्यान उनकी इस भयंकर भूल की ओर आकृष्ट करते हुए उन्हें देश की होने वाली हानि का बोध कराया । कवि के हृदय की उद्वेग जनक वेदना इन पंक्तियों में प्रकट हुई है :--

"हाथ की जिस की कड़ी टूटी नहीं
पाँव में जिसके अभी जंजीर है
बाँटने को हाय ! तौली जा रही,
विधवा उस कौम की तकदीर है ।

× × ×

ताव थी किसकी कि बाँधे कौम को
एक होकर हम कहीं मुहँ खोलते ?

बोलना आता कहीं तकदीर को,

हिन्द वाले आसमाँ पर बोलते ।

× × ×

सूझता आगे न कोई पन्थ है

है घनी गफलत-घटा छायी हुई,

नौजवानों कौम के तुम हो कहाँ?

नाश को देखो घड़ी आई हुई ।" [1]

नोआखाली और बिहार के दंगों के प्रसंगों में भी कवि में जातिगत एकता की चेतना जाग उठी । मजहब और ईमान की रक्षा के नाम पर एक ओर हिन्दुओं के सिर कुटिल राजनीतिज्ञों द्वारा कटवाये जा रहे थे तो दूसरी ओर हिन्दू भी बदले की भावना से अंधे हो रहे थे । कूटनीतिज्ञ भेड़ियों की महत्वाकांक्षा की पूर्ति निरपराध, निष्पाप इन्सानों की जघन्य हत्या से की जा रही थी । धर्मान्धता में दोनों कौमें हिंस्र पशु बनकर एक दूसरे के खून की प्यासी बन गयी थीं । भावुक हृदय दिनकर इस भीषण घटना से भयचकित एवं लज्जित हो गये । उन्होंने अपनी ग्लानि को इन शब्दों में व्यक्त किया है :—

"ओ बदनसीब, इस ज्वाला में आदर्श तुम्हारा जलता है ।

समझायें कैसे तुम्हें भारत वर्ष तुम्हारा जलता है ।

1:— चक्रवाल – दिनकर, पृ0 – 69–70

जलते हैं हिन्दू-मुसलमान भारत की आँखें जलती हैं ।
ये दुरे नहीं चलते, छिदती जाती स्वदेश की छाती,
लाठी खाकर भारतमाता बेहोश हुई जाती हैं ।"[1]

इस प्रकार जातिभेद के निर्मूलन एवं हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के संदेश द्वारा कवि देशवासियों में जातीय एकता की चेतना को जागृत रखने में सदैव प्रयत्नशील रहे । दिनकर की यह मान्यता थी कि साम्प्रदायिकता और धार्मिक विभेद देश की प्रगति में बाधक ही नहीं, बल्कि उसकी स्वतन्त्रता में विघातक भी सिद्ध होते हैं । इसलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी दिनकर की कविताओं में जातीय एकता की भावना अक्षुण्ण रही ।

सामाजिकता :--

दिनकर की राष्ट्रीय भावना व्यष्टिपरक न होकर समष्टि परक है, जो भारतीयता के प्राचीन आदर्श, विश्व प्रेम और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उदात्त भावना की कसौटी पर खरी उतरती है । कवि जातीयता को संकुचित विचारधारा को समाज का स्वस्थ स्वरूप नहीं मानता। स्वस्थ एवं सशक्त समाज का निर्माण जाति से चिपके रहने वाले व्यक्तियों से नहीं, अपितु अपने कर्म, शौर्य एवं शक्ति से अपना मार्ग प्रशस्त करने

1:-- सामधेनी - हे मेरे स्वदेश - दिनकर, पृ0 - 29

वाले व्यक्तियों से होता है। यही विचार 'रश्मिरथी' में सूत-पुत्र कर्ण के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है :---

"जाति-जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाखंड,
मैं क्या जानूँ जाति? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।
पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि समान दीपित ललाट से और कवच कुण्डल से,
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझ में तेज प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास" [1]

इसी जातिवाद की विषम एवं संकीर्ण भावना के कारण भारत विदेशियों द्वारा पदाक्रान्त हुआ है। कवि के शब्दों में :--

"धँस जाये वह अतल में, गुण की जहाँ नहीं पहचान,
जाति-गोत्र के बल से ही, आदर पाते जहाँ सुजान।" [2]

कवि की मान्यता है कि कोई भी व्यक्ति वंश परम्परा से नहीं, वरन अपने गुणों द्वारा प्रगति करता है। तभी तोकवि कहता है :--

बड़े वंश से क्या होता है, खोटे हों यदि काम?
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है, नहीं वंश, धन, धाम।" [3]

1:-- रश्मिरथी - प्रथमसर्ग- दिनकर, पृ0 - 4
2:-- रश्मिरथी, दूसरा सर्ग, दिनकर, पृ0 - 17
3:-- रश्मिरथी - प्रथम सर्ग, पृ0 - 7

जातिगत वैषम्य तथा आर्थिक विषमता सामाजिकता को खण्डित करती है । यही कारण है कि साम्यवाद आर्थिक विषमता को कम करना चाहता है । कार्ल-मार्क्स ने वर्ग संघर्ष के कारण उत्पन्न विषमता को नष्ट करने की बात की है शोषण का प्रारम्भ पूँजीवादी व्यवस्था से शुरू होता है । बीसवीं शताब्दी के कवियों ने इस साम्यवादी विचार धारा का गहन अध्ययन एवं चिन्तन कर अपनी प्रगतिवादी रचनाओं के माध्यम से उसे अभिव्यक्ति किया है :--

ओ मदहोश बुरा फल है, शरी के शोणित पीने का,
देना होगा तुम्हें एक दिन गिन-गिन मोल पसीने का
कल होगा इन्साफ यहाँ किसने क्या किस्मत पाई है ।
अभी नींद से जाग रहा युग, यह पहली अंगड़ाई है । " [1]

भारतीय किसानों की दरिद्री जीवन-दशा दिनकर को बेचैन करती है । स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद किसान एवं मजदूर वर्ग अपने मन में बड़ी-बड़ी आशाएं लेकर बैठा था किन्तु उनकी स्थिति सुधारने का नैतिक उत्तरदायित्व जिन नेताओं पर था वे अपने कर्तव्यों को उपेक्षित कर सत्तालोलुप बनकर विलासी जीवन बिताने लगे । नेताओं के इस व्यवहार पर कवि को बड़ा क्षोभ हुआ । भारत के रेशमी नगर-दिल्ली में रहकर विलासोपभोग में रंगरेलियां करने वाले उन नेताओं से दिनकर

1:-- हुंकार - अनलकिरीट - दिनकर, पृ0 - 28

सीधा सा सवाल पूछा है :--

रेशमी कलम से भाग्य लेख लिखने वालों

तुम भी अभाव से ग्रस्त हो रोये हो?

बीमार किसी बच्चे की दवा जुटाने में,

तुम भी क्या घर पेट बाँधकर सोये हो?

असहाय किसानों की किस्मत को खेतों में

क्या अनायास जल में बह जाते देखा है?

क्या खायेंगे? यह सोच निराशा से पागल,

बेचारों को नीरव रह जाते देखा है?

देखा है ग्रामों की अनेक रंभाओं को जिनकी,

आभा पर धूल अभी तक छायी है?

रेशमी देह पर जिन अभागिनों को अब तक,

रेशम क्या? साड़ी सही नहीं चढ़ पाई है ।" [1]

इस प्रकार देश जब अनेकानेक यातनापूर्ण स्थितियों से होकर गुजर रहा था तब दिल्ली के नेताओं में विलासिता पूर्ण जीवनजीने की होड़ सी लगी थी कवि दिल्ली को संकेतकर कहता है :---

तू वैभव मद में इठलाती,

परकीया सी-सैन चलाती,

1:-- चक्रवाल - भारत का यह रेशमी नगर - दिनकर, पृ० - 317

री ब्रिटेन की दासी । किसकी
इन आँखों पर है ललचाती" ।[1]

भारतीय कृषक और मजदूर वर्ग पूँजीपतियों द्वारा निरन्तर शोषित होता आया है कृषक वर्ग की अभावग्रस्त दशा से कवि का हृदय क्षुब्ध होता है । नियति का यह कैसा निष्ठुर व्यवहार है कि जो सबका अन्नदाता है उस कठोर परिश्रमी किसान के लिए दो बार भोजन मिलना भी दुष्कर हो रहा है । पूँजीपतियों द्वारा किये जाने वाले शोषण के परिणामस्वरूप अभावों से पीड़ित किसान पर अन्तिम साँसे गिनने का प्रसंग उपस्थित होता है । किसानों की इस लाचारी का यथार्थचित्र दिनकर की 'कस्मैदेवाय' शीर्षक कविता की निम्नांकित पंक्तियों में देखा जा सकता है :---

"विद्युत की इस चकाचौंध में देख दीप की लौ रोती है ।
अरी, हृदय को थाम, महल के लिए झोपड़ी बलि होती है ।
देख कलेजा फाड़ कृषक दे रहे हृदय शोणित की धारें ।
बनती ही उन पर जाती है वैभव की ऊँची दिवारें ।
धन-पिशाच के कृषक-मेध में नाच रही पशुता मतवाली,
अतिथि मग्न पीते जाते हैं दीनों के शोणित की प्याली ।"[2]

1:-- चक्रवाल - दिल्ली - दिनकर, पृ0 - 19

2:-- चक्रवाल - कस्मैदेवाय - दिनकर, पृ0 - 19

सहृदय कवि दिनकर को कृषक वर्ग के प्रति सदैव सहानुभूति रही है । क्योंकि वह दिन-रात कठोर परिश्रम करके देशवासियों का पोषण करने वाला है । विधि की यह विडंबना है कि बेचारे को पेटभर अन्न भी मयस्सरनहीं होता । परिवार का गुजारा हो भी तो कैसे, यह एक समस्या है । कवि ने भारतीय कृषक के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति निम्नांकित पंक्तियों में प्रकट की है और उसे कृषि कार्य में उत्साह दिलाया है :--

सूखी रोटी खायेगा जब कृषक खेत में धर कर हल,
तब दूंगी मैं तृप्ति उसे बनकर लोटे का गंगा जल,
उसके तन का दिव्य स्वेद कण बनकर गिरती जाऊँगी
और खेत में उन्हीं कणों से मैं मोती उपजाऊँगी ।
शस्यश्यामता निरख करेगा कृषक जब अधिक अभिलाषा,
तब मैं उसके हृदय स्रोत में उमडूँगी बनकर आशा ।
अर्द्धनग्न दम्पति के गृह में मैं झोंका बन आऊँगी
लज्जित हों न अतिथि-सम्मुख वे, दीपक तुरंत बुझाऊँगी
ऋण-शोधन के लिए दूध, घी बेच-बेच धन जोड़ेंगे,
बूँद-बूँद बेचेंगे अपने लिए नहीं कुछ छोड़ेंगे ।
शिशु मचलेंगे दूध देख, जननी उसको बहलायेगी,
मैं फाडूँगी हृदय, लाज से आँख नहीं रो पायेगी ,

इतने पर भी धन पतियों की उन पर होगी मार
तब मैं बरसूँगी बन बेबस के आँसू सुकुमार ।"[1]

किसान एक प्रकार से देश की निर्धनता का मूर्तिमान रूप है । दिनकर ने 'हाहाकार' कविता में किसान की इस मूर्ति को उसके पूरे रूप-रंग के साथ साकार किया है :--

मुख में जीभ शक्ति भुज में, जीवन में सुख का नाम नहीं है,
वसन कहाँ? सूखी रोटी भी मिलती दोनों याम नहीं है ।
बैलों के ये बन्धु वर्ष भर क्या जाने कैसे जीते हैं?
जुबाँ बन्द है, बहतीन आँखें, गम खा, शायद आँसू पीते हैं ।
× × ×
कब्र-कब्र में अबुध-बालकों की भूखी हड्डी रोती है,
दूध-दूध ! की कदम-कदम पर सारी रात सदा होती है ।"[2]

उपर की पंक्तियों में 'बैलों के बन्धु' 'गमखा' और 'आँसू पीते' शब्दों में छिपा हुआ व्यंग्य किसान की दर्द भरी जीवन-व्यथा का यथार्थ ज्ञान कराने के साथ ही हृदय को भी विद्ध कर देने वाला है ।

1:-- रेणुका - कविता की पुकार - दिनकर, पृ0 15-16
2:-- चक्रवाल - हाहाकार - दिनकर, पृ0 49-50

परन्तु भावुक दिनकर का कवि-हृदय इतने से सन्तुष्ट नहीं होता। किसान की दीन-हीन दशा पर आँसू बहाने को ही वह अपनी इति कर्तव्यता नहीं समझता वरन् भूख-प्यास से तड़पते-बिल्लाते शिशुओं की आर्त ध्वनियाँ उनके लिए दूध उपलब्ध करने पर कवि को मजबूर करती हैं। कवि दूध लाकर शिशुओं को चुप कराने के लिए आगे बढ़ता है। कवि की सशक्त हुँकार भयवाणी में ओज भरा है और शोषण और अन्याय को मिटा देने की दृढ़ प्रतिज्ञता भी उसमें अन्तर्मूर्त है :--

> दूध-दूध ! फिर सदा कबर की, आज दूध लाना ही होगा,
> जहाँ दूध के घड़े मिले, उस मंजिल पर जाना ही होगा ।
> हटो व्योम के मेघ ! पन्थ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं,
> दूध, दूध ! - ओ वत्स ! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं " ।

इस प्रकार कवि दिनकर ने अत्यन्त उग्र बनकर किसानों-मजदूर एवं शोषित-पीड़ित दलित वर्गों की दुख-दर्द भरी व्यथा को यथार्थ रूप में चित्रित करके उनका समर्थ प्रतिनिधित्व किया है।

सामाजिक विषमता का नग्न चित्रण कवि ने यत्र-तत्र किया है। गरीबी में पिसते लोगों के श्रम की कमाई पूँजीपतियों की तिजोरी में इकट्ठी होती जाती है। गरीबी के कारण जनता को भरपेट भोजन भी नहीं नसीब होता जबकि पूँजीपति अपने पालतू जानवरों को अधिक से अधिक सुख-सुविधा देते हैं।

1:-- चक्रवाल - हाहाकार - दिनकर, पृ० - 40

इसे देखकर कवि आक्रोश कर उठता है :--

वे भी यहीं, दूध से जो अपने श्वानों को नहलाते हैं
वे बच्चे भी यहीं, कब्र में दूध-दूध जो चिल्लाते हैं । [1]

शोषित वर्ग की दयनीय दशा का अत्यन्त कारूण्यपूर्ण वर्णन निम्नांकित पंक्तियों में हुआ है :--

'श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं,
युवती के लज्जा-वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं,
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य लुटाते हैं ।[2]

दलितों की दयनीय दशा से दिनकर का हृदय अत्यन्त उद्विग्न था । उनके प्रति उनके दिल में अपार सहृदयता एवं सहानुभूति थी । दलितों के उन्नयन के लिए वे तड़पते थे । उनकी रश्मिरथी' रचना इसका प्रमाण है जिसमें उन्होंने दलित उपेक्षित कर्ण के चरित्र को ऊपर उठाने की कोशिश की है । इस संदर्भ में 'रश्मिरथी' की निम्नांकित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :--

---

1:-- चक्रवाल - हाहाकार - दिनकर, पृ0 - 23
2:-- हुंकार - विपथगा - दिनकर, पृ0 - 73

"मैं उनका आदर्श नहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे ।
पूछेगा जग किंतु पिता का नाम न बोल सकेंगे ।।
मैं उनका आदर्श किन्तु जो तनिक न घबरायेंगे ।
निज चरित्र-बल से समाज में पद विशिष्ट पायेंगे ।" [1]

× × ×

जग जो भी निर्दलित प्रताड़ित जन हैं ।
जो भी विहीन है, निन्दित है, निर्धन हैं।।
यह कर्ण उन्हीं का सखा बन्धु सहचर है
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है ।" [2]

इन सामाजिक विषमताओं के प्रति संकेत मात्र ही कवि का उद्देश्य नहीं है, वरन् कवि ने उन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है । कवि का स्पष्ट मत है कि समाज में जबतक समन्वय एवं सामंजस्य की भावना नहीं होगी तब तक स्वस्थ समाज की संरचना एवं सुखशान्ति स्थापित नहीं हो सकती । कुरूक्षेत्र मेंकवि ने यही भाव व्यक्त किया है :---

---

1:-- रश्मिरथी - चतुर्थसर्ग - दिनकर, पृ0 - 59
2:-- रश्मिरथी - पंचमसर्ग - दिनकर, पृ0 - 82

'जबतक मनुज-मनुज का यह सुख भाग नहीं सम होगा
शमित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा ।' [1]

यहाँ पर कवि ने एक ऐसे समाज की आवश्यकता पर बल दिया है जो स्वस्थ सुन्दर एवं आदर्शात्मक हो । सबको समान रूप से जीने का और प्रगति करने का अवसर प्राप्त हो । कवि का यही प्रेय है । समत्व पर आधारित सामाजिक संरचना कवि दिनकर के काव्य की प्रमुख विशेषता है ।

साम्प्रदायिक समस्या के प्रति आक्रोश :--

कवि ने भारतवर्ष की साम्प्रदायिक समस्या के प्रति भी आक्रोश व्यक्त किया है । सन् 1938 में मुस्लिम लीग के नेता मो० अली जिन्ना से कांग्रेस के अध्यक्ष ने समझौते के लिए जो बातें की थी उनके असफल हो जाने पर 'तकदीर का बँटवारा' नामक कविता लिखी गयी थी । उस समय संगठित और असंगठित रूप में हिन्दू-मुस्लिम दोनों को एक दूसरे का खून पीने को तैयार देखकर तथा पराधीनता की हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़ी हुई कौम की तकदीर का बँटवारा होते देख कवि का मन क्रोध और लज्जा से भर उठा :--

---

1:-- कुरूक्षेत्र - सप्तम सर्ग - दिनकर, पृ0 - 87 ।

बेबसी में काँप कर रोया हृदय,
शाप-सी आहें गरम आई मुझे,
माफ करना, जन्म लेकर गोद में,
हिन्द की मिट्टी ! शरम आई मुझे । [1]

विदेशी शासक अपनी शासन सत्ता को भारत में बनाये रखने के लिए यहाँ दो प्रमुख जातियों हिन्दू और मुसलमान के बीच 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति का प्रयोग करता आ रहा था । वह मानवता के बीच असभ्यता का दृश्य प्रस्तुत कर रहा था । यह नहीं वह भारत की तकदीर के बँटवारे के लिए भी प्रयत्नशील था । कवि की सजग आँखों विदेशी शासक की इस नीति की ओर से बंद नहीं थी । उसने भारत विभाजन के विरुद्ध आवाज उठाई :--

हाथ की जिसकी कड़ी टूटी नहीं,
पाँव में जिसके अभी जंजीर है,
बाँटने को हाय ! तौली जा रही,
बेहया उस कौम की तकदीर है । [2]

कवि की दृष्टि में हिन्दू मुसलमान दो नहीं, यही कारण है कि उन्होंने दोनों की एकता पर जोर दिया है । वे जातीयता के विषैले कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए बराबर प्रयत्नशील रहे हैं । उनका

1:-- रेणुका, पृ० - 18

2:-- हुंकार - दिनकर, पृ - 70

विश्वास था कि अगर एकता से काम लिया जाय तो तकदीर के बँटवारे का प्रश्न ही नहीं उठता ।

हिन्दू-मुस्लिम एकता की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा है :---

ताव थी किसकी कि बाँधे कौम को
एक होकर हम कहीं मुँह खोलते?
बोलना आता कहीं तकदीर को
हिन्द वाले आसमां पर बोलते
खूँ बहाया जा रहा इन्सान का
सींग वाले जानवर के प्यार में
कौम की तकदीर फोड़ी जा रही
मस्जिदों की ईंट की दीवार में ।[1]

कवि ने साम्प्रदायिकता के रंग में रंगे हुए हर व्यक्ति को चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान हेय दृष्टि से देखा है[2] स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व ही भारत-माता को खण्डित करने के उद्देश्य से नोचने वाले साम्प्रदायिक भेड़ियों की कवि ने घोर भर्त्सना की है :--

"चीथड़ों पर एक की आँखें लगी,
एक कहता है कि मैं लूँगा जबाँ

1:-- हुंकार - दिनकर, पृ० - 71

2:-- वही

एक को जिद है कि पीने दो मुझे
खून जो इसको रंगों में है रवाँ ।"[1]

क्रान्ति की चेतना :--

वर्तमान युग क्रान्ति का युग है । जब आर्थिक राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में असन्तुलन पैदा होता है तब सहज ही क्रान्ति जन्म लेती है । वास्तव में क्रान्ति अन्याय, अत्याचारों की ऐसी स्वाभाविक प्रति-क्रिया है जिसकी ज्वालाएं अन्तरतम से उभरती है । समय और परिस्थिति का हल्का सा झोंका क्रान्ति की चिनगारी को सहज ही ज्वालामुखी बना देती है । क्रान्ति नियति की एक अनिवार्य प्रक्रिया है । प्रकृति जिस तरह विप्लव से नई शक्ति प्राप्त करती है उसी तरह क्रान्ति से समाज भी नवजीवन प्राप्त कर सकता है ।"[2]

संसार के विभिन्न राष्ट्रों में आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन के हेतु अनेक बार क्रांतियां हुई हैं जिनके फलस्वरूप समाज का जो परिवर्तित स्वस्थ रूप बना है उससे भारतीय कवि भी प्रभावित हुए । सन् 1942 से 1946 तक का काल देश में उग्र क्रान्ति का काल रहा है । अंग्रेजी शासन के दमन एवं शोषण के आमूलाग्र उच्छेदन के हेतु समग्र देश में प्रतिशोध

1:-- हुंकार, पृ0- 70

2:-- दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना - सुनीति, पृ0 - 129

एवं प्रतिहिंसा की ध्वनि एक कोने से दूसरे कोने तक गूँज उठी थी। स्वभावतः क्रान्ति के विचारों से कवि हृदय में मंथन होने लगा। यही मंथन दिनकर की क्रान्तिपरक रचनाओं में दिखाई देता है। यदि कहा जाय कि दिनकर की कविताओं में क्रान्ति का स्वर ही प्रधान है तो अत्युक्ति न होगी। दिनकर ने स्वयं चक्रवाल की भूमिका में लिखा है ---

"मैं समय का पुत्र हूँ और मेरा सबसे बड़ा कार्य यह है कि मैं अपने युग के क्रोध और आक्रोश की अधीरता औरबेचैनी को सबलता के साथ छन्दों बाँधकर सबके सामने उपस्थित कर दूँ। मेरे पीछे और मेरे चारों ओर भारतीय मानवता खड़ी थी जो पराधीनता के पाश से छूटने को बेचैन थी।" [1]

अपने समय की धड़कन सुनने को जब भी मैं देश के हृदय से कान लगाता, मेरे कान में किसी बम के धड़ाके की आवाज आती अथवा मुझे दर्द भरी ऐंठन की वह आवाज सुनाई देती जो गाँधी जी के हृदय में चल रही थी, जिनसे बढ़कर मैं किसी को श्रद्धेय नहीं समझता था। मेरे जानते उस समय सारे देश में एक स्थिति थी जो सार्वजनिक संघर्ष की स्थिति थी। सारे देश का एक कर्तव्य था जो स्वातन्त्र्य संग्राम को सबल बनाने का कर्तव्य था और सारे देश की एक मनोदशा थी जो क्रोध से क्षुब्ध, आशा से चंचल और मजबूरियों से बेचैन थी। [2]

1:-- चक्रवाल - भूमिका - दिनकर, पृ0 - 31

2:-- चक्रवाल - भूमिका - दिनकर, पृ0 - 33

उपर्युक्त वक्तव्य के परिप्रेक्ष्य में यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि दिनकर मूलतः क्रान्ति के गायक हैं। वे काव्य सृजन के आरम्भिक काल से ही क्रान्ति के उद्घोषक रहे हैं। दिनकर के हृदय में आविर्भूत क्रांति का विस्फोट उनकी राष्ट्रीय कविताओं में ओज और उत्तेजना के साथ अभिव्यक्त हो गया है। इनकी हुंकारमयी वाणी ध्येय पथ पर अग्रसर होने की प्रबल प्रेरणा विद्यमान है। बानगी के रूप में दिगवरी शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियां कितनी स्फूर्तिदायक एवं उत्साह-वर्धिनी हैं जिनमें दुख-दारिद्र्य में तड़पने बिलखने वाली भगवान की संतान की पीड़ा से क्षुब्ध होकर उसकी सृष्टि के विध्वंस के लिए सन्नद्ध कवि के दर्शन हमें होते हैं :--

"जरा तू बोल तो सारी धरा हम फूँक देंगे।
पड़ा जो पंथ में गिरि, कर उसे दो टूक देंगे।
कहीं कुछ पूछने बूढ़ा विधाता आज आया।
कहेंगे हाँ तुम्हारी सृष्टि को हमने मिटाया
जिला कर पाप को टूटी धरा यदि जोड़ देंगे,
बनेगा जिस तरह उस सृष्टि को हम फोड़ देंगे।" 1

उपर्युक्त पंक्तियों में दिनकर ने एक उग्र प्रलयकारी क्रांति पुरूष के रूप में अपना परिचय दिया है। कवि दिनकर ने अपने युगधर्म की ओर

1:-- चक्रवाल - दिगम्बरी - दिनकर, पृ0 - 53

संकेत करते हुए कहा है :--

सुनूँ क्या सिन्धु मैं गर्जन तुम्हारा?
स्वयं युग धर्म को हुंकार हूँ मैं,
कठिन निर्घोष हूँ भीषण अशनि का,
प्रलय-गाण्डीव को टंकार हूँ मैं ।"[1]

'रेणुका' के 'मंगल आह्वान' प्रारम्भिक काव्य में भी वह शृंगी फूँक कर सोये प्राणों को जगाना चाहता है :--

"दो आदेश फूँक दूँ शृंगी, उठे प्रभाती राग महान ।
तीनों काल ध्वनित हों स्वर में, जागे सुप्त भवन के प्राण ।।
गत विभूति भावि की आशा, ले युग धर्म पुकार उठे" ।[2]

कवि ऐसे स्वरों को गाना चाहता है कि, जिससे सारी सृष्टि सिहर उठे । कवि देश में व्याप्त अत्याचार आडंबर और अहंकार को दूर करने के लिए शंकर के तांडव और तद्जन्य ध्वंस की कामना करता है :--

सुन शृंगी निर्घोष पुरातन, उठे सृष्टि-हत् मैनव स्पदन
विस्फारित लख काल नेत्र फिर, कांपे त्रस्त अतनु मन ही मन
स्वर-स्वर भर संसार, ध्वनित हो नगपति का कैलाश शिखर
नाचो हे नाचो नटवर ।।[3]

1:-- हुंकार - परिचय - दिनकर, पृ० - 86
2:-- रेणुका - दिनकर, पृ० - 7
3:-- वही, पृ०

कस्मै देवाय के द्वारा कवि उस ज्वाला को सुलगाना चाहता है जो शोषण एवं अत्याचार को भस्मसात् कर दें :--

> क्रांति-धात्रि कविते ! जाग उठ आडम्बर में आग लगा दे ।
> पतन पाप पाखंड जले, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे ।" [1]

दलित वर्ग के साथ किये जाने वाले अन्याय एवं अत्याचार से दिनकर का हृदय आन्दोलित हो उठता है और वे अन्याय एवं अत्याचार के प्रतिकार के लिए दलितों के दिल की सुप्त चिनगारी को धधकार कर क्रान्ति की ज्वालाओं को सुलगाना चाहते हैं :--

> उठ भूषण की भाव तरंगिणी
> दलितों के दिल की चिनगारी
> युग-मर्दित यौवन की ज्वाला
> जाग-जाग री क्रांति कुमारी
> लाखों क्रौंच कराह रहे हैं,
> जाग आदि कवि की कल्याणी
> फूट-फूट तू कवि कंठों से
> बन व्यापक निज युग की वाणी ।"[2]

1:-- रेणुका - तांडव - पृ0 9

2:-- रेणुका - कस्मैं देवाय - दिनकर, पृ0 - 33

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए देश में क्रांतिकुमारी दल जिस प्रकार की कार्यवाही में संलग्न था, कवि उसका समर्थन करता है। उसे हिंसात्मक क्रांति में श्रद्धा है। उसे तो अर्जुन एवं भीम चाहिए :—

"रे, रोक युधिष्ठिर को न यहा,
जाने दो उनको स्वर्ग धीर।
पर फिरा हमें गाण्डीव गदा
लौटा दे अर्जुन भीम वीर ।।[1]

कवि पुनः - पुनः हिमालय से हुंकार भरकर धरा हिला देने की प्रार्थना करता है। आज तप का नहीं तांडव का काल है।

'रेणुका' से 'हुंकार' तक आते-आते क्रांति का यह स्वर स्थिरता और पूर्णता प्राप्त करता है। इस संबंध में श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का कथन द्रष्टव्य है :—

"हमारे क्रांति-युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में, उस समय दिनकर कर रहा है। क्रांतिवादी को जिन-जिन हृदय-मंथनों से होकर गुजरना होता है, दिनकर की कविता उनकी सच्ची तस्वीर है।"[2]

1:— रेणुका - हिमालय - दिनकर, पृ0 - 7

2:— हुंकार की भूमिका - {क्रांति का कवि} रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ0 - 2

हुंकार में कवि पुनः अपने विकल गीतों को स्वतन्त्रता यज्ञ में आहुति देने के लिए संयोजित करता है --

'रण की घड़ी जलन की बेला, तो मैं भी कुछ गाऊँगा ।
सुलग रही यदि शिखा यज्ञ की, अपना हवन चढ़ाऊँगा ।
× × ×
नये प्रात के अरूण ! तिमिर-उर में मरीचि संधान करो ।
युग के मूक शैल जागो हुंकारो, कुछ गान करो ।'[1]

क्रान्ति की उद्भावना वास्तव में अन्याय, अत्याचार, दमन, शोषण आदि दुर्व्यवहारों के विरूद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप होती है । जनता के संताप, उसकी यातनाएं कुण्ठाएं और बेबसी अति उग्र रूप धारण कर लेती है तब उसकी परिणति क्रांति के विस्फोट में हो जाती है ।

क्रान्ति की सशक्त अभिव्यंजना में दिनकर की 'आलोकधन्वा' 'ताण्डव' 'दिगम्बरी', 'विपथगा' आदि रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है । इन रचनाओं में दिनकर एक उग्र क्रान्तिकारी के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं ।

ज्योतिर्धर कवि मैं ज्वलित सौर मंडल का ।
मेरा शिखण्ड अरूणाभ किरीट अनल का ।।

1:-- हुंकार आलोकधन्वा, दिनकर, पृ० - 14

रथ में प्रकाश के अश्व जुते हैं मेरे ।
किरणों में उज्ज्वल गीत गुंथे हैं मेरे ।। [1]

क्रांति का कवि अपने को विभा पुत्र मानकर कराल हुंकार भरने वाला यौवन में भीषण ज्वार उत्पन्न करने वाला अंकित किया है । वह पंखुरियों के कोमल-स्वरों के स्थान पर शैलों को हुंकार सुनाना चाहता है ।

क्रांति का आविर्भाव उस समय होता है जब प्रजा की यातनाएं कुण्ठाएं और विवशी उग्र रूप धारण कर लेती है । प्रतिकार की भावना जब कुहासे को तोड़ कर बाहर आना चाहती है तब क्रांति कुमारी का रूप निखरता है । 'दिगम्बरी' और 'विपथगा' रचनाओं द्वारा कवि ऐसी क्रांति की उद्भावना प्रस्तुत करता है ।

नये युग की भवानी आ गयी बेला प्रलय की ।
दिगम्बरी ! बोल, अम्बर में किरण करतार बोला ।
x x x
नवागम कोट से जागी बुझी ठंडी चिता भी ।
नई श्रृंगी उठाकर वृद्ध भारत वर्ष बोला ।
दरारें हो गयी प्राचीर में बन्दी भवन के,
हिमालय की दरी का सिंह भीमाकार बोला । [2]

1:-- हुंकार (आलोक धन्वा) दिनकर, पृ0 - 14
2:-- हुंकार दिगम्बरी- दिनकर, पृ0 - 25

"दिगम्बरी " में कवि का ओज-स्फूर्त व्यक्तित्व,प्रलयकारी रूप और प्रभंजक क्रोध अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया है ।"[1] कवि ने 'विपथगा' शीर्षक कविता में क्रान्ति के आविर्भाव की स्थिति का विस्तृत परिचय देते हुए परोक्ष रूप से आततायी अत्याचारी दुर्जनों को सचेत किया है । क्रान्तिकुमारी ने अपना परिचय आप दिया है --

मेरी पायल की झनकार रही तलवारों की झनकारों में,
अपनी आगमनी बजा रही मैं आप क्रुद्ध हुंकारों में,
बन-काल हुताशन खेल रही, पगलों में फूट पहाड़ों में,
अंगड़ाई में भूचाल, साँस में लंका के उनचास पवन

× × ×

पायल की पहली झमक, सृष्टि में कोलाहल छा जाता है,
पड़ते जिस ओर चरण मेरे, भूगोल उधर दब जाता है,
लहराती लपट दिशाओं में खलबल खगोल अकुलाता है,
पर कटे विहग सा निरवलम्ब गिर स्वर्ग-नरक जल जाता है,
गिरते दहाड़ कर शैल-श्रृंग मैं जिधर फेरती हूँ चितवन ।

× × ×

रस्सों से कसे जवान पाप-प्रतिकार न जब कर पाते हैं,
बहनों की लुटती लाज देखकर, काँप-काँप रह जाते हैं,

1:-- दिनकर सृष्टि और दृष्टि {युगधर्म की पुकार रेणुका एवं हुंकार}
हर प्रसाद शास्त्री पृ0 - 157

शस्त्रों के भय से जब निरस्त्र आँसू भी नहीं बहाते हैं,
जिस दिन रह जात क्रोध मौन, मेरा वह भीषण जन्म लगे ।[1]

पूर्व व्यवस्था के ध्वंस पर ही नव निर्माण हो सकता है, यह क्रान्ति का मूल भाव है । कवि दिनकर भी देशव्यापी अत्याचार, आडम्बर और अंहकार इत्यादि वर्तमान विषमताओं का समूल उच्छेदन करने के लिए ध्वंस की कामना करते हैं शंकर से तांडव नृत्य का आवाहन करते हैं :---

घहरे प्रलय-पयोद गगन में
अन्ध-धूम हो व्याप्त भुवन में
बरसे आग, बहे झंझा निल
मचे त्राहि जग के आँगन में
फटे अतल-पाताल, धँसे जग
नाचो हे नाचो नटवर

नचे तीव्र गति भूमि कील पर
अट्टहास कर उठे धरा धर
उपटे अनल फटे ज्वाला मुख
गरजे उथल-पुथल कर सागर
गिरे दुर्ग जड़ता का ऐसा
प्रलय बुला दो प्रलंयकर• [2]

1:-- चक्रवाल - विपथगा - दिनकर, पृ0 71-72
2:-- रेणुका - तांडव -दिनकर, पृ0 - 2

कवि 'रेणुका' से भी अधिक तीव्र स्वरों में 'हुंकार' में क्रान्ति की वाणी को मुखरित करता है। प्रो० कामेश्वर शर्मा के शब्दों --- "रेणुका में अंगारों के ऊपर कोयले के नये टुकड़े पड़े थे, हुँकार में वे सभी आग हो गये हैं।" [1]

फेंकता हूँ लो तोड़ मरोड़
अरी निष्ठुरे! बीन के तार
उठा चाँदी का उज्ज्वल शंख
फूँकता हूँ भैरव - हुंकार।" [2]

और भी रण की घड़ी जलन की बेला -

तो मैं भी गाऊँगा
सुलग रही यदि शिखा यज्ञ की
अपना हवन चढ़ाऊँगा।" [3]

क्रान्तिकारी दिनकर 'कुरुक्षेत्र' में अहिंसा वादियों को आततायियों से लोहा लेने के लिए ललकारते हुए कहते हैं :--

"छीनता हो स्वत्व कोई और तू
त्याग तप से काम लें यह पाप है।

1:-- दिग्भ्रमित राष्ट्र कवि - प्रो० कामेश्वर शर्मा, पृ० - 37
2:-- हुंकार - असमय आह्वान, दिनकर, पृ० - 10
3:-- हुंकार - आमुख - दिनकर, पृ० - 2

पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है ।"[1]

हिंसात्मक क्रान्ति के समर्थक दिनकर जी स्वतन्त्रता को किसी दीन-हीन याचक के समान भिक्षा-रूप में नहीं वरन् लोकमान्य तिलक के 'स्वतन्त्रता जन्म सिद्ध अधिकार है । इस तथ्य को स्वीकारते हुए उसे अपने पौरूष तथा क्रान्ति के मार्ग से प्राप्त करना चाहते थे । देश में व्याप्त दमन और शोषण के उन्मूलन हेतु वे क्रान्ति का उद्घोष करना चाहते थे । हुंकार की 'चाह एक' शीर्षक कविता में उसका सूक्ष्म संकेत प्राप्त होता है :--

"अन्तर में लेकर आग और आँखों में सिन्धु अथाह एक?
बल उठे किसी दिशि वहि-शशि लेकर मेरी चाह एक"[2]

अँग्रेजों के अत्याचारों से जल जनता संत्रस्त हो रही थी और उसकी आवाज को दबाया जा रहा था तब दिनकर के भीतर का क्रान्तिकारी कवि एक बारगी सचेत हो उठा और उसने अँग्रेजी शासन को क्रान्ति के विस्फोट की चेतावनी देते हुए कहा ---

"मिली न जिनको राह वेग वे विद्युत बन आते हैं ।
बहे नहीं जो अश्रु, वही अंगारे बन जाते हैं ।"[3]

1:-- कुरूक्षेत्र - द्वितीय सर्ग - दिनकर, पृ0 - 22
2:-- हुंकार - चाह एक - दिनकर, पृ0 - 17
3:-- रेणुका - पटनाजेल की दीवार से, दिनकर, पृ0 - 41

स्वतन्त्रता प्राप्ति के अभियान में भारतीयों को विदेशी शासकों ने अनेक क्रूर एवं घोर अत्याचारों का सामना करना पड़ रहा था। अस्थिर एवं निराशाजनक मनोदशा में कहीं वे अपने मार्ग से विचलित न हो जाये बल्कि पूरी शक्ति के साथ अपने ध्येय-पथ पर बराबर आगे बढ़ते रहें इस हेतु कवि 'आग की भीख' नामक कविता में भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें अपने अभियान में सफल होने के लिए आवश्यक शक्ति उनमें भर दें :--

"मन की बंधी उमंगे असहाय जल रही हैं,
अरमान-आरजू की लाशें निकल रही हैं।
भीगी खुली पलों में रातें गुजारते हैं,
सोती वसुन्धरा जब तुझको पुकारते हैं।
इनके लिए कहीं से निर्भीक तेजला दें,
पिघले हुए अनल का इनको अमृत पिला दे,
उन्माद बेकली का उत्थान मांगता है।
विस्फोट मांगता हूँ, तूफान मांगता हूँ।"[1]

अत्याचार सहना दुर्बलता है। अत्याचार का प्रतिशोध हर हालत में लिया जाना चाहिए। अंग्रेजों के अन्यायों को दीन बनकर चुपचाप सहना पाप है यही दिनकर जी की स्पष्ट धारणा थी।

1:-- सामधेनी - आग की भीख 5 दिनकर, पृ० - 51

दिनकर की क्रान्ति की अभिव्यक्ति माँग राजनीतिक असन्तोष के पक्ष में ही नहीं, आर्थिक शोषण के संदर्भ में भी पर्याप्त मात्रा में हुई है । आर्थिक और सामाजिक विषमताओं से क्रांति के उद्घोषक दिनकर क्षुब्ध हो उठते हैं और उनकी सहायता करने के लिए दौड़ पड़ते हैं । उसे तो उनकी ही प्रशस्ति भाती है जो देश के लिए सिर हथेली पर लेकर चलते हैं । 'विपथगा' काव्य में कवि ने क्रांति का ताण्डवी और भैरवी रूप प्रस्तुत किया है । जिसकी चितवन से शैल शिखर तक टूटने लगते हैं । असमानता क्रांति की जननी है ।

> 'श्वानों को मिलता दूध वस्त्र भूखे बालक अकुलाते हैं
> माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं
> युवती के लज्जा वसन बेच जब व्याज चुकाये जाते हैं
> मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य लुटाते हैं
> पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमन्त्रण ।' [1]

क्रांति मृत्युंजय कुमारी पर ही होकर आगे बढ़ती है तब पार्लियामेन्ट की वे सरकारें जो कानून के नाम पर गुलामी को कायम रखना चाहती हैं और जो नीरों और जोर जैसे शासकों द्वारा शासित हैं उनके प्राण सूख जाते हैं । यह विपथ-गामिनी न जाने कब किधर से आ जाये और अम्बर में आग लगा दे ।

1:— हुंकार - विपथगा - दिनकर, पृ० - 72

'सामधेनी' संग्रह के अन्तर्गत कवि की ऐसी ही रचनाएं हैं जो क्रांति के रूप को मुखरित करती है। सन् 1946-1947 तक का काल घोर संघर्ष का काल रहा है। 'जवानी' और साथी काव्यों में कवि ने ऐसी ही भावनाओं का चित्रण किया है जिनमें वीरों ने मरना जाना है किन्तु हाथ का झण्डा नहीं झुकने दिया

समसामयिक, सामाजिक और आर्थिक वैषम्य कवि की क्रांति को सदैव जगाता रहा। कवि इस शांति को कभी पसन्द नहीं करता जिसमें दबकर रह जाय। वह तो युद्ध द्वारा उसका प्रतिकार चाहता है। वह नौनिहालों के सूखे होंठ नहीं देख सकता है :--

'दूध दूध ! ओ वत्स ! मंदिरों में बहरे पाषाण यहाँ है।
दूध दूध ! तारे बोलो इन बच्चों के भगवान कहाँ हैं।
वे भी यही दूध से जो अपने श्वानों को नहलाते हैं
ये बच्चे भी यहीं, कब्र में दूध-दूध जो चिल्लाते हैं।

× × ×

हटो व्योम के मेघ पंथ से स्वर्ग लूटने हम आते हैं
दूध दूध ओ वत्स तुम्हारा दूध खोजने हम आते हैं।'[1]

1:-- हुंकार - हाहाकार - दिनकर, पृ0 - 22-23

आर्थिक विषमता का उतना करूण और क्रांतिकारी चित्र अन्यत्र दुर्लभ है। कुरूक्षेत्र के अन्तर्गत कवि युद्ध को इसलिए धर्म मानता है कि वह आर्थिक विषमता व संदर्भ में ही उद्भूत होता है।

क्रांति के संदर्भ में कवि ने लाल क्रान्ति को अपने काव्यों में स्थान दिया है। परन्तु वह हमेशा भारतीय क्रान्ति का पक्षपाती रहा है।

भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति की ध्येय पूर्ति के साथ ही कवि दिनकर की क्रांति भावना का स्वर कुछ मंद सा पड़ गया था। परन्तु सन् 1962 ई0 में साम्राज्यवादी चीन ने भारत पर अचानक आक्रमण कर दिया और शांति का पुजारी भारत चीनियों से आहत अपमानित हुआ। भारतीयों की इस पराजय को देखकर कवि में राष्ट्रीय भावनाओं का सुप्त ज्वालामुखी अचानक विस्फोट कर उठा। कवि पुनः परशुराम जैसे रौद्र एवं फौलादी पुरूष की आवश्यकता पर बल देते हुए परशुराम की प्रतीक्षा में आक्रोश कर उठता है :---

"जातीय गर्व पर क्रूर प्रहार हुआ है,
माँ के किरीट पर ही यह वार हुआ है।
अब जो सिर पर आ पड़े नहीं डरना है,
जनमें हैं तो दो बार नहीं मरना है।
कुत्सित कलंक का बोध नहीं छोड़ेंगे,

हम बिना लिए प्रतिशोध नहीं छोड़ेंगे,

जब तक जीवित हैं क्रोध नहीं छोड़ेंगे ।" [1]

चीनी आक्रमण के समय माँ भारती की रक्षा के लिए कवि ने देश के कण-कण को जागृत कर बलिदान का आवाहन किया है ---

"गरजो हिमाद्रि के शिखर, तुंग पाटों पर,

गुलमर्ग, विंध्य पश्चिमी, पूर्व घाटों पर,

भारत समुद्र की लहर, ज्वार भाटों पर,

गरजो-गरजो मीनार और लाटों पर

खंडहरों, भग्न कोटों में, प्राचीनों में

जान्हवी, नर्मदा, यमुना के तीरों में,

कृष्णा कछार में कावेरी-कूलों में,

चित्तौड़, सिंहगढ़ के समीप धूलों में,

सोये हैं जो रणबली, उन्हें टेरो रे ।

नूतन पर अपनी शिखा प्रत्न फेरो रे ।

झकझोरो, झकझोरो, महान सुप्तों को,

टेरो, टेरो, चाणक्य चन्द्र गुप्तों को,

विक्रमी तेज, असि उद्दाम प्रभा को,

---

[1] :-- परशुराम की प्रतीक्षा - दिनकर, पृ0 - 8

राणा प्रताप गोविन्द, शिवा, सरजा को ।" [1]

इस प्रकार समय की माँग के अनुसार कवि दिनकर में क्रांतिपरक विचार धारा निरन्तर प्रवहमान रही है । उन्होंने अपने सशक्त क्रान्तिवादी स्वरों से अपने युग का सही प्रतिनिधित्व किया है । उनकी क्रान्ति समस्त प्रकार की विषमताओं को देखकर फूट पड़ी है । वस्तुतः दिनकरजी राष्ट्रीय काव्य धारा के सन्दर्भ में उतने ही पूर्ण है जितने राजनीति में तिलक ।

7:- <u>बलिदान की भावना</u> :--

बलिदान की भावना आधुनिक युग के कवियों की राष्ट्रीयता की एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति है । देशभर में स्वतन्त्रता-आन्दोलन जैसे-जैसे बल पकड़ता गया, वैसे ही वैसे अंग्रेजों का दमनचक्र भी जोर-शोर से चलने लगा और शासन का दण्ड भी प्रतिदिन कठोर बनता गया । आन्दोलन कारियों को उनके कार्यों से परावृत्त करने के लिए सरकार की ओर से यम यातनाएं दी जाने लगीं, किन्तु सत्याग्रही देशभक्त अपने प्रण से रंचमात्र भी न हटे बल्कि स्वातन्त्र्य-यज्ञ में आहुति चढ़ाने के लिए एक से बढ़कर एक वीर देश सेवक सामने आने लगे । आत्मबलिदान की यह बेजोड़ उमंग तत्कालीन राष्ट्रीय कवियों की

1:-- परशुराम की प्रतीक्षा - खंड - 3 - दिनकर, पृ0 - 8-9

कविताओं में प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक था । इस समय के लगभग सभी कवियों की राष्ट्रीय रचनाओं में हमें बलिदान की भावना के दर्शन होते हैं ।

दिनकर की काव्यकृतियों में बलिदान की चेतना अत्यधिक तीव्रता एवं प्रखरता के साथ अवतीर्ण हुई है । भारत माँ की प्रतिष्ठा के रक्षार्थ आत्मार्पण के लिए सन्नद्ध अनेक वीरों के बलिदान को दिनकर ने अपनी कविताओं में अमर बना दिया है । इन कविताओं के माध्यम से कष्ट-सहिष्णु बनकर मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए त्याग-पूर्वक देश की बलिवेदी पर भी मिटने का महान सन्देश कवि ने देशवासियों को दिया है ।

"पीले विष के घूँट बहक, तब मजा सुरा पीने का है,
तन पर बिजली का वार सहे, यह गर्व नये सीने का है ।
सिर की कीमत का भान हुआ, तब त्याग कहाँ बलिदान कहाँ,
गरदन इज्जत पर दिये फिरो, तब मजा यहाँ जीने का है । [1]

दिनकर ने अपनी कतिपय कविताओं में शहीदों के चरणों में अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाये है । उनके हृदय में शहीदों के बलिदान के प्रति सदैव आदर की भावना विद्यमान है । कवि ने निम्नांकित शब्दों में शहीदों के जयगान के लिये अपनी लेखनी से अनुरोध किया है :--

---

1:-- चक्रवाल - द्वन्द्वगीत - दिनकर, पृ० - 150

"कलम आज उसकी जय बोल ।
जला अस्थियां बारी-बारी"
छिटकारी जिनने चिनगारी,
जो चढ़ गये पुण्य वेदी पर,
लिए बिना गरदन का मोल ।
कल आज उनकी जय बोल ।
× × ×
पीकर जिनकी लाल-शिखायें
उगल रही लू-लपट दिशाएं,

जिनके सिंहनाद से सहमी धरती रही अभी तक डोल,
कलम आज उनकी जय बोल।" [1]

शहीदों का बलिदान कवि दिनकर के लिए राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से प्रेरणा प्रद रहा है । देश के स्वातन्त्र्य यज्ञ में एक नहीं दो नहीं, अगणित ज्ञात-अज्ञात वीरों ने अपनी प्राणाहुति दे दी थी । इनसे स्फूर्ति लेकर देश पर सब कुछ न्यौछावर करने के सन्देश दिनकर ने देशवासियों को अपनी अनेक कविताओं के माध्यम से दिया ।

1:-- चक्रवाल - शहीद स्तवन - दिनकर, पृ० - 57

यतीन्द्र नाथ दास ने बोरस्टल जेल में 61 दिनों तक अनशन करके वीरगति पायी थी । कवि ने इस महान बलिदान का स्मरण दिलाते हुए देशवासियों को बलिदान के लिए इन शब्दों में ललकारा है :---

रणभेरी बज चुकी—कौन बलि के हित ललचाते हैं?
बाट जोहती माँ देखें, कितने 'यतीन' आते हैं ।"[1]

इसी प्रकार वीर शिरोमणि अशफाक उल्लाह खाँ को 19 दिसम्बर 1929 को फैजाबाद जेल में फाँसी दी गयी थी । किन्तु उनकी शहादत से देशवासी महीनों विचलित और गमगीन हो रहे थे । इस प्रसंग की स्मृति में कवि ने शहीद अशफाक के प्रति शीर्षक कविता में शहीद अशफाक का गौरव गान किया है :---

माँ की मीठी गोद छोड़कर प्रलय बेलि पर खिलना ।
कितना उन्माद आह ! रहा होगा फाँसी से मिलना ।
सुरभि फैल पायी न, मरोड़ी गयी कली जीवन की ।
कैसी मुरझसकी होगी वे सरस उमंगे मन की?
ध्वनित हुई होंगी जीवन-गायन की अन्तिम कड़ियाँ
कितनी सुन्दर जान पड़ी होंगी वे अन्तिम घड़ियाँ ।"[2]

1:-- चक्रवाल - शहीद स्तवन - दिनकर, पृ0 - 57

2:-- प्रणभंग तथा अन्य कविताएं - शहीद अशफाक के प्रति-दिनकर, पृ0 - 53

भगत सिंह जब फाँसी पर चढ़ चुके थे तब उनके प्रति अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए कवि ने कहा था :—

बीर बन्धु ! जा, लेकिन तेरा जाना हमको याद रहे ।
तू न रहे, तेरी यादों से जमीं आबाद रहे ।
समर क्षेत्र में ज्यों तू ने रखी माँ के मुख की लाली ।
त्यों कब्रों में भी स्वदेश-गौरव की करना रखवाली ।

× × ×

आज नहीं तो कल इसी खून से सुकवि लिखेगा समुदं-सुहास
पाप कथा शासक की, अपना पावन स्वतन्त्रता इतिहास ।" [1]

इतिहास में तो भगतसिंह जैसे कुछ ही चुने गिने शहीदों के नाम अंकित होंगे, किन्तु स्वातन्त्र्य यज्ञ में न जाने कितने अनामिक बलि-वीरों ने अपनी आहुति दी होगी । इन के मूक बलिदान' कविता में इन अनामिकों को याद करते हुए कवि कहता है :—

"कितने वीर चढ़ा चुपके से प्राणों के उपहार चले ।
सूने में सौरभ बिखेरकर कितने कुसुम कुमार चले ।
एक भगत के विरह दाह में रोते हैं, हम हत भागे ।
कौन कहे चुपके से कितने 'भगत' छोड संसार चले ।" [2]

1:— प्रणभंग तथा अन्य कविताएं – शहीदों के नाम पर – दिनकर, पृ0 – 6(

2:— प्रणभंग तथा अन्य कविताएं – मूक बलिदान – दिनकर, पृ0 57

नेताजी की 'आजाद हिन्द फौज' देश में राष्ट्रीय जागरण की स्फूर्ति पैदा करने वाली सिद्ध हुयी । आजाद हिन्द के शहीदों की याद में दिनकर की लिखी हुई 'शहीद' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ ओज से परिपूर्ण हैं । शहीद स्वयं अपने बारे में निवेदन कर रहे हैं ।—

"मिट्टी की गोदी तज हम चलने को तैयार हैं
माँ का आशीर्वाद, प्रिया का प्रेम लिये जाते हैं ।
केवल है संदेश एक जो तुम्हें दिये जाते हैं ।
यह झण्डा जिसके मुरदे की मुट्ठी जकड़ रही है,
छिन न जाय, इस भय से अब कसकर पकड़ रही है,
थामो इसे शपथ लो, बलि का कोई क्रम न रुकेगा ।
चाहे जो हो जाय किन्तु यह झण्डा नहीं झुकेगा ।" [1]

इस प्रकार एक नहीं भारत भूमि के असंख्य वीर :—

शलभ-सरीखे होमकुंड में चढ़ाते शीश
बैरियों में भीरुता के भाव उपजाते हैं
सुमन खिलाने को स्वतन्त्रता के शोणित से
वीरवर विप्लव की बेलि पनपाते हैं ।" [2]

1:— प्रणभंग तथा अन्य कविताएं —'शहीद' — दिनकर, पृ0 — 109

2:— प्रणभंग तथा अन्य कविताएं — वीर — दिनकर, पृ0 — 80

कवि ने अपनी 'अनल किरीट' शीर्षक कविता में, मातृभूमि पर आशिक होकर उस पर अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए प्रयाण करने वाले 'जवानों' को प्रोत्साहित किया है :---

"लेना अनल किरीट भाल पर,

ओ आशिक होने वाले ।

काल कूट पहले पी लेना

सुधा बीज बोने वाले ।

जिन्हें देखकर डोल गयी,

हिम्मत दिलेर मरदानों की,

उन मौजों पर चली जा रही,

किश्ती कुछ दीवानों की ।

अभय बैठ ज्वाला मुखियों पर

अपना मंत्र जगाते हैं ।

ये हैं वे, जिनके जादू,

पानी में आग लगाते हैं ।

x x x

कल होगा इन्साफ, यहाँ

किसने क्या किस्मत पाई है?

अभी नींद से जाग रहा युग,

यह पहली अंगड़ाई है ।

मंजिल दूर नहीं अपनी,

दुख को बोझा ढोने वाले ।

लेना अनल-किरीट भाल पर

ओ आशिक होने वाले ।"[1]

कवि ने देश पर आत्मार्पण करने वाले शहीदों के स्तवन तक ही अपने को सीमित नहीं रखा, अपितु मातृभूमि पर बलि चढ़ाने के लिए उन्होंने नवजवानों को आवाहित भी किया है :---

जय हो, नव होता गण । आओ,

संगनई आहुतियां लाओ, जो कुछ बने फेंकते जाओ,

यज्ञ जानता नहीं विराम, आने वाले तुम्हें प्रणाम ।

टूटी नहीं शिला की कारा, लौट गयी टकराकर धारा,

सौ धिक्कार तुम्हें यौवन के, बेगवन्त निर्झर उद्दाम ।

आने वालों तुम्हें प्रणाम ।

फिर डंके पर चोट पड़ी है, मौत चुनौती लिए खड़ी है ।

लिखने चली आग, अंबर पर, कौन लिखायेगा निजनाम ।

आने वालों तुम्हें प्रणाम ।"[2]

1:-- चक्रवाल - दिनकर - अनल किरीट, पृ0 54-55

2:-- चक्रवाल - दिनकर - शहीद स्तवन, पृ0 51

पुत्र कलत्र के मोह को त्याग कर मातृभूमि पर सर्वस्व न्यौछावर करके शहीद हुए एक आदर्श सिपाही की मृत आत्मा को मुखरित करके कवि ने उसका मनोगत कितने विनीत भाव से अभिव्यक्त किया है :---

वनिता की ममता न हुई,
सुत का न कुछ मुझे छोह हुआ,
ख्याति, सुयश, सम्मान, विभव का
त्यों ही कभी न मोह हुआ।
जीवन की क्या चहल-पहल है
इसे न मैंने पहचाना।
सेनापति के एक इशारे पर
मिटना केवल जाना।
इतिहास में अमर रहूँ
है ऐसी मृत्यु नहीं मेरी
विश्व छोड़ चला जब
भुलाने लगती फिर किसकी देरी?
जग भूले, पर मुझे एक बस,
सेना-धर्म निभाना है।
जिसकी है यह देह उसी में
इसे मिला मिट जाना है।" [1]

1:-- चक्रवाल - दिनकर - सिपाही, पृ० - 78

कवि दिनकर ने शहीदों की बलिदान भूमि को भी गौरव के साथ स्मरण किया है :—

> कल्पने ! धीरे-धीरे बोल ।
> पग-पग पर सैनिक सोता है,
> पग-पग सोते वीर,
> यह गहर प्राचीन अस्तमित
> गौरव का खंडहर है ।"[1]

इस प्रकार जान हथेली पर लेकर देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वाले भारत जननी के वीर पुत्रों की स्मृतियों को अपनी कविताओं में अंकित करके दिनकर ने नौजवानों को स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर आत्माहुति देने के लिए उत्तेजित किया है :—

7:— युद्ध समस्या :—

दिनकर की कविता में वर्णित युद्ध समस्या के विषय में विवेचन करने से पहले युद्ध के विषय में उनका दृष्टिकोण जान लेना उचित जान पड़ता है । गोपालकृष्ण कौल के साथ हुई भेंटवार्ता में कवि ने यह निवेदन किया था —"युद्ध की समस्या ऐसी नहीं कि हमने और आपने शांति की कविताएं लिखीं और युद्ध बन्द हो गया ।......युद्ध की

1:— इतिहास के आँसू – दिनकर – मगध महिमा, पृ0 – 13

मनुष्य के भीतर एक उदात्त पुण्यमय ओजस्वी विचार के रूप में प्रतिष्ठित करने का काम कवियों ने किया था।"[1] इसी विषय पर कवि ने एक और स्थान पर लिखा है :--

"आदमी युद्ध का पीछा नहीं करता, युद्ध ही मनुष्य का पीछा करता है। और जब हमें अपने दाँतों से पकड़ लेता है, हम अपनी जान बचाने को संघर्ष करते हैं। आत्मरक्षा परक युद्ध को परंपरा धर्म युद्ध मानती थी।"[2]

दिनकर का युद्ध-विषयक उपर्युक्त दृष्टिकोण उनकी काव्यकृतियों में सही-सही रूप में अभिव्यक्त हुआ है। "दिनकर हिन्दी के पहले कवि हैं जिन्होंने युद्ध को अपनी कविता का प्रतिपाद्य बनाया, उसके मूल कारणों तथा पक्ष-विपक्ष का विश्लेषण करके उससे उत्पन्न समस्याओं की ओर इंगित किया।"[3]

दिनकर की दृष्टि में युद्ध वर्तमान युग की नियति है। कवि ने युद्ध को अनिवार्य मानते हुए दृढ़ता के साथ उसकी स्वीकृति दी है।

युद्ध को तुम निंद्य कहते हो, मगर,
जब तलक हैं उठ रहीं चिनगारियां,

1:-- कवि की दृष्टि में सृष्टि शीर्षक लेख - दिनकर, पृ0 34
2:-- शुद्ध कविता की खोज-दिनकर, पृ0 - 226
3:-- दिनकर - सावित्री सिन्हा, पृ0 - 115

भिन्न स्वार्थों के कुलिश संघर्षों को
युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है ।
और जो अनिवार्य है उसके लिए
खिन्न या परितप्त होना व्यर्थ है ।"[1]

इस प्रकार युद्ध की अनिवार्यता को स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित करते हुए उसकी समस्या एवं समाधान की मीमांसा कवि ने अपने खंडकाव्य कुरूक्षेत्र में की है ।

द्वितीय महायुद्ध की भयंकरता से कवि दिनकर आन्दोलित हो उठे ।

इस महायुद्ध की भीषणता ने उन्हें युद्ध के विषय में गंभीरतापूर्वक सोचने के लिए बाध्य किया । युद्ध की समस्या एवं समाधान के विषय में उनके चिन्तन की परिणति ही उनकी 'कुरूक्षेत्र' एवं परशुराम की प्रतीक्षा' रचनाओं में हुई । कवि ने कुरूक्षेत्र में यह मान्यता प्रस्तुत की है कि आवश्यकता से अधिक, धर्म की धारा में अवगाहन करने वाले धर्मभीरू और अहिंसा के दीन-हीन पुजारी भी अपने ऊपर आये युद्ध को धर्म के रूप में स्वीकार करें ।

1:— कुरूक्षेत्र - दूसरा सर्ग - दिनकर, पृ0 - 23

यद्यपि कुरूक्षेत्र की प्रेरणा कवि को द्वितीय विश्वयुद्ध से प्राप्त हुई थी क्योंकि तत्कालीन युद्ध की समस्याके समाधान की खोज में प्रयत्न-शील कवि को कुरूक्षेत्र के युद्ध के प्रसंग में सहायता मिली थी, किन्तु उससे पूर्व कवि ने युद्ध समस्या पर विचार किया था और फलतः कलिंग विजय की सृष्टि हुई थी । युद्ध की विध्वंसमूलकता की पृष्ठभूमि में कवि ने जब बौद्ध-धर्म प्रणीत और राष्ट्रपिता महात्मागांधी द्वारा समर्थित अहिंसा-दर्शन को रखा तब कवि के मन मस्तिष्क में एक प्रकार की खलबली मच गयी । युद्ध एक प्रश्न चिन्ह बनकर उनके सामने उपस्थित हुआ और उनके मन को कुरेदने लगा । गहरे चिंतन मनन के पश्चात् वे इस नतीजे पर पहुँचे कि युद्ध ही मनुष्य की समस्त समस्याओं का जनक है । 'कुरूक्षेत्र' काव्य की भूमिका में उन्होंने एक तथ्य का निवेदन करते हुए कहा है :--

"कलिंग विजय" नामक कविता लिखते-लिखते मुझे ऐसालगा, मानों युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओं की जड़ हो ।

'कलिंग विजय' में युद्ध के विनाशक एवं सर्वविध्वंसक परिणाम को देखकर कवि दिनकर का हृदय उद्वेलित-आलोड़ित हो उठा था । रक्त से सनी हुई इस विजय को सहृदय कवि कदापि स्वीकार नहीं कर सकता था । युद्ध के भीषण प्रतिफलन की ओर संकेत करते हुए कवि कहते हैं :---

"युद्ध का परिणाम

युद्ध का परिणाम हास त्रास,

युद्ध का परिणाम सत्यानाश,
रुंड-मुंड लुंठन निंहिसन मोच
युद्ध का परिणाम लोहित कोच" [1]

कवि की मनः स्थिति डाँवाडोल हो रही थी और वह यह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि युद्ध पाप है पुण्य? ग्राह्य है अथवा त्याज्य? कुरुक्षेत्र में युद्ध की विभीषिका से आक्रान्त नीतिज्ञ एवं धर्म परायण युधिष्ठिर की भी मनोदशा ऐसी ही है। युधिष्ठिर जब यह निर्णय नहीं कर पाता है कि ध्वंसजन्य सुख शांतिजन्य दुख में कौन नीतिविरुद्ध है, क्या ग्राह्य है, क्या अग्राह्य, तब वे अपनी इस आंदोलित मनोदशा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं :--

जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र में खिला है पुण्य,
या महान् पाप यहाँ फूटा बन युद्ध है।" [2]

युधिष्ठिर की इस डाँवाडोल स्थिति का निराकरण आगे चलकर भीष्म पितामह के मुख से हुआ है :---

---

1:-- चक्रवाल - कलिंग विजय - दिनकर, पृ० - 161 ।
2:-- कुरुक्षेत्र - द्वितीय सर्ग - दिनकर, पृ० - 17 ।

है मृषा तेरे हृदय की कल्पना - युद्ध करना पुण्य या दुष्पाप है
क्योंकि कोई ऐसा नहीं, जो स्वयं ही पुण्य हो या पाप हो।

× ×

जनता हूँ किन्तु जीने के लिए चाहिए अंगार जैसी वीरता,
पाप हो सकता है नहीं वह युद्ध है जो खड़ा हो ज्वलित
प्रतिशोध पर ।" 1

इन पंक्तियों में भीष्म ने कवि दिनकर का ही यह मन्तव्य प्रकट किया है कि युद्ध पाप-पुण्य से परे अस्तित्व-रक्षण का साधन है, वह जीवन धर्म है ।

कवि की मान्यता है कि राज्य पिपासा से लड़े जाने वाले युद्ध त्याज्य अवश्य हैं किन्तु अन्याय के प्रतिशोध के लिए किया गया युद्ध धर्म युद्ध ही है । वास्तव में युद्ध ध्वंसकारी ही होता है, सर्वनाशक होता है, अपना पराया सर्वस्व युद्धाग्नि में भस्मीभूत हो जाता है । इसलिए युद्ध कोई नहीं चाहता । तथापि समय की माँग पर जब वह अनिवार्य हो जाता है तब उसे स्वीकारने के सिवा कोई चारा नहीं रहता ।

'युद्ध को पहचानते सब लोग हैं,
जानते हैं युद्ध का परिणाम अन्तिम ध्वंस है
रुग्ण होना चाहता कोई नहीं,

1:-- कुरुक्षेत्र - द्वितीय सर्ग - दिनकर, पृ0 - 17 ।

रोग लेकिन जब आ गया पास हो ।
तिक्त औषधि के सिवा उपचार क्या? [1]
शामिल होगा नहीं वह मिष्ठान से ।

राज्य लिप्सा या साम्राज्य विस्तार हेतु किया गया युद्ध कवि की दृष्टि में समर्थनीय नहीं, बल्कि हेय है ।

सहिष्णुता, शांतिप्रियता एवं क्षमाशीलता सद्गुण अवश्य हैं, तथापि शक्ति और क्षमता के अभाव में वे कायरता के ही द्योतक समझे जाते हैं । शक्तिशाली को ही शांति, क्षमा आदि गुण शोभा देते हैं । क्योंकि निर्बल तो यों ही शांति का समर्थन करने के लिए मजबूर हो जाता है । इसलिए शक्ति का संचय मानव का प्रथम धर्म है, क्योंकि हीनों को क्षमा का भी कोई मूल्य नहीं होता । 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म के मुख से इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए दिनकर ने कहा है :—

'क्षमा शील हो रिपुसमक्ष तुम हुए विनतजितना हो,
दुष्ट कौरवों ने तुमको कायर समझा उतना ही ।
क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो,
उसको क्या जो दन्तहीन, विषरहित, विनीत सरल हो । [2]

1:— वही - पृष्ठ 20 - 21 ।
2:— कुरुक्षेत्र - दिनकर - तृतीय सर्ग, पृ०31 32

सहता प्रहार कोई विवश, कदर्य जीव,
जिसकी नसों में नहीं पौरुष की धार है ।
करुणा, क्षमा है क्लीव जाति के कलंक घोर,
क्षमता क्षमा की शूर वीरों का सिंगार है ।"[1]

दिनकर का विश्वास है कि एक व्यक्ति के सुधार का प्रश्न उपस्थित हो तो मनोबल उपयोगी हो सकता है, किन्तु जब समूह पतित हो, स्वेच्छाचारी हो, अत्याचारी हो, अविचारी हो, तब मनोबल का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । ऐसे समूह को तलवार की ही भाषा समझ में आती है और वह उसी के द्वारा सुधारा जा सकता है इसलिए दिनकर को 'उर्वशी' की उपलब्धि के बाद 'परशुराम की प्रतीक्षा' रही ।"[2]

जब राक्षसगण ऋषिमुनियों के यज्ञों का विध्वंस करके उनके यज्ञकर्म में बाधा डालते थे, तब उनके प्रतिकार के लिए विश्वामित्र को धनुर्धारी राम-लक्ष्मण को प्रहरी के रूप में लाकर खड़ा करना पड़ता था । रामायण के इस प्रसंग का आधार लेकर कवि ने इस तथ्य को उद्घाटित किया है कि न केवल प्रतिशोध के लिए युद्ध आवश्यक है, बल्कि जनकल्याण

1:-- कुरुक्षेत्र - दिनकर - तृतीय सर्ग, पृ0 34 ।

2:-- आधुनिक कवियों का जीवन दर्शन, डॉ0 परशुराम शुक्ल विरही, पृष्ठ - 15

एवं शान्ति की उपलब्धि के लिए भी युद्ध का आश्रय लेना पड़ता है:--

"आज अहिंसा नहीं कसौटी पर गाँधी की आग है ।
जहाँ शस्त्र बल नहीं, शास्त्र पछताते या रोते हैं ।।
ऋषियों को भी सिद्धि तभी तप से मिलती है ।
जब पहरे पर स्वयं धनुर्धर राम खड़े होते हैं ।" [1]

जब मनुष्य पशु बनकर किसी भी जघन्य कृत्य में विश्वास करता हुआ सामने उपस्थित हो, तब त्याग मनोबल और शान्ति की बात नहीं चलती ।" [2]

कवि ने भीष्म के द्वारा युद्ध नीति विषयक इस तथ्य को हमारे सम्मुख रखा है कि स्वत्व-प्राप्ति के लिए लड़ना कभी भी पाप नहीं हो सकता और न्यायार्थ युद्ध में मारना-मरना सद्धर्म है :--

चुराता न्याय को जो रण को बुलाता भी वही है
युधिष्ठिर ! स्वत्व की अन्वेषणा पातक नहीं है

1:-- परशुराम की प्रतीक्षा - दिनकर - आज कसौटी पर गाँधी की आग है, पृ0 - 45 ।

2:-- आधुनिक कवियों का जीवन दर्शन - डॉ0 परशुराम शुक्ल विरही, पृ0 - 150 ।

नाटक उनके लिए जो पाप को स्वीकारते हैं
न उनके हेतु, जो रण में उसे ललकारते हैं ।"[1]

कवि ने युद्ध को स्वार्थ पूर्ति के एक साधन के रूप में न स्वीकार कर शोषण एवं अन्याय के प्रतीकार्थ एक अनिवार्य कर्तव्य और आवश्यक मानव धर्म के रूप में ग्रहणीय माना है । उनकी यह दृढ धारणा है कि शोषण और अन्याय के विरुद्ध युद्ध करना अधर्म या पाप नहीं है । शोषण या अन्याय के प्रतीकार्थ लड़े जाने वाले युद्ध में हिंसा-अहिंसा का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता । ऐसे युद्ध को और साध्य के रूप में देखा जाना चाहिए साधन कोई भी हो ।

कवि दिनकर द्वारा उठाई गयी युद्ध की समस्या तथा उसके समाधान के आलोक में यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि युद्ध का समाधान युद्ध ही है जिसे शक्ति सम्पन्न होकर ही प्राप्त किया जा सकता है । बिना युद्ध के शान्ति प्राप्ति नहीं होती ।

अखण्ड भारत का समर्थन :--

राष्ट्रीयता के युगचारण दिनकर प्रारम्भ से ही अखण्ड भारत के समर्थक थे । स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों की तरह उन्होंने अखण्ड

1:-- कुरुक्षेत्र - चतुर्थ सर्ग - दिनकर, पृ0 - 41 ।

भारत पर बलिदान होने का ही संदेश दिया। अंग्रेजों की फोड़ो और राज्य करो' नीति द्वारा देश में समय-समय पर जो दंगे हुए खून की नदियाँ बह गयीं। कवि इन सबका पूरी शक्ति से विरोध करता है। सामधेनी में कवि भारत माँ की दो सन्तानों को लड़ते हुए देखकर कराह उठता है। नोआखाली और बिहार के साम्प्रदायिक दंगों के समय भी कवि अपनी घृणा व्यक्त करता हुआ एकता का समर्थन करता है :—

> जलते हैं हिन्दू-मुसलमान भारत की आँखें जलती हैं,
> आने वाली आजादी की लो दोनों पाँखें जलती हैं,
> वे छुरे नहीं चलते, छिदती जाती स्वदेश की छाती है,
> लाठी खाकर भारत माता बेहोश हुई जाती है।" 1

देश के जिस प्रकार राजनीतिक टुकड़े हुए थे कवि को कभी नहीं भाये, वह तो भारत को अखण्ड ही मानता रहा परन्तु राजनीतिज्ञों के सामने उसे रोष व्यक्त करके ही सन्तोष करना पड़ा। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश धर्म भाषा और प्रदेश के संकुचित वादों में बुरी तरह उलझ गया। कवि दिनकर यह नहीं चाहते थे कि वे अपनी

1:— सामधेनी - दिनकर, पृ0 - 81 ।

हो आँखो के सामने देश को बंटता हुआ देखे अतः बार-बार कवि इस संकुचित वातावरण से ऊपर उठकर राष्ट्र की समृद्धि और अखण्डता का समर्थन करता है ।

राष्ट्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रति विरोध :-

राष्ट्रीय धारा के प्रायः सभी कवियों ने यह सोचा था कि देश की स्वतन्त्रता के पश्चात देश को फूला-फला देखेंगे । उन्होंने रामराज्य की कल्पना की थी परन्तु स्वतन्त्र होने के पश्चात् देश का वातावरण सुधारने की जगह बिगड़ने लगा । देश के कर्णधार लोभ और भ्रष्टाचार में लीन हो गये । कवि दिनकर जैसे कवियों ने जिस जनता को देश की धरोहर माना था । वही जनता मंहगाई और असमानता के कुचक्र में पिसने लगी । कवि को नेताओं की जेबें खाली दिखाई देने लगीं और वह उन भ्रष्टाचारियों को सिंहासन खाली करने की चुनौती देने लगा :--

सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।" [1]

वह देश में अमीरी और गरीबी की बढ़ती हुई खाइयों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करने लगा । 'विपथगा' काव्य में कवि ने क्रांति का ताण्डवी और भैरवी रूप प्रस्तुत किया है जिसकी चितवन से शैल-शिखर तक टूटने लगते हैं असमानता क्रान्ति की जननी होती है :--

---

1:-- जनतन्त्र का उदय - दिनकर, पृ० - 53

श्वानों को मिलता दूध वस्त्र भूखे बालक अकुलाते हैं
माँ को हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं,
युवती की लज्जा-वसन बेच जब व्याज चुकाये जाते हैं
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य लुटाते हैं
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमन्त्रण ।"[1]

कवि को मजदूरों और किसानों की हालत में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई दिया । स्वतन्त्रता का प्रकाश पाकर भी देश अन्धकार में भटकता रहा । वह देश एकता और अखण्डता के स्थान पर विघटन ही विघटन देखता है । -- राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि के कारण कलुषित नेता न हमारे देश को राष्ट्रभाषा भी नहीं बनने देते और न ही जनता एकता प्रदेश, धर्म, भाषा आदि के झगड़ों से मुक्ति प्राप्त कर पाती है । कवि ने इस समस्त अलगाववादी संकुचित प्रवृत्तियों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है । कहीं-कहीं कवि की करुणा भी देश की ऐसी स्थिति को देखकर फूट पड़ी है ।

दिनकर के काव्य में व्याप्त राष्ट्रीयता की सरिता बड़ी ही प्रचंड प्रवाहिनी रही है जिसके कल-काल ताण्डव में वर्तमान के कुरूपों को दूर करने के लिए ध्वंस के स्वर सुनाई देते हैं :--

---

1:-- हुंकार त्रिपथगा - दिनकर - पृ0 73

"सदियों की ठंडी-बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है,
दो राह समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।

× × ×

मानो, जनता हो फूल जिसे अहसास नहीं
जब चाहे तभी उतार सजा लो दोनों में,
अथवा कोई दुध मुँही जिसे बहलाने के
जन्तर-मन्तर सीमित हो चार खिलौनों में ।

× × ×

लेकिन, होता भूडोल बवंडर उठते हैं,
जनता जब कोपाकुल हो भृकुटि चढ़ाती है,
दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।" [1]

1:— धूप और धुँआ - जनतन्त्र का उदय - दिनकर, पृ0 53

वर्तमान का यथार्थ चित्रण :--

कवि दिनकर धरती के कवि हैं, आकाशचारी कवि नहीं। उन्होंने अपने काव्यारम्भ काल से ही जगत और जीवन के यथार्थ से अपने काव्य की प्रेरणा ली है और इसी कारण उनकी कविता में एक अद्वितीय आवेश और प्रवाह है। जो कुछ जीवन का यथार्थ नहीं है, वह कवि के काव्य का कथ्य भी नहीं बन सका है। स्वदेश और स्वराष्ट्र के सर्वोपरि है। राष्ट्र की हर धड़कन के साथ उनका हृदय स्पन्दित होता है। उनका स्वर पीड़ित मानवता के स्वर को वाणी प्रदान करने वाला वह सशक्त स्वर है जो जनमानस में नई शक्ति का नवचेतना का संचार कर देता है। पराधीन भारत में अंग्रेजों के अन्याय और अत्याचारों से झुलसते हुए देश का यथार्थ चित्रण कर जनमानस में उन्होंने पौरूष का संचार किया था। आज भी वे कवि जो कुछ कानों से सुनता है आँखों से देखता है, उसकी अनुभूति और संवेदना बहुत तीव्र होती है। कवि के यथार्थवादी स्वर से राष्ट्रहित की वह भावना प्रबुद्ध होती है जो प्रत्येक व्यक्ति को आत्मचिन्तन व स्वराष्ट्र चिन्तन की ओर प्रेरित करती है।

कवि अपने दायित्व का निर्वाह उस चितेरे की भाँति करता है जो अपने चित्र द्वारा युग को महान दृष्टि प्रदान करता है। कवि युग में व्याप्त असत् तत्वों का यथार्थ अंकन कर उसे दूर करने के लिए जनमानस तैयार करता है।

दिनकर का समस्त काव्य वह दर्पण है जिसमें युग की राजनीतिक परतन्त्रता और उससे उद्भूत देश की दयाजनक परिस्थिति, अंग्रेजों के भारतीयों पर होने वाले नृशंस अत्याचार, मजदूर और किसानों की अत्यन्त दीन और भूखी पिसती हुयी हालत धार्मिक और साम्प्रदायिक देश की आन्तरिक संकुचितता एवं नारी की पराधीन अवस्था का रूप प्रतिबिम्बित होता है ।

वर्तमान के चित्रों को प्रस्तुत करते समय कवि ने अपनी करूणा का परिचय तो दिया है लेकिन उसकी करूणा रूदन के स्थान पर रोष में बदल गयी और यही कारण है कि दूध के लिए स्वर्ग लूटने को भी वह प्रस्तुत है :—

समसामयिक, सामाजिक और आर्थिक वैषम्य कवि की क्रान्ति को सदैव जगाता रहा । कवि इस शांति को कभी पसन्द नहीं करता जिसमें दबकर रह जाय । वह तो युद्ध द्वारा प्रतिकार चाहता है । वह नौनिहालों के सूखे होंठ नहीं देख सकता :—

> दूध दूध ओ वत्स ! मन्दिरों में बहरे पाषाण यहाँ हैं ।
> दूध-दूध ! तारे बोलो इन बच्चों के भगवान कहाँ हैं ।
>
> ×　　　　×　　　　×
>
> वे भी यहीं, दूध से जो अपने श्वानों को नहलाते हैं,
> ये बच्चे भी यहीं, कब्र में दूध-दूध जो चिल्लाते हैं ।
>
> ×　　　　×　　　　×

हरो व्योम के मेघ पंथ से स्वर्ग लूटने हम आते हैं
दूध-दूध वो वत्स तुम्हारा दूध खोजने में हम आते हैं ।"[1]

कवि दिनकर ने अपनी आँखों से पराधीन भारत की दुर्दशा को देखा था और इसी से उन्होंने अपनी कविताओं में अपनी भावना को अतीत के शैल-श्रृंगों से दूर रखकर यथार्थ के धरातल पर स्थिर रखने का प्रयत्न किया है :—

शैल-श्रृंग चढ़ समय सिन्धु के आर-पार तुम हेर रहे
किन्तु ज्ञात क्या तुम्हे, भूमि का दनुज पथ घेर रहे?
दो वज्रों का घोष, विकट संघात धरा पर जारी है,
वह्नि -रेणु चुन स्वप्न सजा को छिटक रही चिनगारी है ।[2]

यहाँ कवि 'दनुज' शब्द का प्रयोग केवल विदेशी शासकों के लिए ही नहीं किया है बल्कि उन्हें भी दनुज कहा है जो मानव का शोषण कर रहे हैं । भारत की इस दुर्दशा को देखकर कवि का हृदय प्रकंपित हो उठा जिसे 'रेणुका' की 'हिमालय' नामक कविता में देखा जा सकता है :—

1:— हुंकार - हाहाकार - दिनकर, पृ0 22 - 23
2:— हुंकार - दिनकर, पृ0 - 1

"ओ मौन तपस्या लीन यती ।
पलभर को तो कर दृगुन्मेष ।
रे ज्वालाओं से दग्ध, विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश ।"[1]

कवि राष्ट्र को इन सभी से सचेत रहने की सलाह देता है, जो भारत के पतन के गर्त में गिराने में सहायक है । वे उनसे भी सचेत रहने की सलाह देते हैं जो जमींदार के रूप में किसानों का पूँजीपतियों के रूप में श्रमिकों का ब्राहमण के रूप में शूद्रों का तथा विदेशी शासक के रूप में प्रजा का रक्त चूसते हैं । कवि समाज को भी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक शोषकों से सचेत रहने की प्रेरणा देता है ---

उस पुण्य भूमि पर आज तपी ।
रे आन पड़ा संकट कराल,
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे
हँस रहे चतुर्दिक विविध व्याल ।[2]

कवि दलितों का कवि है अतः उसे अपनी विवशता के माध्यम से दलितों की विवशता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में सफलता मिली है :-

---

1:-- रेणुका - हिमालय - दिनकर, पृ0 - 5

2:-- रेणुका, पृ0 - 5

दबी सी आग हूँ भीषण क्षुधा की,
दलित मौन का हाहाकार हूँ मैं
सजग संसार, तू निज को सम्भाले,
प्रलय का क्षुब्ध पारावार हूँ मैं ।[1]

जागरूक सहृदय कवि दिनकर इन भीषण परिस्थितियों से अप्रभावित रह ही कैसे सकते थे? उन्होंने रौद्र रूप धारण करके क्रांति की प्रचंड ज्वाला भड़काना चाहा है । जिसमें ये सारे दानवीय दुराचार भस्मीभूत हो जायें । इस विराट क्रान्ति कार्य में साथ देने के लिए कवि हिमालय को जागृत होकर सिंहनाद करने के लिए आवाहित करता है :--

ओ मौन तपस्या-लीन यती,
पल भर को तो कर दृगोन्मेष,
रे ज्वालाओं से दग्ध विकल,
है तड़प रहा पद पर स्वदेश ।

× × ×

ले अंगड़ाई, उठ, हिले धरा,
कर निज विराट स्वर में निनाद,
तू शैलराट् हुंकार भरे,
फट जाए कुहा, भागे प्रमाद ।

1:-- हुंकार पृ0 - 87

तू मौन त्याग कर सिंहनाद,
रे तपी ! आज तप का न काल,
नवयुग शंख ध्वनि जगा रही,
तू जाग, जाग, मेरे विशाल ।"[1]

भारत की दुर्दशा पर अन्यमनस्क दशा में सोचते समय कवि का ध्यान उन किसानों पर आकर्षित हुआ जो भारतीय समाज का सबसे अधिक शोषित एवं पीड़ित वर्ग था । भारत जैसे कृषि प्रधान देश में किसानों के दुखी होने का मतलब भारत देश का दुखी होना था । भारत की सम्पन्नता एवं समृद्धि तो किसानों के सुख सम्पन्न जीवन पर ही निर्भर है । कवि दिनकर से किसानों की यह दुर्दशा देखी नहीं गयी । उसके हृदय की करुणा इन शब्दों में फूट पड़ी :—

"ऋण शोधन के लिए दूध भी बेचधन जोड़ेंगे ।
बूंद बूंद बेचेंगे अपने लिए नहीं कुछ छोड़ेंगे ।
इतने पर भी धनपतियों की उनपर होगी मार ।
तब मैं बरसूँगी बन बेबस के आँसू सुकुमार ।
फटेगा भूखा हृदय कठोर ।
चलो कवि बन फूलों की ओर ।"[2]

1:— चक्रवाल - दिनकर - हिमालय, पृ० - 6
2:— हुंकार - दिनकर - वनफूलों की ओर, पृ० - 34

खेत में दिनभर खून-पसीना एक करके अथक परिश्रम करने वाले किसान की अभाव ग्रस्त जीवन-दशा को देखकर कौन सहृदय व्यक्ति उन पर तरस नहीं खायेगा? कवि ने उनकी दुर्दशा को यथार्थ वाणी देते हुए कहा है :—

"जेठ हो कि पूस हमारे कृषकों को आराम नहीं है ।
वसन कहाँ सूखी रोटी भी मिलती दोनों शाम नहीं है
बैलों के ये बन्धु वर्ष भर क्या जाने कैसे जीते हैं?
जबाँ बन्द, बहतीन आँखें, गम खा शायद आँसू पीते हैं ।" [1]

दिनकर ने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य भावना को भी अपनी कविताओं में सदा प्रश्रय दिया है । भारत के विभाजन से उनके हृदय को जब जबर्दस्त आघात पहुँचा तब उन्होंने अपने हृदय वेग को तकदीर का बँटवारा" कविता में अत्यन्त उद्विग्नता के साथ प्रकट किया है :—

"ताव था किसको कि बाँधे कौम को,
एक होकर हम कहीं मुख खोलते ।
बोलना आता कहीं तकदीर को,
हिंदवाले आसमाँ पर बोलते ।

1:— हुंकार - दिनकर - हाहाकार, पृ0 - 35

खूँ बहाया जा रहा इन्सान का,
सींगवाले जानवर के प्यार में ।
कौन सी तकदीर फोड़ी जा रही,
मस्जिदों की ईंट की दीवार में ।" 1

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले ही भारत-भूमि को खण्डित करने के हेतु साम्प्रदायिकता की आग भड़काने वालों को कवि दिनकर अत्यन्त तिरस्कार की दृष्टि से देखकर उन्हें तीखे शब्दों में खरी-खोटी सुनाते हैं :--

"चीथड़ों पर एक की आँखें लगी,
एक कहता है कि मैं लूँगा जबाँ ।
एक की जिद है कि पीने दो मुझे,
खून जो इसकी रगों में है रवाँ ।
मुस्लिमों ! तुम चाहते किसी जबाँ,
उस गरीबिन ने जबाँ खोली कभी,
हिन्दुओं बोलों तुम्हारी याद में,
कौम की तकदीर क्या बोली कभी ।" 2

1:-- हुंकार - दिनकर - तकदीर का बँटवारा, पृ० - 71
2:-- हुंकार - दिनकर - तकदीर का बँटवारा पृ० - 70

दिनकर ने आरम्भ से अन्त तक निरन्तर युग का साथ देते हुए युगीन परिस्थितियों का सही-सही चित्रण किया है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में आजादी के मनमाने अर्थ लगाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने वालों की पोल उन्होंने 'स्नार्कों' शीर्षक कविता में बड़े मार्मिक शब्दों में खोल दी है । आजादी के बाद देश के नव-निर्माण में हमें अपनी पूरी शक्ति लगानी चाहिए थी । इसके विपरीत, वैयक्तिक स्वार्थ की पूर्ति में उसे खर्च किया जा रहा है । देश को सर्वोपरि मानकर उसके उत्थान में अपना सारा ध्यान लगाने के बदले मन्त्रीगण, नेता, शासक, अधिकारी वर्ग, सब एक साथ उल्लू सीधा करने में संलग्न है । देश में सदैव घूसखोरी, भ्रष्टाचार, सत्तालोलुपता, निरंकुशता, अनुशासनहीनता, अराजकता का ही साम्राज्य फैला हुआ है, कर्तव्य पालन की ओर किसी का ध्यान नहीं, अपने-अपने हकों की ओर ही सब अँगुली-निर्देश कर रहे हैं । स्वतन्त्रता का मतलब ही आज उच्छृंखलता, स्वेच्छाचारिता समझा जाने लगा है । स्वतन्त्रता के पुजारियों ने अपना सर्वस्व स्वातन्त्र्य-यज्ञ में होम दिया था और भारत के नव-निर्माण का उज्ज्वल स्वप्न दृष्टि-सम्मुख रखा था, भारत के नवोत्थान की महान् आकांक्षाएं सामने रखी थी । उनका वह सपना वे आशा-आकांक्षाएं मिट्टी में मिल गयीं, उनके अरमानों पर पानी फिर गया । देश के ह्रासोन्मुख स्वरूप का चित्र राष्ट्र-प्रेमी कवि दिनकर ने अपनी 'स्नार्कों' शीर्षक कविता में, व्यंग्यपूर्ण शैली में अत्यन्त

मार्मिकता के साथ अंकित किया है। वैसी पूरी कविता ही भारत की वर्तमान स्थिति को यथा तथ्य रूप में हमारे सामने उपस्थित कर देती है और राष्ट्र के उद्धार के सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक सोचने के लिए हमें बाध्य करती है :--

नेता या प्रणेता। तेरा ठीक तो ईमान है?
पर दिया जाता अब देश में न काम है।
बने जाते कल-कारखाने आलीशान भी
साथ-साथ तेरे कुछ अपने मकान भी ।

× × ×

लोग हैं आजाद बिल लाने को ।
नेता हैं आजाद जहाँ चाहें, वहाँ जाने को
अफसर परम स्वतन्त्र है ।
मंत्री जो हजार पढ़ें, लगते न मन्त्र हैं ।
अजब हमारा यह तन्त्र है ।
नकली दवाइयों का व्यापारी स्वतन्त्र है ।
पुलिस करे जो कुछ पाप है ।
चोर का जो चाचा है, पुलिस का भी बाप है ।

× × ×

राम जाने भीतर क्या बल है ।
तब भी बखूबी यह देश चल रहा है ।

गण-जन-किसी का न तन्त्र है,
साफ बात यह है कि भारत स्वतन्त्र है ।
भिन्नता सँभाले तार-तार को,
राज करती हैं यहाँ चैन से 'स्नारकी' ।" ¹

कवि दिनकर ने राज्य सभा के सदस्य होते हुए भी जिस साहस और निर्भीकता के साथ शासन की टीका-टिप्पणी उक्त कविता में की है वह यही सिद्ध करती है कि दिनकर ने पूरी ईमानदारी के साथ अपने कवि कर्तव्य को निभाया है ।

1:-- परशुराम की प्रतीक्षा - दिनकर - स्नार्की, पृ0 - 68

आशावादी स्वर :--

भारतीय संस्कृति का मूल स्वर है आशावाद दिनकर पौरुष के कवि हैं। वे भाग्य से अधिक कर्म में विश्वास रखते हैं। इसलिए कवि तत्कालीन भारत की दयनीय स्थिति से आकुल-व्याकुल न होकर आशावादी स्वरों में उसके निराकरण एवं समाधान के लिए प्रेरणाप्रद गीत गाकर जनमानस में साहस का निरन्तर संचार करतेरहे। दिनकर के सपनों का जो भारत है उसी को उन्होंने अपने काव्य में मूर्तित करने की कोशिश की है। कवि की मान्यता है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी नव-निर्माण का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। स्नेह एवं बलिदान की उदात्त आशावादी भावना धरती पर स्वर्ग का निर्माण कर सकती है। 'कुरुक्षेत्र' में यही आशावादी स्वर यत्र-तत्र दिखाई देता है :--

> 'आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्मराज,
>
> एक दिन होगी मुक्त भूमि रण-भीति से।
>
> भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त,
>
> सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से।
>
> हार से मनुष्य की न महिमा घटेगी और,
>
> तेज न बढ़ेगा किसी मानव की जीत से।
>
> स्नेह बलिदान होंगे माप नरता के एक,
>
> धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।' [1]

1:-- कुरुक्षेत्र - दिनकर - सप्तमसर्ग, पृ0 - 13

दिनकर ओज एवं उत्साह से प्रेरित आशावादी प्रवृत्ति के कवि हैं । देश को स्वतन्त्रता प्राप्ति पर कवि ने 15 अगस्त सन् 1947 ई० का स्वागत 'अरुणोदय' नामक कविता में किया है । कवि का दृष्टिकोण यह है कि देश को स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ कई प्रकार के प्रश्न तथा विभिन्न समस्यायें हमारे सामने उपस्थित होंगी । हमें असंख्य बाधाओं को झेलते हुए आगे बढ़ना है :--

"सम्मुख असंख्य बाधाएं हैं ।
गरदन मरोड़ते बढ़े चलो ।
अरुणोदय है, यह उदय नहीं
चट्टान फोड़ते बढ़े चलो ।" [1]

भारत का स्वातन्त्र्य-प्राप्ति का बरसों का स्वप्न आज साकार हो गया है । अब प्रश्न है उसको सुनहला रूप देकर उसके नव-निर्माण का उसे उज्जवल बनाने का । भारत के जिस उज्जवल एवं सुनहले रूप का निर्माण कवि को अभिप्रेत है, वह कवि की कोरी कल्पना मात्र नहीं है - वह उसे यथार्थ धरातल की नींव पर यथार्थ की भित्ति पर खड़ा करना चाहता है । दिनकर के हृदय में भारत

1:-- धूप और धुआँ - दिनकर.

की जो प्रतिमा अंकित है वह भूमि की सीमाओं में आबद्ध भारत नहीं, वरन् ऐसे उच्च आदर्शों का उदात्तशील भारत है जो संसार के सब राष्ट्रों के लिए अनुकरणीय रहेगी। कवि ने निम्नांकित पंक्तियों में अपना भाव प्रकट किया है :--

"भारत नहीं स्थान का वाचक-गुण विशेष नर का है।
एक देश का नहीं शील यह भूमण्डल भर का है।
जहां कहीं एकता अखण्डित जहां प्रेम का स्वर है।
देश-देश में वहां खड़ा भारत जीवित भास्वर है।" [1]

अपने नव-निर्माण के उद्दिष्ट में बाधक बनने वाली परिस्थितियों के बीच से साहसपूर्वक मार्ग निकालकर हमें आगे बढ़ने का सन्देश देते हुए कहते हैं :--

गीतों से फिर चट्टान तोड़ता हूं साथी,
झुरमुटें काट आगे की राह बनाता हूं।
है जहां-जहां तमतोम सिमट कर छिपा हुआ,
चुन-चुन कर उन कुंजों से आग लगाता हूं।" [2]

1:-- नीलकुसुम दिनकर - किसको नमन करूं मैं, पृ0 - 94
2:-- परशुराम की प्रतीक्षा - दिनकर - खण्ड - 3, पृ0 - 7

कवि को यह दृढ़ विश्वास है कि भारतवासी अगर अथक परिश्रम करने के लिए कटिबद्ध होंगे तो वह दिन दूर नहीं है जब एक सबल-सुदृढ़ समृद्ध-सम्पन्न भारत का का निर्माण कर सकेंगे। कवि के सपनों के भारत में धरती को धँसाने को, सागर को मुट्ठी में बाँधने को, तूफानों को उठाने की पूरी क्षमता विद्यमान होगी :--

"बाहों से हम अम्बुधि अगाध थाहेंगे।
धँस जायेगी यह धरा अगर चाहेंगे।
तूफान हमारे इंगित पर ठहरेंगे।
हम जहाँ कहेंगे मेघ वहीं घहरेंगे।"[1]

कवि का यह दृढ़ विश्वास है कि 'वर्तमान में राष्ट्र के लिए हमने जो रक्त बहाया है, उसका सुन्दर परिणाम एक न एक दिन अवश्य निकलेगा। हिमालय की उपत्यकाओं में 'दुष्ट चीनियों' का प्रतिरोध करते हुए, देश के वीर सैनिकों ने मातृभूमि की रक्षा के लिए जो आत्मोत्सर्ग किया है, उनका यह अमर बलिदान रंग लाकर ही रहेगा। इसी आशावादी स्वर में उनका साकत स्वर सबल भविष्य का स्वप्न देख रहा है, जिसमें उद्दाम

1:-- परशुराम की प्रतीक्षा दिनकर - खण्ड - 3, पृ0 - 7

राष्ट्र की उद्दाम कल्पना अन्तर्निहित है।"[1]

> "पर हमने तो सींचा है उसे लहू से,
>
> चढ़ती उमंग की कलियों की खुशबू से,
>
> क्या यह अपूर्व बलिदान पचावल लेगी?
>
> उद्दाम राष्ट्र क्या हमें नहीं वह देगी?"[2]

दिनकर जी ने अपनी 'ताँडव' 'दिगम्बरी' 'विपथगा' आदि कविताओं में अभिव्यक्त क्रान्ति की उग्र स्वरधारा से देशवासियों में जागृति की चेतना भरकर देश की जिस सुनहली उज्जवल मूर्ति के नव निर्माण के लिए ललकारा था, कवि का विश्वास है कि वह मूर्ति निकट भविष्य में अवश्य ही साकार होकर रहेगी। चीनियों के अप्रत्याशित आक्रमण हमारे लिए लाभप्रद ही सिद्ध हुआ है। कवि इस आक्रमण को वरदान स्वरूप समझते हैं, क्योंकि उससे हमारी जागृति की चेतना और भी अधिक तीव्र बनकर प्रकट हो रही है। सुश्री सुनीति के शब्दों में --"सोता शेर आहत हो गया है, किन्तु अब वह कहीं और अधिक विकराल रूप धारण कर किसी भी दिशा से होने वाले अरि के आक्रमण का सशक्त प्रत्युत्तर

1:-- दिनकर के काव्य में राष्ट्र भावना - सुनीति, पृ0 - 193

2:-- परशुराम की प्रतीक्षा-दिनकर, खण्ड - 4, पृ0 - 13

दे सकेगा ।" [1]

कवि दृढ़ विश्वास के साथ निवेदन कर रहा है कि उक्त आक्रमण ने सदियों से निद्रित भारत को झकझोर कर जगा दिया है । हम भारत के नव-निर्माण के अपने स्वप्न को साकार बनाकर ही रहेंगे ।

"कुछ सोच रहा है समय राह में थमकर,
है ठहर गया सहसा इतिहास सहम कर,
सदियों में शिव का अचल ध्यान डोला है,
तोपों के भीतर से भविष्य बोला है ।
चोटें पड़ती यदि रहीं शिला टूटेगी,
भारत में कोई नई धार फूटेगी ।" [2]

इसी विश्वास को बढ़ाते हुए कवि कहते हैं कि चीनी आक्रमण के फलस्वरूप हिमालय की बर्फीली चट्टानों को तोड़-फोड़कर जिस ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ है वह तब तक शान्त नहीं होगा जब तक भारत की नव-मूर्ति से प्रतिष्ठा नहीं होगी ।

1:— दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना - सुनीति, पृ0 - 193

2:— परशुराम की प्रतीक्षा - दिनकर - खंड - 4, पृ0 - 14

हमारे इस संकल्पित कार्य में चाहे जितनी विघ्न-बाधाएं क्यों न उपस्थित हों, उन सबका अपने बाहुबल के सहारे साहसपूर्वक सामना करेंगे और अन्ततोगत्वा भारत की यह मूर्ति उस भूमि पर अवतीर्ण होकर ही रहेगी जिसके लिए इस मूर्ति के निर्माण में जहाँ एक ओर जन शक्ति विष्णु के निर्माणात्मक रूप में आविर्भूत होगी, वही दानवी दुष्प्रवृत्तियों को नष्ट-भ्रष्ट करने की ध्वंसात्मक अजेय शक्ति का भी उसमें अविष्कार होगा। उत्तराखंड से प्रस्फुटित इस अविजेय शक्ति का परिचय कवि ने इन शब्दों में किया है :--

> "हाँ वही रूप प्रज्ज्वलित विभासित नर का
> अंशावतार सम्मिलित विष्णु शंकर का।
> हाँ वही दुरित से जो न सन्धि करता है,
> जो सत्य धर्म के लिए खड्ग धरता है।" [1]

डा० सावित्री सिन्हा के शब्दों में :--

"चीन का आक्रमण वह घटना है जिसने दिनकर की यह आस्था दृढ़ कर दी है कि लाल लपट से गांधी को, भारत को और भारतीय संस्कृति की रक्षा करने के लिए हमें सैन्य शक्ति का पूर्ण सहारा लेना पड़ेगा। अपने जीवन-दर्शन में युद्ध को भी उतना

1:-- परशुराम की प्रतीक्षा - दिनकर - खंड - 4, पृ० - 14

हो प्रधान स्थान देना होगा, जितना परमार्थ और मानवतावाद को। मानवतावाद भारत का साध्य लक्ष्य होगा और सैन्य शक्ति इसका साधन।" [1]

इस प्रकार कवि ने अपनी अनेक कविताओं के द्वारा भारतवासियों में विश्वास की भावना जगाकर आत्यन्त आशावादी स्वरों में भारत के नव-निर्माण के संकल्प को सिद्ध करने के लिए कटिबद्ध होने का सन्देश दिया है।

गांधीवादी विचार धारा :--

सन् 1920 के पश्चात् का हिन्दी-साहित्य गांधीवाद से विशिष्ट प्रभावित रहा है। गांधीवाद का दर्शन वह प्राचीन दर्शन ही था जिसमें समस्त विश्व के उत्कर्ष की भावनाएं निहित थीं। मात्र इसका संस्करण नया था। बापू ही ऐसे प्रथम राजनीतिज्ञ थे जिन्होंने सत्य और अहिंसा के माध्यम से देश को स्वतन्त्र करने का बीड़ा उठाया। महात्मागांधी युग पुरूष थे, महामानव थे, उनकी विचार धारा न केवल भारत के लिए अपितु, विश्व भर के लिए मानवता का सन्देश देने वाली थी। गांधीवाद का प्रभाव इस युग में

1:-- युग चारण दिनकर - डा० सावित्री सिन्हा, पृ० - 67

सर्वव्यापी रहा है । भारतीय समाज को गांधी जी ने सभी दृष्टियों से प्रभावित किया है ।

गांधी जी के सिद्धान्तों की पृष्ठ भूमि में दिनकर जी के काव्य पर विचार करने पर स्पष्टतया दिखाई देता है कि - गांधी जी के राजनीतिक सिद्धान्तों के प्रति दिनकर की सहमति नहीं है । उनकी दृढ़ धारणा है कि गांधीजी के अहिंसा सत्य आदि के आदर्श स्वाधीनता संग्राम में किसी काम के नहीं हैं । कवि का विश्वास कि विदेशी सत्ता को भारत से बहिष्कृत करने का एकमेव प्रभावी मार्ग क्रान्ति का मार्ग ही हो सकता है । कवि की यह मान्यता थी कि अनाचार का दमन अनाचार से ही समाप्त हो सकता है । 'हुंकार' की कविताएं कवि का इस मान्यता की परिचायक हैं । उस समय साधारण जनता का भी यही विश्वास था कि अंग्रेजों के दमन चक्र को गांधीवाद के अहिंसामूलक आन्दोलन से नहीं मिटाया जा सकता । इसलिए गांधी जी के सैद्धान्तिक विचारों से कवि एकमत नहीं रहा, बल्कि द्वन्द्व ही रहा ।

गांधी जी ने अपने राजनीति का जीवन काल में तीन महत्वपूर्ण देश व्यापी आन्दोलनों का नेतृत्व कर उन्हें कार्यान्वित किया था । प्रथम सन् 1920-21 ई० का असहयोग आन्दोलन,

द्वितीय सन् 1930 ई0 का सविनय कानून भंग आन्दोलन और तृतीय सन् 1942 ई0 का 'भारत छोड़ो आन्दोलन'। इन आन्दोलनों की सिद्धि के लिए गांधी जी ने सत्य एवं अहिंसा को साधन के रूप में ग्रहण किया था। राष्ट्रहित विरोधी शासन शक्तियों के प्रति सम्पूर्ण असहयोग द्वारा राष्ट्र जीवन को उन्नत एवं पुष्ट बनाकर उसे स्वाधीन कर देना असहयोग आन्दोलन का मूल मन्त्र था।

इन आन्दोलनों से सहमति दर्शाते हुए तत्कालीन राष्ट्रीय कवियों ने अपनी शक्ति भर उनमें सहयोग दिया परन्तु, दिनकर जी का गांधी के साथ विरोध था, उन्होंने अपनी 'पराजितों की पूजा' और 'कल्पना की दिशा' कविताओं द्वारा अपने इस विरोध को अक्षर रूप दिया। ये कविताएं उन्होंने उस समय लिखी थी, जब गांधीजी ने अप्रत्याशित रूप से अचानक सत्याग्रह आन्दोलन रोकने की आज्ञा दी थी। जब सुभाष, जवाहर और जय प्रकाश का उबला हुआ खून गांधी जी को शान्तिमूलक समझौता नीति से किसी भी प्रकार ठंडा नहीं हो सकता था। उग्र दल युवक के नेता गांधी जी की उस नीति को भारत की पराजय मानते थे। वे पूरी शक्ति के साथ साम्राज्यशाही की जड़ें उखाड़कर उनकी सत्ता को भारत से बहिष्कृत करने के लिए उतावले हो रहे थे। दिनकर ने इन युवक नेताओं के दृष्टिकोण से अपनी सहमति दर्शाकर कहा था --

"बंधी धार, अवरूद्ध प्रभंजन, बन देवी भी हीन हुई ।
एक-एक कर बुझी शिखाएं, वसुधा वीर विहीन हुई ।" [1]

गांधी जी की इस शान्ति नीति के प्रति अपनी ग्लानि प्रकट करते हुए कवि कहता है :--

ऊब गया हूँ देख चतुर्दिक अपने अजा धर्म का
ग्लानि विहीन प्रवर्तन
युगसत्तम सम्बुद्ध पुनः कहता है, ताप कलुष है
शिखा बुझा दो मन की ।
मैं मनुष्य हूँ, दहन धर्म है मेरा, मृत्ति साथ
अग्नि स्फुलिंग है मुझमें,
तुम कहते हो शिखा बुझा दो, लेकिन आग बुझी तो
पौरुष शेष रहेगा ।" [2]

गांधी की अहिंसा नीति से दिनकर अत्यन्त क्षुब्ध थे । कवि ने जब देखा कि गांधी जी अंग्रेजों की तोप का जवाब तकली और चरखे से देने के लिए सन्नद्ध हैं तो उन्होंने गांधी जी की इस दुर्बलता की नीति के खिलाफ कटुविक्त शब्दों में अपना तीव्र विरोध प्रकट करते हुए कहा है :--

---

1:-- हुंकार - दिनकर - पराजितों की पूजा, पृ0 - 52
2:-- हुंकार - दिनकर - कल्पना की दिशा, पृ0 - 65

"महाश्चर्य । सन्दीप्ति भूल कर अपनी,
सिंह भीत हो छिपा अन्धान्ध गुहा में ।
जो करता है इस कदर्य के मुख पर,
मलदू लेकर मुट्ठी भर पिचकारी

x x x

शास्ता का यह वचन द्रोह छोड़ दो
मानव हो तुम उठो मलों से ऊपर
महा मनोबल, शक्ति अजेय तुम्हारी
दानव को जीतो तुम देव गुणों से,
एक हाथ की भिन्न शक्ति रचनाएं
सुर होते कृशकाय, किरणवपु केवल,
नट के होती अस्थि, मांस मज्जाएं
और आग सी भी कुछ चीज लहू में,
गरल द्रोह-प्रतिशोधमयी ज्वालाएं,
भरी हुयी हममें पर, हम मानव हैं
नरता मानवता, पौरुष से बढ़कर,
सुर में क्या गुण श्रेष्ठ, जिन्हें हम सीखें?
नर-जीवन संदीप्त विविध रागों से,
पल-पल नव-संघर्ष, प्रश्न नित नूतन

साथी है इतिहास, किन्तु संगर में,
स्वर्ग हारता ही आया पृथ्वी से।" [1]

दिनकर जी आरम्भ से ही क्रान्ति के समर्थक रहे हैं। उनकी दृष्टि में गांधी जी की अहिंसा नीति पराजितों की दुर्बलता की नीति थी। इस नीति की खुल्लम-खुल्ला विरोध करते हुए दिनकर ने इस नीति के परिणाम की ओर सूक्ष्म संकेत करते हुए कहा है :--

"तृणाहार कर सिंह भले ही फूले,
परमोज्ज्वल दैवत्व प्राप्ति के मद में,
पर हिंस्रों के बीच भोगना होगा,
नख-रद के क्षय का अभिशाप उसे ही।" [2]

गांधी जी की अहिंसा नीति के प्रति कवि का विरोधी दृष्टि कोण "हिमालय" की निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है :--

" रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गाण्डीव गदा,

1:-- हुंकार - दिनकर - कल्पना की दिशा - पृ0 64-66
2:-- हुंकार - दिनकर - हिमालय, पृ0 - 7

लौटा दे अर्जुन भीम वीर" ।

विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में :--

"भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की वास्तविक शक्ति भारतीय जनता के जागरण में और महात्मा गांधी के नेतृत्व में थी । किन्तु नवयुवकों के भीतर जो जोश था, वह अहिंसा के घेरे में बन्द रहने के लिए तैयार नहीं था । उनका ध्यान सबसे अधिक रूसी क्रान्ति की ओर था । देश में ऐसे नवयुवक असंख्य थे, जो रूसी क्रान्ति से प्रेरणा लेकर भारत में सशस्त्र क्रान्ति करने का स्वप्न देखते थे । देश के अन्तर्मन में अहिंसा के विरुद्ध उग्र भावनाओं का जो ज्वार चल रहा था, उसे अत्यन्त सबल भाषा में अभिव्यक्त करने का काम दिनकर ने किया ।" [2]

'विपथगा' कविता में दिनकर की क्रान्ति स्वयं निवेदन कर रही है :--

असि की नोकों से मुकुट जीत,
अपने सिर से उसे सजाती हूँ ।

1:-- रेणुका - दिनकर - हिमालय, पृ0 - 7

2:-- ज्योत्स्ना - दिनकर स्मृति अंक, सन् 1974 ई0 - प्रो0 विजयेन्द्र स्नातक, पृ0 - 45 ।

ईश्वर का आसन छीन कूद मैं,
आप खड़ी हो जाती हूँ।
थर-थर करते कानून न्याय,
इंगित पर जिन्हें नचाती हूँ।
भयभीत पातकी धर्मों से,
अपना पद मैं धुलवाती हूँ,
सिर झुका घमंडी सरकारें,
करती मेरा अर्चन पूजन। " [1]

प्रारम्भ में कवि गांधी-नीति को क्लीव धर्म ही समझता रहा। 'गांधी दर्शन' उनकी दृष्टि में क्षमा और दया के सुघर बेल-बूटों से क्लीव-धर्म को सजाने वाला धर्म था। उन्होंने धरती के उस अग्रदूत मानवेन्द्र की कल्पना की जिसके एक हाथ में अमृत कलश और धर्म की ध्वजा हो, परन्तु जो झंझा सा बलवान् और काल सा क्रोधी भी हो, अचल के समान धीर होते हुए भी निर्झर-सा प्रगतिशील हो।" [2] कवि गांधी नहीं परशुराम को चाहता है।

1:— कस्माल - दिनकर - विपथगा, पृ0 - 73

2:— युग चारण - दिनकर सावित्री सिन्हा, पृ0 96-97

क्रान्ति का विध्वंसक कवि जब देखता है कि देश के लिए क्रांति से ज्यादा श्रेयस्कर मार्ग गांधी का मार्ग ही है इसलिए वह गांधी को महामानव के रूप में देखना प्रारम्भ करता है। कलिंग-विजय में उसने अशोक को अन्तिम परणति का मार्ग अहिंसा में ही देखा और कुरुक्षेत्र में धर्म के प्रदीप को जलाने का ही आदेश दिया।

दिनकर के बापू के प्रति बदले हुए दृष्टिकोण को देखकर कुछ आलोचकों ने उन पर आरोप लगाया था कि वे हवा के अनुसार बदलने वाले पक्के अवसर वादी हैं अवसर के अनुसार स्वर बदल लिया करते है। परन्तु यह आरोप निराधार है, क्योंकि कवि के भाव में जो परिवर्तन परिलक्षित होता है वह सच्ची आस्था के ही कारण है, अवसरवादी होने के कारण नहीं। वैसे देखा जाय तो एक व्यक्ति के रूप में गांधी जी के प्रति दिनकर में अभक्ति या उपेक्षा का भाव कदापि नहीं था, बल्कि इस महान आत्मा के प्रति उनके हृदय श्रद्धा और आस्था विद्यमान थी। उन्हें वे मानवता के सच्चे रक्षक मानते थे। 'बापू' काव्य में उन्होंने अपने ये भाव व्यक्त किये हैं :--

> "देवों को भी है सांस रुकी,
> सागर ! सागर, हो सावधान् !
> है लदी हुयी इस नौका पर,
> मानवता की पूंजी महान !

यह डूब गयी तो डूबेंगे,
मानवता के सारे सिंगार,
यह पार लगी तो धरती की,
घायल किस्मत भी लगी पार ।" [1]

गांधी जी के प्रति दिनकर जी के परिवर्तित दृष्टिकोण ने ही उन्हें 'विराट के चरणों' में मानव के दिये हुए क्षुद्र उपहार के रूप में 'बापू' की रचना लिखने की प्रेरणा प्रदान की । इस काव्य में दिनकर गांधी जी के एक सच्चे पुजारी के रूप में सम्मुख आते हैं । गांधी जी की महानता को लक्ष्य कर कवि कहता है :--

"पर तू इन सबसे भिन्न ज्योति
जेता-जेता-से महीयान
कूटस्थ पुरुष ! तेरा आसन
सबसे ऊँचा सबसे महान" [2]

"तू कालोदधि का महास्तंभ
आत्मा के नभ का तुंग केतु,
बापू ! तू मर्त्य - अमर्त्य,
स्वर्ग-पृथ्वी, भूतल का महासेतु,

1:-- बापू - दिनकर, पृ0 - 23

2:-- वही, पृ0 - 9

तेरा विराट यह रूप,
कल्पना पट पर नहीं समाता है,
जितना कुछ कहूँ, मगर,
कहने को बहुत शेष रह जाता है ।
लज्जित मेरे अंगार,
तिलक माला भी यदि ले आऊँ मैं,
किस भाँति उठूँ उतना ऊपर?
मस्तक कैसे छू पाऊँ मैं?
ग्रीवा तक हाँथ न जा सकते
उँगलियाँ न छू सकतीं ललाट,
वामन को पूजा किस प्रकार पहुँचे,
तुझ तक मानव विराट "[1]

गाँधी जी को कवि ने शान्ति के दूत के रूप में देखा है :--

"तू सहज शान्ति का दूत, मनुज
के सहज प्रेम का अधिकारी,
दृग में उडेल कर सहजशील,
देखती तुझे दुनिया सारी ।"[2]

1:-- बापू - दिनकर, पृ0 - 25

2:-- बापू - दिनकर, पृ0 - 7

देश को सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में गाधी जी ने रचनात्मक कार्य किया । अछूतोद्धार, हरिजन सेवा, दलितों के प्रति प्रेम, साम्प्रदायिकता के विष को नष्ट करने की भावना एवं नारी-जागरण आदि ज्वलन्त समस्याओं के समाधान के प्रति गाधी जी क्रियाशील थे । 'बापू' नामक कविता में दिनकर जी ने इसका सविस्तार चित्रण किया है । दिनकर के अनुसार गाधी जी कलयुग के कृष्ण थे :--

"बापू तू कलि का कृष्ण,
विकल आया आंखों में नीर लिए ।
थी लाज द्रौपदी की जाती,
केशव दौड़ा चीर लिए ।" [1]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् गाधी जी के देहावसान से देश पर विपन्नता का वज्रपात हुआ तब एक बार पुनः कवि ने गाधी जी की आवश्यकता पर बल देते हुए 'वज्रपात' नामक कविता में पुकार की है :--

"लौटो वसुधा के अमृत कोष ।
लौटो भारत के गंगाजल ।" [2]

1:-- वही, पृ० - 18

2:-- बापू - दिनकर - वज्रपात, पृ० - 18

गांधीवाद से प्रभावित कवि दिनकर की काव्य कृतियों में विश्व-बन्धुत्व, मानवतावाद, अहिंसावादी दृष्टिकोण, दलितों के प्रति सहानुभूति इत्यादि भावनाएं व्यक्त हुई हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि क्रान्तिकारी कवि दिनकर को शान्ति का उदात्त सन्देश गांधीवाद ने ही दिया है।

संस्कृति गान :--

प्रत्येक राष्ट्रीय कवि अपनी कला-कृतियों में युग चित्रण के साथ ही साथ देश की संस्कृति और सभ्यता को भी अंकित करता है। दिनकर ने भी अपनी काव्य कृतियों में भारतीय सभ्यता और प्राचीन संस्कृति का अंकन सर्वत्र किया है। भारतीय संस्कृति उनके रोम-रोम में समाई है। भारतीय संस्कृति की सर्वश्रेष्ठ विशेषता यह है कि वह सर्व मानव-मंगल-भावना का उद्घोष करती है ----

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु:खभाग्भवेत्।।

राष्ट्र कवि दिनकर भी सभी के मंगल की कामना करते हुए दिखाई देते हैं। समानता की यह सांस्कृतिक भावना निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है :--

'राष्ट्र का एक अंग दुबला,

और दूसरा मोटा न रहे,

यानी एक आदमी बड़ा,

और दूसरा छोटा न रहे।" ¹

राष्ट्रीय संस्कृति की भव्यता के दर्शन दिनकर जी के अतीत गान में होता है। विशेषतया अतीत गान के अन्तर्गत उन्होंने अपने देश की उज्ज्वल परम्परा एवं गौरवमय इतिहास का दर्शन कराया है। अपने पूर्व-पुरुषों की वीरता, त्याग, शील आदि के वर्णन द्वारा कवि ने देश की संस्कृति की एक झलक प्रस्तुत की है।

क्रान्ति के कवि दिनकर का उद्घोष करते समय भी भारत की संस्कृति को सदैव स्मरण रखा है। उसने कभी बौद्ध कालीन श्रेष्ठ संस्कृति को तो कभी लिच्छवी की शान को चित्रित करते हुए देश के अतीत कालीन महापुरुषों एवं पवित्र स्थानों का देश-वासियों को स्मरण कराया है और उसके माध्यम से भारत की उज्ज्वल परम्परा का अंकन किया है।

शान्ति की भावना भारतीय संस्कृति की सर्वश्रेष्ठ भावना है। यह भावना भारतीय संस्कृति का वह अंग है जिससे न केवल प्राचीन काल में अपितु वर्तमान काल के वैज्ञानिक युग में भी भारत

1:-- हारे को हरिनाम - दिनकर - सबसे जरूरी काम, पृ० - 124

की प्रतिष्ठा एवं गौरव को अक्षुण्ण तथा अबाधित रखा है। राष्ट्र की विभिन्नताओं एवं विषमताओं के विनाश के लिए कवि ने प्रारम्भ में क्रान्ति का उद्घोष किया था किन्तु आगे चलकर उनके युद्ध विषयक दर्शन में परिवर्तन हो गया और अन्ततोगत्वा युद्ध की समस्या का हल उन्होंने शान्ति में ही खोजना चाहा। गांधी जी की उनके शान्तिमय आन्दोलनों में प्राप्त सफलता ने भी शान्ति में कवि दिनकर की आस्था को परिपुष्ट बनाने में सहायता पहुँचाई है।

जातिगत अभेद भी अपनी श्रेष्ठ संस्कृति का एक अंग है, जिसका दर्शन हमें वेदकालीन एवं बौद्धकालीन भारतीय सभ्यता के रूप में होता है, जिसमें जाति भेद को कभी प्रश्रय ही नहीं दिया गया। इसी कारण उस काल में देश में प्रेम और सहकार की भावनाएं सर्वोपरि थी 'सहवीर्यं करवावहै' और 'सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु' की उदार एवं उदात्त भावनाओं के पोषण के कारण जाति-भेद का भाव यहाँ नहीं पनप पाया था। किन्तु कालान्तर में संभवतः कुछ स्वार्थी एवं संकुचित मनोवृत्ति वाले व्यक्तियों ने ऊंच-नीच और जाति-पाँति के कृत्रिम भेद-भाव का निर्माण करके समाज की सुदृढ़ एकता पर जबर्दस्त प्रहार किया। वर्तमान युग में तो जातिभेद की यह भावना देश की स्वाधीनता में बाधक समझकर देश के गण्यमान नेताओं ने और गांधी जी जैसे महापुरुषों ने उसे मिटाने का बीड़ा उठाया। गांधी जी को कुछ हद तक इस कार्य में सफलता भी प्राप्त हुई।

दिनकर ने 'रश्मिरथी' में कर्ण के चरित्र के माध्यम से जाति-पाँति एवं ऊँच-नीच के अभेद का समर्थन करते हुए संस्कृति के उस अंग का चित्रण किया है । 'रश्मिरथी' में कर्ण के द्वारा प्रकट किये गये उद्गार द्रष्टव्य है --

"तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतला के,
पाते हैं जग से प्रशंसा अपना करतब दिखला के ।
हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक,
वीर खींच कर ही रहते हैं इतिहासों में लीक" [1]

x x x

'जाति-जाति रटते जिनकी पूँजी केवल पाषंड,
मैं क्या जानूँ जाति? जाति है ये मेरे भुजदंड"[2]
"मस्तक ऊँचा किये, जाति का नाम लिए चलते हो
मगर असल में, शोषण के बल सुख में पलते हो ।" [3]

त्याग की भावना भी भारतीय संस्कृति का एक उत्कृष्ट पहलू है । भारतीय संस्कृति में सदा माँग से अधिक त्याग को

1:-- रश्मिरथी - दिनकर, प्रथम सर्ग, पृ0 - 1
2:-- वही, पृ0 - 4
3:-- वही

महत्त्व दिया गया है। दिनकर ने प्राय: शान्ति का समर्थन त्याग की दृष्टि सम्मुख रखकर किया है। क्योंकि त्याग की भावना के अभाव में शान्ति सम्भव ही नहीं है। हमारे इतिहास में इस बात के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं जहाँ - बड़े -बड़े राजाओं-महाराजाओं ने विपुल सम्पत्ति एवं वैभव को त्याग कर बान-प्रस्थाश्रम को स्वीकार किया था।

गुरुभक्ति, मैत्री, ईश्वर में आस्था भी हमारी संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग हैं। जिनका अंकन दिनकर जी की कृतियों में यत्र-तत्र किया गया है। व्यक्तिगत मैत्री के रूप में दान-प्रियता, पारस्परिक सहयोग इत्यादि का चित्रण कवि ने अपनी अनेक कविताओं में किया है। 'रश्मिरथी' का कर्ण मित्रता के नाम पर प्राणों का उत्सर्ग करना भी पुण्य प्रद मानता है, अपना सर्वस्व समर्पित कर भी वह प्रसन्नता अनुभव करता है, अपने मित्र दुर्योधन के प्रति कृतज्ञता दर्शक कर्ण ने अपने उद्गारों को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है --

> "मित्रता बड़ा अनमोल रतन, कब इसे तोल सकता है धन?
> धरती की तो है क्या बिसात? आजाए अगर वैकुण्ठ हाथ?
> उसको भी न्यौछावर कर दूं, कुरुपति के चरणों पर धर दूं।

x x x

यदि चले वज्र दुर्योधन पर, ले लूं बढ़कर अपने ऊपर,
कटवा दूं उसके लिए गला, चाहिए मुझे क्या भला?" [1]

कवि ने भारतीय ग्रामीण संस्कृति का चित्रण भी अनेक रचनाओं में किया है। ग्राम्य जीवन के प्रति उनमें आस्था और प्रेम विद्यमान था। वस्तुत: भारत की संस्कृति और सभ्यता के वास्तविक दर्शन मूलत: गावों में होते हैं। कवि ने इस संस्कृति और सभ्यता की खोज गावों के कृषक-जीवन में खेतों-खलिहानों में करने की कोशिश की है। 'रेणुका' की 'व्योमकुंजी की परी आर्य कल्पने', 'कविता की पुकार' आदि कविताओं में कवि के ग्राम्य-प्रेम की झलक मिलती है, कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में गांव का बड़ा हृदयस्पर्शी चित्रण किया है --

स्वर्णा चला अहा! खेतों में उतरी सन्ध्या श्याम परी
रोमन्थन करती गायें आ रही रौंदती घास हरी।
घर-घर से उठ रहा धुआँ, जलते चूल्हे बारी-बारी,
चौपालों में कृषक बैठ गाते - कहाँ अटके बनवारी।

1:-- रश्मिरथी - दिनकर - तृतीय सर्ग, पृ० - 41

पनघट से आ रही पीत वसना युवती सुकुमार
किस भाँति ढोती गागर, यौवन का दुर्वहभार ।

x x x

वन तुलसी की गन्ध लिए, हल्की पुरवै या आती है ।
मन्दिर की घण्टा ध्वनि, युग-युग का सन्देश सुनाती है ।
टिम-टिम दीपक के प्रकाश में, पढ़ते निजपोथी शिशुगण,
परदेशी की प्रिया बैठ गाती यह विरहगीत उन्मन
भैया । लिखदे एक कलम खत मों बालम के जोग
चारों कोने खेम-कुशल माझे ठाँ मोर वियोग ।" ¹

ग्रामीण संस्कृति का चित्रण 'रसवन्ती' की 'गीत-अगीत', 'बालिका से वधू' आदि रचनाओं में भी प्राप्त होता है, जिनमें कवि ने गाँव की लाजवन्ती ललनाओं का लालित्यपूर्ण शब्दावली में मधुर चित्रांकन किया है :--

दो प्रेमी यहाँ, एक जब बड़े साँझ आल्हा गाता है,
पहला स्वर उसकी राधा को, घर से यहाँ खींच लाता है।

1:-- रेणुका - दिनकर - कविता की पुकार, पृ० - 14

चौरी चौरी खड़ी नीम की छाया में छिपकर सुनती है,
हुई न क्यों मैं कड़ी गीत की विधना? यों मन में गुनती है ।[1]

ग्रामीण चित्रण में कवि ने गाँवों के रीति-रिवाज, गाँव वालों के पारस्परिक आत्मीय व्यवहार, सन्ध्या समय कृषकों का चौपाल पर बैठकर गाना आदि का यथार्थ अंकन करते हुए सुन्दर ढंग से ग्रामीण संस्कृति के दर्शन कराये हैं ।

अतीत के प्रति प्रेम :--

अतीत प्रत्येक देश की वह सम्पत्ति है जिसके सहारे वर्तमान को सम्पन्न एवं सफल बनाया जा सकता है । देश की नदियाँ, पहाड़, वन-उपवन इत्यादि प्राकृतिक उपकरण ही नहीं, बल्कि उसकी भूमि के कण-कण के साथ अतीत-गौरव की अनगिनित स्मृतियाँ सम्बद्ध रहती हैं । जब कभी वर्तमान अन्धकार से आच्छादित हो जाता है, तब अतीत से ही आलोक प्राप्त करके उसे प्रकाशित किया जा सकता है । कोई भी सच्चा राष्ट्रीय कवि अपने अतीत अपने इतिहास से मुख नहीं मोड़ सकता ।

1:-- रसवन्ती - दिनकर -गीत - अगीत, पृ0 - 16

यह परम सौभाग्य की बात है कि भारत का अतीत वैभवशाली एवं समृद्धियुक्त तथा गौरवमण्डित रहा है। दिनकर जी को भारत के इसी उज्ज्वल अतीत के प्रति नितान्त प्रेम है, अटूट श्रद्धा है। दिनकर की यह मान्यता है कि --"प्रत्येक युग अपनी आग में परम्परागत इतिहास को खौलाता है और भविष्य की ओर लपटें फेंकता है, उसकी आँच में पड़कर प्राचीन संस्कृतियाँ नया रंग पकड़ती है। वर्तमान की आँख से हम अतीत को देखते हैं।[1] इसीलिए देश की लम्बी दासता, गरीबी और विदेशी शासकों के अत्याचारों से आहत, अपमानित भारतीय जनता की मनोदशा के साथ-साथ देश के गौरवमय इतिहास पर भी कवि ने ध्यान दिया है और उसकी अभिव्यक्ति अपनी अनेक रचनाओं में की है। भारत के उज्ज्वल इतिहास, को गौरवमय अतीत को वाणी प्रदान करना दिनकर की राष्ट्रीयता की उल्लेखनीय विशेषता है।

दिनकर ने अपने काव्य में अतीत का आधार लेने के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा है :--

"पीछे हटकर वाण इसलिए फेंकता हूँ कि वर्तमान कम्पित हो उठे या अपने युग का दीप जलाने के लिए अतीत से तेल लाता हूँ।" [2]

1:-- मिट्टी की ओर - दिनकर, पृ0 - 60

2:-- दिनकर का रचना संसार - डा0 छोटेलाल दीक्षित

वास्तव में इतिहास की विस्मृत घटनाओं की पृष्ठभूमि में दिनकर ने वर्तमान की पीड़ा को प्रभावोत्पादक रूप में प्रकट किया है। दिनकर ने 'रेणुका', 'हुंकार', 'इतिहास के आंसू' 'दिल्ली' आदि रचनाओं में उनका अतीत-प्रेम झलकता है। देश की वर्तमान दयनीय-दशा से व्यथित कवि हृदय को अतीत के चिन्तन-अवलोकनसे पर्याप्त दिलासा एवं स्फूर्ति प्राप्त हुई है।

सहृदय कवि देश के उज्ज्वल अतीत के गौरव को आहत देखकर शोक विह्वल हो जाता है किन्तु उससे हताश होने के बदले उसका शोक उसे नया ओज, नया तेज तथा नयी स्फूर्ति प्रदान करता है, जो कवि की क्रान्तिकारी वाणी की जनक बनकर जाति में राष्ट्रीय चेतना जागृत कर देती है। कवि दिनकर को देश की धरती की तरह धरती-पुत्रों से प्रेम है। दिनकर ने अपनी अनेक कविताओं में गांधी, राजेन्द्र प्रसाद, पं० नेहरू, विनोबाभावे इत्यादि नेताओं के प्रति अगाध श्रद्धा अर्पित की है। 'रेणुका' के मंगल-आह्वान' में कवि ने काव्य-सृजन के लिए अतीत से प्रेरणा ग्रहण करना चाहा है :—

'प्रियदर्शन - इतिहास कंठ में

आज ध्वनित हो काव्य बने,

वर्तमान की चित्रपटी पर,

भूतकाल सम्भाव्य बने।

जहाँ-जहाँ धन तिमिर हृदय में
भर दो वहाँ विभा प्यारी ।
दुर्बल प्राणों को नस-नस में,
देव फूंक दो चिनगारी ।" [1]

श्री लालधर त्रिपाठी ने दिनकर के अतीत-प्रेम की मीमांसा में निम्नांकित शब्दों में बहुत ही मार्मिकता के साथ की है -- "भारत के पराधीनता काल में देश की दरिद्रावस्था के शूल से बिंध कर जो घाव या व्रण कवि के हृदय में हो गया था, उस पर वह वैभवशाली अतीत का मरहम लगा-लगा कर शान्ति पा लिया करता है ।" [2] अतीत का महत्त्व स्पष्ट करते हुए कवि कहता है---

"देवो ! दुखद है वर्तमान की
यह असीम पीड़ा सहना ।
कहीं दुखद इससे संसृति में,
है अतीत को रत रहना" [3]

1:-- रेणुका - दिनकर - मंगल आह्वान,

2:-- दिनकर के काव्य - लालधर त्रिपाठी, पृ० - 35

3:-- रेणुका - पाटलिपुत्र की गंगा से - दिनकर, पृ० - 27

कवि की मान्यता है कि अतीत के वीर चरित्रों की स्मृति वर्तमान को संजीवनी दे सकती है। इसलिए भारत को परतन्त्रता से मुक्त देखने का इच्छुक कवि भारतीय महान वीरात्माओं का स्मरण करता है :--

"पूछे सिकताकण से हिमपति
तेरा वह राजस्थान कहाँ?
वन-वन स्वतन्त्रता दीप लिए,
फिरने वाला बलवान कहाँ?
तू पूछ अवध से राम कहाँ?
वृन्दा बोलो घनश्याम कहाँ?
ओ मगध! कहाँ मेरे अशोक
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ?
तू पैरों पर ही पड़ी हुई
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी।
तू पूछ कहाँ इसने खोयी,
अपनी अनन्त निधियाँ सारी।"[1]

1:-- रेणुका - दिनकर -हिमालय, पृ0 6

दिनकर जी ने अतीत के गौरव-गान में कहीं भी साम्प्रदायिकता से काम न लेकर निष्पक्षता के साथ अतीत की उज्ज्वल झाँकी प्रस्तुत की है। हिन्दू और मुसलमानों के बीच किसी प्रकार का भेद-भाव प्रदर्शित न करके उन्होंने पूरी तटस्थता के साथ जहाँ एक और गुप्तकालीन स्वर्णिम युग को याद किया है वहीं दूसरी और मुगल साम्राज्य के गौरव को भी सम्मानपूर्वक स्मरण किया है। कवि का यह निष्पक्ष एवं आदर्शपूर्ण भाव उसका हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य भावना का परिचायक है। कवि के उस दृष्टिकोण का महत्व यह जानकर और भी बढ़ जाता है कि उन्होंने यह भावभिव्यक्ति उस समय की थी जब अंग्रेज सरकार दोनों जातियों के बीच फूट डालने का प्रयास कर रही थी। वैभव की समाधि शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ इस दृष्टि से चिन्तनीय हैं :--

यह नियति-गोद में देखो,
मोगल गरिमा सोती है।
यमुना कछार पर बैठी,
विधवा दिल्ली, रोती है।

x x x

जय दीप्ति कहाँ अकबर के
उस न्याय मुकुट मणिमय को?

छिप गया छलक किस तम में,

भारत के स्वर्ण उदय को ।

x x x

वह हरम कहाँ मुगलों को

छवियों की वह फुलवारी?

है कहाँ विश्व का सपना,

वह नूरजहाँ सुकुमारी?" [1]

दिनकरजी ने जब देखा मानवता का गला घोंटा जा रहा है, मानव-मानव के बीच की सद्भावना लुप्त प्राय होती जा रही है, तथा कथित उच्च भू लोग अपने अनुदार कार्यों से अस्पृश्यता का पोषण कर रहे हैं, हिंसावार का सर्वत्र बोलबाला है, तब उन्होंने अतीत के युग पुरुष भगवान बुद्धदेव का स्मरण करके भारत की हिंसा-चार एवं अस्पृश्यता की स्थिति से अवगत कराने के लिए उन्हें जगाया है ताकि स्थिति को सुधारने में वे सहयोग दें :--

"आज दीनता को प्रभु की पूजा का अधिकार नहीं,

देव । बना था क्या दुखियों के लिए निठुर संसार नहीं?

1:-- इतिहास के आँसू - दिनकर - वैभव की समाधि,

पृ0 - 70 - 73

धन पिशाच को विजय धर्म को पावन, ज्योति अदृश्य हुई
दौड़ो, बोधिसत्व । भारत में मानवता अदृश्य हुई ।
अनाचार को तीव्र आँच में अवमानित अकुलाते हैं,
जागो, बोधिसत्व । भारत हरिजन तुम्हे बुलाते हैं,
जागो, विप्लव के काल । दम्भियों के इन अत्याचारों से
जागो, मैत्री निर्घोष । आज अतीत के क्रांति गान
जागो, जगती के धर्म तत्व । जागो हे जागो बोधिसत्व" [1]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए भारतीयों में ऐतिहासिक शौर्य एवं वीर भावना जागृत करना कवियों का लक्ष्य था । दिनकर ने भारतीयों के समक्ष उन ऐतिहासिक वीरों का आदर्श प्रस्तुत किया जिन्होंने मातृभूमि के लिए अपने जीवन के उत्सर्ग में तत्परता दिखाई थी । 'पाटलिपुत्र की गंगा' से शीर्षक कविता में कवि ने ऐसे ही वीरात्माओं की जयगाथा गाकर वर्तमान के लिए स्फूर्ति ग्रहण करना चाहा है :--

"तुझे याद है चढ़े पदों पर,
कितने जय सुमनों के हार?
कितनी बार समुद्र गुप्त ने
धोयी है तुममे तलवार?

1:-- हुंकार - दिनकर - बुद्धदेव, पृ० 13-14

तेरे तीरों पर दिग्विजयी

नृप के कितने उड़े निशान?

कितने चक्रवर्तियों ने है,

किये कूल पर अवभृथ-स्नान?

विजयी चन्द्रगुप्त के पद पर,

सैल्यूकस की वह मनुहार

तुझे याद है देवि ! मगध की,

वह विराट उज्ज्वल शृंगार?" [1]

राजस्थान की मिट्टी वीरों का तिलक करने वाली मिट्टी है। तभी तो दिनकर राजस्थान के इतिहास के प्रति आकृष्ट हुए हैं :--

"समय माँगता मूल्य मुक्ति का,

देगा कौन माँस की बोटी?

पर्वत पर आदर्श मिलेगा,

खाये चलो घास की रोटी।

चढ़े अश्व पर सेंक रहे हैं,

रोटी नीचे कर भालों की

खोज रहा मेवाड़ आज फिर,

उन अल्हड़ मतवालों की" [2]

1:-- चक्रवाल-दिनकर-पाटलिपुत्र की गंगा से, पृ० 15-16

कवि की स्मृतियाँ प्राचीन खण्डहरों को देखकर जाग उठती हैं। कवि ने 'इतिहास का गीत' कविता में खण्डहरों में अंकित अतीत गौरव की महिमा का वर्णन किया है :--

"यह खण्डहर उनका जिनका

जग कभी शिष्य, और दास बना था।

यह खण्डहर उनका जिनसे,

भारत भू का इतिहास बना था।" [1]

कवि को उस गौरवशाली अतीत की स्मृति बार-बार उद्वेलित कर देती है जिसमें देश, कला, कारीगरी, वाणिज्य और विद्या सभी में चरमोन्नति पर था :--

"जगती पर छाया करती थी कभी हमारी भुजा विशाल
बार-बार झुकते थे पद पर ग्रीक, यवन के उन्नत भाल,
विजयी चन्द्रगुप्त के पद पर सैल्यूकस की वह मनुहार,
तुझे याद है देवी! मगध का वह विराट उज्ज्वल श्रृंगार" [2]

1:-- इतिहास के आँसू - दिनकर - मगध महिमा, पृ0 - 14

2:-- रेणुका - पाटलीपुत्र की गंगा से - दिनकर, पृ0 - 25

कवि गंगा की हर लहर में अतीत की स्मृतियों का कम्पन्न देखता है कभी अशोक, चन्द्रगुप्त और समुद्रगुप्त की याद आती है तो कभी बुद्ध और महावीर की ।

दिनकर में अतीत के वीर-पूजा का यह भाव एक प्रकार से उनकी राष्ट्रभक्ति का ही परिचायक है । राष्ट्रकवि स्वभावत: राष्ट्र पुरुषों के पुजारी होते ही हैं । इसलिए दिनकर को अपने देश के वीर पुरुष वंद्य हैं ।

उपर्युक्त उदाहरणों के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि अतीत के गौरव का स्मरण कवि दिनकर ने जहाँ एक ओर वर्तमान के लिए स्फूर्ति ग्रहण करने के लिए किया है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान के चिन्तन हेतु, वर्तमान पर दयनीय दशा का विदारक चित्र उपस्थित करने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में कवि ने सुनहरे अतीत का उपयोग किया है । अतीत की स्मृतियाँ एक प्रकार से वर्तमान के गम्भीर चिन्तन के लिए कवि को सहायक प्रतीत होती हैं । वर्तमान के वातायन से कवि जब अतीत की ओर दृष्टिक्षेप करता है तब उसे युगीन शोचनीय परिस्थितियों को देखकर क्षोभ होता है और यही क्षोभ आगे चलकर क्रान्ति को जन्म देता है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि दिनकर ने राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए भारत के गौरवमय अतीत का पर्याप्त सहारा लिया है, उससे उन्हें अपने काव्य सृजन में काफी बल मिला है। विगत वर्षों की प्रदीर्घ परतन्त्रता ने भारतीय इतिहास की वाणी को मौन बना रखा था, किन्तु दिनकर ने अपने काव्य के माध्यम से फिर से सजीव बना दिया। दिनकर ने एक प्रकार से भारत के विस्मृत इतिहास को अपनी कविता में मुखरित करते हुए जनता में राष्ट्रीय चेतना भरने का सराहनीय कार्य किया। जैसा कि माखनलाल चतुर्वेदी जी ने कहा है --

"दिनकर से इतिहास अपनी सम्पूर्ण वेदनाओं को लेकर बोलता है। भारत की विलुप्त गौरव-गाथा को दिनकर की सशक्त लेखनी ने अमरत्व प्रदान किया है। भारतीय इतिहास के पृष्ठों को कवि ने छान मारा है। बिखरे ओजस्वी रेणुओं के निर्झर को कवि ने 'रेणुका' के महानद के रूप में प्रवाहित किया है।" 1

वास्तव में, दिनकर की 'इतिहास के आँसू' तथा अन्य कृतियों की अनेक कविताओं में भारत का जाज्वल्यमान अतीत किसी चलचित्र के समान आँखों के सामने साक्षात अवतीर्ण हुआ दिखाई

1:-- दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना - सुनीति, पृ० 7।

देता है । इसी ज्वलंत अतीत की कसौटी पर कवि ने तेजोहीन एवं गलितमात्र वर्तमान को कसकर देखा-परखा और उसे पुन-रुज्जीवित करने की प्रेरणा लेकर उसने अपनी क्रान्तिकारी हुंकार को प्रतिध्वनित किया । इस सन्दर्भ सुश्री सुनीति का कथन अत्यन्त सार्थक प्रतीत होता है :--

"कवि भारत के यश को धू-धू कर जलते देख रहा है । वह फिर से उसे स्वर्णिम आभा प्रदान करने के लिए अन्त:करण की समस्त उद्दाम भावनाओं एवं करुण वेदनाओं के साथ प्रयत्नशील है ।" [1]

"प्राची के प्रांगण बीच देख,
जल रहा स्वर्ण युग अग्निजाल ।
तू सिंहनाद कर जाग यती ।
मेरे नगपति मेरे विशाल ।" [2]

1:-- दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना - सुनीति,
पृ0 - 60

2:-- रेणुका - दिनकर - हिमालय,
पृ0 - 7

मानवतावादी चिन्तन :--

द्विवेदी युगीन कवियों का मानवतावाद आदर्श की सीमाओं में आबद्ध था और छायावादी कवियों का मानवतावाद केवल वाचिक सहानुभूति तक ही सीमित था। दिनकर की पीढ़ी ने उसे यथार्थ भूमि पर देखा, समझा और विकास का व्यावहारिक संदेश दिया। मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण, उत्पीड़न और दमन, संकुचित स्वार्थ, जाति-पाँति, और वर्ग भेद तथा वर्णभेद तथा वैज्ञानिक प्रगति और तज्जन्य विभीषिकाएं मानवजीव को विघटित बना रही हैं। आज का स्वकेन्द्रित मनुष्य मानवता के समक्ष सबसे बड़ी समस्या बनकर उपस्थित हुआ है।" [1] दिनकर ने इन सब परिस्थितियों के परिपार्श्व में अपनी कविताओं में मानवता के विषय में अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है।

सामाजिक वेदना कवि हृदय में संवेदन बनती है तभी उसका काव्य मानवता को जन्म देता है। दया ममता, उदारता, सहिष्णुता, त्याग तथा आत्म विश्वास आदि गुण मानवता के अंग हैं, जिनका विकास काव्यमाध्यम से अभिव्यंजित होता है। कवि दिनकर के काव्य दर्पण में ये ही मानवीय गुण सर्वत्र प्रतिबिम्बित हुए हैं।

1:-- आधुनिक कवियों का जीवन दर्शन - डा० परशुराम शुक्ल

अहम का त्याग ही मानवता है । तभी तो कवि दिनकर ने कहा है :--

"अहम् केवल संतो का ही शत्रु नहीं है,

वह पूरी मानवता का काल है ।" [1]

दिनकर ने दया, विनय, प्रेम एवं विवेक से मानवता की स्थापना को स्वीकार किया है । फिर भी उनकी मान्यता है कि बल पौरुष तथा पराक्रम से अमानवीय तत्वों को नष्ट करके ही मानवता की स्थापना की जा सकती है । कलिंग की युद्ध भूमि में मानवता का जघन्य संहार देखकर व्यथित सम्राट अशोक के मुख से मानों अपनी ही ग्लानि प्रकट करते हुए कवि कहते हैं :--

"मनुज के पावों तले मर्दित मनुज का मान ।

आदमीयत के लहू में आदमी का स्नान

जय की वासनै उद्दाम ।" [2]

और भी :--

मन्दमानव ! वासना के भृत्य ! देख ले भर आँख निजदुष्कृत्य

यह धरा तेरी न थी, उपनीत, शत्रु की त्यों ही नहीं थी क्रीत।'

1:-- हारे को हरि नाम- पुरुषार्थ - दिनकर, पृ0 15।

2:-- इतिहास के आँसू - दिनकर - मगध महिमा, पृ0 - 24

3:-- सामधेनी - दिनकर- कलिंग विजय, पृ0 - 39

'कुरुक्षेत्र' में अमानवीय तत्वों की समाप्ति और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापना का सन्देश है । 'कुरुक्षेत्र' के मानवतावादी विचारों में 'रस्किन' और 'तिलक' के मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रभाव है । दिनकर पाशविक शक्तियों की समाप्ति पर मानवीय कृतियों का उन्नयन करना चाहते हैं । कुरुक्षेत्र की निम्नांकित पंक्तियों में यही भाव द्रष्टव्य है :--

"समर शोषण हास की विरुदावली से हीन,
पृष्ठ जिसका एक भी होगा न दग्ध मलीन ।
मनुज का इतिहास जो होगा सुधामय कोष,
छलकता होगा सभी नर का जहाँ संतोष ।
साम्य की वह रश्मि स्निग्ध उदार,
कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान
कब सुकोमल ज्योति से अभिषिक्त
हो सरस होंगे जली सूखी रसा के प्राण" ।

दिनकर जी मानवता के विकास के लिए मस्तिष्क एवं हृदय में सामंजस्य स्थापित करना चाहते हैं :--

---

1:-- कुरुक्षेत्र - दिनकर - षष्ठ सर्ग, पृ0 88-89

किन्तु, है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूट कर पीछे गया है रह हृदय का देश,
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्यौहार,
प्राण में करते दुखी हो देवता चीत्कार ।" [1]

मनुष्य देवत्वमय हो जाता है तो उसकी संकुचित वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, उसका हृदय विशाल हो जाता है । सम्पूर्ण मानव समाज को वह आत्मवत् देखने लगता है --'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की महती भावना से वह मनुष्यमात्र में अपनत्व स्थापित कर लेता है । उसके लिए ऊँच-नीच, अमीर-गरीब की विभाजक रेखा मिट जाती है । वह तो उस दिनकर के समान हो जाता है, जिसकी रश्मियाँ महल और झोपड़ी का भेद-भाव न रखकर सबके द्वार को आलोकित करती है । मानवता मनुष्य के अन्तर्हृदय को समभाव से प्रकाशित करती है । 'रश्मिरथी' में कर्ण दलित उपेक्षित तथा तिरस्कृत के प्रतिनिधि के रूप में अपनी व्यथा व्यक्त करते हैं :--

मैं उनका आदर्श, किन्तु जो तनिक न घबरायेंगे
निज चरित्र बल से समाज में, पद विशिष्ट पायेंगे ।" [2]

1:-- वही, पृ० - 82

2:-- रश्मिरथी - चतुर्थ सर्ग - दिनकर, पृ० - 59

कवि ने कर्ण के माध्यम से वात्सल्य से वंचित ऐसे हजारों नौनिहालों को मार्मिक अनुभूति व्यक्त की है, जिनको आधुनिक युग की कुन्तियां अपने ममत्व से वंचित कर देती हैं और उन बेचारों को कर्ण के समान अपमान का घूंट पीना पड़ता है।

दिनकर ने इसी अमानवीय का यथार्थ चित्रण किया है। और यह समाधान भी दिया है कि उन्हें अपने पौरुष, सामर्थ्य एवं सत्कर्मों से कर्ण के समान समाज में अपना विशिष्ट स्थान बनाना है।

वर्ण व्यवस्था मानवता के लिए कलंक है। मनुष्य समाज का उच्च वर्ग जो शोषण और उत्पीड़नकारी व्यवहारों से अपने अधीन निम्नवर्ग को अत्यन्त सन्त्रस्त करता है, उसे अपना जीवन दूभर कर देता है, दिनकर की दृष्टि में यह व्यवहार अत्यन्त हेय ही नहीं, बल्कि मानवता के लिए अत्यन्त विघातक है। दलित वर्ग पर आज भी अनेकानेक अनाचार एवं अत्याचार हो रहे हैं। समाज के शोषित एवं दलित वर्ग के प्रति दिनकर के हृदय में अपार सहानुभूति ही नहीं उनकी दशा सुधारने के लिए क्रान्तिकारी आवेश भी हैं। स्पृश्यास्पृश्यता की भेदभावना अमानवीय है। समाज के वैषम्य के प्रति दिनकर का आक्रोश उनकी अनेक कविताओं में उग्र शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है :--

अस्पृश्यता को कवि कलंक समझता है। इस कलंक से त्राण पाने के लिए वह महात्मा गौतम बुद्ध से सहायता की याचना करता है।

दौड़ो बोधिसत्व ! भारत में मानवता अस्पृश्य हुई ।

x x x

अनाचार की तीव्र आँच में अपमानित अकुलाते हैं ।
जागो बोधिसत्व । भारत में हरिजन तुम्हे बुलाते हैं । [1]

उपर्युक्त मानवता-चिन्तन देश की तत्कालीन राष्ट्रीय भावना के अनुरूप था । यदि अपने युग की मानवता की कराह को शब्द बद्ध न किया जाये तो कवि युग कवि के आसन पर कैसे प्रतिष्ठित हो सकता है? इस परिप्रेक्ष्य में दिनकर एक ऐसे राष्ट्रकवि हैं, जिन्होंने ज्वलंत राष्ट्रीय समस्याओं को उपस्थित ही नहीं किया, वरन उनका सामाधान भी प्रस्तुत किया है । इसलिए वे मानवता के उन्नायक एवं राष्ट्रीयता के भावों से ओत-प्रोत विशिष्ट कवि हैं ।

1:-- रेणुका - बोधिसत्व - दिनकर, पृ0 - 18

अन्तर्राष्ट्रीयता :--

जब व्यक्ति, व्यक्तिवाद के घेरे से निकलकर समाज के विस्तृत प्रांगण में प्रवेश करता है तो उसकी व्यक्तिगत वेदना विश्व-जनीन वेदना बन जाती है। दिनकर उस भारतीय परम्परा के प्रतिनिधि चिन्तक हैं, जो ऋषि-मुनियों द्वारा स्थापित रही है। क्योंकि भारतीय ऋषि-मुनि पर्ण-कुटीरों में रहकर विश्व कल्याण के लिए अपना सम्पूर्ण अध्ययन, चिन्तन-मनन समर्पित करते रहे हैं। युगों-युगों से अहिंसा, शान्ति, समाज, कल्याण और विश्व बन्धुत्व की भावना का संवर्द्धन करते आ रहे हैं। हिन्दी के कवियों में अपनी इस श्रेष्ठ प्राचीन परम्परा का साथ देते हुए विश्व-बन्धुत्व की भावना और भी तीव्र रूप में उनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुई है। उनकी भावना प्रमुखता विश्व-बन्धुत्व की रही है, 'वसुधैव कुटुम्बकम' की रही है। उन्होंने जितनी रचनाएं की इसी उदात्त भावना के अन्तर्गत की है। दिनकर की अन्तर्राष्ट्रीयता की पावन भावना प्रान्त एवं देश की संकीर्ण परिधि से ऊपर उठकर अन्तर्राष्ट्रीयता की व्यापक भावना में पर्यवासित हुई है। उनका काव्य सह अस्तित्व-सहिष्णुता, मातृत्व-भावना की स्रोतास्विनी धारा से आप्लावित है। निम्नांकित पंक्तियां उसका स्पष्ट प्रमाण हैं :---

मैं भी सोचता हूं जगत से कैसे उठें जिघांसा,
किस प्रकार फैले पृथ्वी पर करुणा प्रेम, अहिंसा,

जिये मनुज किस भाँति परस्पर होकर भाई-भाई
कैसे रुके प्रवाह, क्रोध का कैसे रुके लड़ाई,
पृथ्वी पर हो साम्राज्य स्नेह का, जीवन स्निग्ध-सरल हो,
मनुज प्रकृति से विदा सदा का दाहक-द्वेष गरल हो ।" [1]

जिस प्रकार राष्ट्रीय समस्यायें कवि दिनकर के हृदय को स्पन्दित करती है, और कवि उनके समाधान के प्रति जागरूक रहा है, वैसे ही उनके विशाल हृदय में सम्पूर्ण विश्व की समस्यायें भी उद्वेलित होती रही हैं। युद्ध सह अस्तित्व की भावना को नष्ट करता है। कवि युद्ध-प्रेमी साम्राज्यवादियों को चेतावनी देता है ---

'रण रोकना है तो उखाड़ विषदन्त फेंको,
वृक-व्याघ्र-भीति से मही को मुक्त कर दो,
अथवा अजा के छागलों को भी बनाओ व्याघ्र,
दाँतों में कराल कालकूट-विष भर दो,
वट की विशालता के नीचे जो अनेक वृक्ष,
ठिठुर रहे हैं उन्हें फैलने का वर दो,

1:--- कुवाल - अहिंसा और शान्ति - दिनकर, पृ० - 194

रस सोखता है जो मही का भीमकाय वृक्ष,
उसकी शिरायें तोड़ो, डालियाँ कतर दो ।"[1]

इस प्रकार दिनकर की राष्ट्रीयता सदैव अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर अग्रसर रही है । लेखक का 'कुरुक्षेत्र' का चिन्तन मात्र भारत की सीमाओं में आबद्ध नहीं, वरन् समस्त की मानव-जाति को केन्द्र स्थान में रखकर ही प्रस्तुत किया गया है । विश्व कल्याण की भावना निश्चय ही उसमें निहित है :--

"यह प्रगति निस्सीम ! नर का यह अपूर्व, विकास
चरण तल भूगोल ! मुट्ठी में निखिल आकाश ।
किन्तु है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूटकर पीछे गया है रह हृदय का देश ।
नर मनाता नृत्य नूतन वृद्धि का त्योहार
प्राण में करते दुखी हो देवता चीत्कार ।"[2]

दिनकर सामाजिक वैषम्य की समाप्ति करके, विश्व मानवता के लिए प्रेम एवं करुणा का सन्देश देते हैं । उनकी मान्यता है कि प्रेम एवं करुणा से ही विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है ।

1:-- कुरुक्षेत्र - दिनकर - सप्तम सर्ग, पृ0 - 94

2:-- वही, पृ0 -82, षष्ठ सर्ग

आज विश्व युद्ध के कगार पर खड़ा है । आज का युद्ध निश्चित रूप से मानवता का सम्पूर्ण संहार करने में समर्थ है । इसलिए दिनकर इस भयंकरता को समाप्त करने के लिए मानव मात्र को प्यार का सन्देश देते हैं :--

"दाह भू का हरो, पन्थ शीतल करो,
विश्व का सर भरो, वारि की धार से,
ओस का जाल दो, चाँदनी डाल दो,
आदमी का हृदय, सींच दो प्यार से ।" [1]

दिनकर जी विश्व कल्याण के लिए भारतीय चिन्तन को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं । प्रेम, शान्ति एवं करुणा के श्रेष्ठ विचारों को अपनाकर ही विश्व-शान्ति स्थापित हो सकती है । इसके लिए प्रत्येक राष्ट्र को इस विचारधारा के अनुकूल बनना पड़ेगा । कवि दिनकर की अन्तर्राष्ट्रीयता का सुस्पष्ट अंकन उनकी 'हिमालय का सन्देश' कविता में मिलता है । इसमें दिनकर की राष्ट्रीयता की भावना का चरम परिपाक दिखाई देता है --

---

1:-- कवाल - हिमालय का सन्देश - दिनकर, पृ0 - 265

किसी एक को नहीं बदलना होगा साथ सभी को,
करना होगा ग्रहणशील भारत का निखिल मही को,
शमित करेगा कौन वह्नि का जाल बिछाकर,
रोकेगा विस्फोट विश्व को, बल से कौन दबाकर?
तब उतरेगी शान्ति, मनुज का मन जब कोमल होगा,
जहाँ आज है गरल, वहाँ शीतल गंगाजल होगा,
देश-देश में जाग उठेंगे जिस दिन नर-नारी,

साधना इस व्रत की भारी।"[1]

कवि का यह व्यापक दृष्टिकोण है कि यदि सम्पूर्ण विश्व में सुख-शान्ति तथा प्रेममय वातावरण स्थापित हो जाये तो प्रत्येक राष्ट्र को उन्नति का समुचित अवसर प्राप्त होगा दिनकर की राष्ट्रीयता की यह विशाल एवं व्यापक अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना विश्वकल्याण के लिए सतत् प्रयत्नशील दिखाई देती है।

1:-- चक्रवाल - दिनकर - हिमालय का संदेश, पृ0 - 278

दिनकर की राष्ट्रीय भावना की साहित्यिक परिणति :--

हिन्दी काव्य में राष्ट्रीयता की साहित्यिक परिणति के दो स्वरूप दिखाई देते हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व कवियों का एक वर्ग राष्ट्रीयता का चित्रण वेदना, चिन्ता और निराशा की भावनाओं से व्यक्त कर रहा था तो दूसरा वर्ग उन्हीं भावों को दबाकर आशा, उत्साह, कर्म की प्रधानता तथा पौरूषमय भावों से परिपूर्ण काव्य-सृजन कर रहा था, दिनकर जी उसी वर्ग के प्रतिनिधि है। दिनकर जी की राष्ट्रीयता को तीन सोपानों में विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम सोपान से स्वातन्त्र्य-पूर्व की कविताओं में विद्रोह का स्वर प्रखर एवं पौरूष मय है, जिसमें पराधीनता के वातावरण में अंग्रेजों एवं पूंजीपतियों के शोषण तथा अत्याचारों की प्रतिक्रिया अभिव्यक्त हुई है।

दूसरे सोपान में अर्थात स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर सन् 1962 ई0 तक के चीनी आक्रमण तक की कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर क्षीण सा होकर काव्य की अन्य भावनाओं की अभिव्यंजना करने लगा था। चीनी आक्रमण ने भारत को झकझोर दिया। अपनी पराजय के कारणों की खोज होने लगी। कवि दिनकर की

प्रखर राष्ट्रीयता की जो भावना सन् 1947 ई० के बाद कुछ मन्द सी पड़ गयी थी वह अब पुनः जागृत हुई और उसकी परिणति 'परशुराम की प्रतिज्ञा' नामक साहित्यिक कृति में हुई ।

दिनकर का काव्य सृजन सन् 1928 ई० से प्रारम्भ हुआ था । तब से लेकर सन् 1947 तक वे निरन्तर देश की सामयिक परिस्थितियों का चित्रण करते रहे । अपनी काव्य कृतियों से दिनकर जी भारतीय जनमानस को उत्साहित एवं प्रेरित करते रहे । स्वतन्त्रता प्राप्ति के मूलोद्देश्य को ध्यान में रखकर अँग्रेजों के अत्याचारों का वर्णन कर उनके शिकंजों से भारत की मुक्ति का गान करते रहे । भारत की दयनीय स्थिति का चित्रण, अतीत गान, राष्ट्र गौरव, गरिमामय भारतीय परम्परा का गान तथा वीर वन्दना करके वे देशवासियों को एक सूत्रता में बाँधने तथा देश के स्वर्णिम भविष्य के प्रति सचेत करते रहे ।

दिनकर जी की यह राष्ट्रीय भावना समीचीन थी । छायावादी कवि कोरी भावुकता और कल्पना-लोक में विचरण करना त्यागकर अब धरती के यथार्थ का गान करने लगे थे । राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रगतिवादी काव्य में परिलक्षित होती है । दिनकर के काव्य में शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति कहीं करुणामय हो उठती और कहीं अत्याचार

के प्रति आक्रोश एवं क्षोभ प्रकट करतो है । भारत में उस समय साम्राज्यवादो व्यवस्था थो । अंग्रेजो शासन और पूंजोपति वर्ग समान रूप से भारत के शत्रु थे । यहो विचार दिनकर को 'दिल्लो' नामक कविता में, अभिव्यक्त हुआ है :--

हाय? छिनो भूखों को रोटो,
छिना नग्न का अर्द्ध वसन है,
मजदूरों के कौर छिने हैं,
जिन पर उनका लगा दसन है
x x x
वैभव को दोवानो दिल्लो ।
कृषक मेघ को रानो दिल्ली।
अनाचार अपमान व्यंग्य को
चुभतो हुयो कहानो दिल्लो ।
अपने हो पति को समाधि पर
कुलटे । तू छवि में इतरातो,
परदेशो, संग गल बाँ"ो दे,
मनमें है न फूलो समातो ।" [1]

1:-- दिल्ली - दिनकर - नई दिल्लो के प्रति, पृ0 3-4

इस प्रकार दिनकर समाज के पोषक और पूँजीवाद के शत्रु रहे हैं। इनकी दृष्टि में शोषित वर्ग ही समाज की शक्ति है। अतएव उनके प्रति अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाना ही प्रखर राष्ट्रीयता है।

दिनकर की 'रेणुका' 'हुंकार', 'सामधेनी' की कविताओं में उनका क्रान्तिकारी, देशप्रेमी एवं मानवतावादी रूप अधिक स्पष्ट है। 'हुंकार' में राष्ट्रीयता की भावना अधिक प्रबल है। श्री राजदेव सिंह के शब्दों में :---

"हुंकार में कवि का प्रगतिवादी {जिसे प्रगतिशील कहना उचित है} स्वर कुछ अधिक स्पष्ट है। छायावादी विशेषताएं यहाँ आकर बहुत कुछ छंट गयी और उनके स्थान पर उसमें प्रगतिवादी विचार -- द्वन्द्वात्मक, भौतिकवादी, समाजवाद और राष्ट्रीय भावना का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक प्रबल और स्पष्ट हो गया है।" [1]

'रेणुका' की प्रारम्भिक कविताओं में कवि की सामाजिक प्रवृत्तियाँ प्रमुख स्थान लेती है। रेणुका का प्रधान स्वर राष्ट्रीयता है। जिसकी परिणति परवर्ती रचनाओं से हुई है।

1:-- राजदेव सिंह : रामधारी सिंह दिनकर : आलोचना काव्य-लोचन विशेषांक, जनवरी, 1959, पृ0 - 202

द्वितीय सोपान में दिनकर की राष्ट्रीयता की भावना में आक्रोश और प्रखरता न होकर उसकी धारा मन्द गति से प्रवाहित हुई। कवि 'स्वातन्त्र्यपूर्ण का 'अरुणोदय' कविता में स्वागत करता है, पर कवि स्वतन्त्रता का स्वच्छन्दता नहीं मानता है। स्वतन्त्रता की रक्षा करना महत्त्वपूर्ण है। आजादी एक चुनौती है :---

'आजादी वही चुनौती है, है कोई वीर जवान यहाँ?
हो बचा हुआ जिसमें अब तक, मर मिटने की अरमान यहाँ?
आजादी नहीं चुनौती है, यह बीड़ा कौन उठायेगा
खुल गया द्वार, पर कौन देश को मन्दिर तक पहुँचायेगा?" [1]

दिनकर की राष्ट्रीयता के स्वरूप ने 'नेता' शीर्षक कविता में व्यंग्यात्मक रूप धारण कर लिया है। देश के नेता जवाहर लाल नेहरू को कवि ने तत्कालीन परिस्थितियों से अवगत कराते हुए समाधान के लिए आवाहन किया है :--

---

1:-- नीम के पत्ते - दिनकर - अरुणोदय, पृ० - 15

जनता विषण्ण, जनताउदासा, जनता अधीर अकुलाती है ।
निरूपाय तुम्हारी जय पुकार वह अपना हृदय जुड़ाती है ।" [1]

x x x

है कौन जहर का प्रवाह जो तुम चाहो और रुके नहीं?
है कौन दर्पशाली ऐसा, तुम हुक्म करो, वह झुके नहीं?" [2]

कवि कीमान्यता है कि कोई भी देश महान तभी बनता है जब देशवासी देश के लिए सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तत्पर हों । 'सर्व सन्देश' में कवि ने राष्ट्र प्रेम का उदात्त स्वरूप चित्रित किया है :--

"देशों में यदि सर्वश्रेष्ठ देश बनना चाहो,
पहले सबसे बढ़कर भारत से प्यार करो ।

x x x

यह विजय, विजय है तभी,
देश भर के जन-जन के मन: प्राण
भारत के प्रति हो भक्ति पूर्ण,
प्रत्येक देश-प्रेमी अपना
सर्वस्व- देश पद-पर धर दें

1:-- नीम के पत्ते - दिनकर - जनता और जवाहर, पृ0 - 33

2:-- वही, पृ0 34

जिसमें जो भी हो तेज

आज वह उसको न्यौछावर कर दे ।" [1]

इस प्रकार राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति के साथ कवि अब अन्तर्राष्ट्रीयता का चिन्तन करने लगा । अभी तक दिनकर में स्वराष्ट्र को सर्वोपरि था पर अब उनका स्वर अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख हो गया । राष्ट्र देवता का विसर्जन शीर्षक कविता प्रतीकात्मक है । जिसमें राष्ट्रीय भाव तिरोहित होकर अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप धारण करते हैं :--

"खण्ड प्रलय हो चुका, राष्ट्र देवता ! सिधारो

क्षीरोदधि को अब प्रदाह जग को धोने दो,

महानाग फण तोड़ अमृत के पास झुकेगा,

विषधर पर आसीन विष्णु नर को होने दो ।" [2]

अर्थात राष्ट्रीय भावना विषधर नाग है तथा अन्तर्राष्ट्रीय भावना विष्णु का प्रतीक है । जिस प्रकार विष्णु की शैया शेषनाग पर है उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीयता राष्ट्रीयता के आधार पर खड़ी होगी।

तृतीय सोपान का प्रारम्भ चीनी - आक्रमण से हुआ है । कवि की शान्ति, नव-निर्माण तथा समग्र सुधार की भावना एक बार

1:-- मुक्ति तिलक - दिनकर - सर्व सन्देश, पृ0 38-39

2:-- नीलकुसुम - दिनकर - राष्ट्र देवता का विसर्जन, पृ0 - 101

उग्र रूप धारण करती प्रतीत होती है । भारतीय जनता इस आक्रमण से आक्रोश कर उठी है । कवि दिनकर ने उसी आक्रोश रूपी अग्नि को 'परशुराम की प्रतीक्षा' में आहुति डाली है । भारतीय सेना की वीरता, कई कारण से सिद्ध न हो सकी । उसका कारण था राष्ट्रीय-चरित्र का पतन, हमारी शान्तिवादी नीति और प्रशासन में सतर्कता का अभाव । 'परशुराम की प्रतीक्षा' में इन्हीं राष्ट्रीय प्रश्नों को प्रस्तुत किया गया है ।"

उपर्युक्त अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत से राष्ट्रीय भावना के जो भी तत्व उभरे, भले हो वे आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक हो सभी की साहित्यिक परिणति दिनकर के काव्य में हुई है । बीसवीं शती की राष्ट्रीय भावना के सम्पूर्ण तत्व दिनकर के राष्ट्रीय काव्य में समाहित है । दिनकर एक ऐसे व्रती हैं जिन्होंने राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का व्रत लिया था । यदि भारतीय जनता दिनकर की राष्ट्रीयता के विषय में सोचने-समझने का प्रयास करे तो राष्ट्रीय चरित्र, जो आज पतनोन्मुख है, उभर सकता है । दुख तो इस बात का है कि आज राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की बात करना पिछड़ापन माना जाता है । आज देश की सामाजिक परिस्थितियों के परिवेश में यही कहा जा सकता है कि दिनकर की राष्ट्रीयता का नये सन्दर्भ में पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए । उनका अध्ययन एवं चिन्तन व्यापक रूप से हो जिससे राष्ट्रीय चरित्र पुनः प्रतिष्ठापित हो सके ।

षष्ठम - अध्याय

माखनलाल चतुर्वेदी , व्यक्तित्व एवं कृतित्व

किसी कवि के कृतित्व का सम्यक अध्ययन करने के लिए उसके जीवन वृत्त का अनुसन्धान आवश्यक है । माखनलाल चतुर्वेदी के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि वे कला को जीवन का अनुवाद मानते हैं जीवन से कला के अनुवाद की अपेक्षा रखते हैं । इसलिए किसी अन्य कवि की अपेक्षा श्री माखन लाल चतुर्वेदी के जीवन वृत्त का अनुसंधान उनकी **कृतित्व** को भली प्रकार समझने के लिए अत्यावश्यक है -

माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म 4 अप्रैल सन् 1889 को होशंगाबाद से चौदह मील पूर्व मे बसे बाबई ग्राम में हुआ था । बाबई औरंगजेब के बाद हवेली बामड के नाम से विख्यात था जहाँ उसके गढ़ का राजा शासन करता था ।[1] यही बाबई माखन लाल जी की जन्म भूमि है ।

इनके पिता श्री नन्दलाल चतुर्वेदी प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे । इनका परिवार मूलत: जयपुर के निकट एक ग्राम का निवासी था । कवि की माता श्रीमती सुन्दरबाई चिरकाल तक यशस्वी पुत्र को अपने बरदहस्त की शीतल छाया देकर 29 अप्रैल सन् 1953 को स्वर्ग सिधार गयीं ।[2]

1- ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ : माखनलाल चतुर्वेदी, पृ0 50
2- डॉ0 रामाधार शर्मा , माखन लाल चतुर्वेदी , पृ0 3

कवि ने ममतामयी माँ के महत्व को लक्ष्य करके लिखा है - " मेरे जीवनकी कोमलतर घड़ियों का आधार मेरी माँ है मेरे छोटे से ऊँचे उठने में भी फूला न समाने वाला तथा मेरी वेदना में व्याकुल हो उठने वाला, उस जैसा कोई भी नहीं ।[1] मृत्यु पर्यन्त कवि की माता उसकी सुख सुविधा का ध्यान किये रही ।[2] यह माता के जीवन का ही प्रभाव है कि कवि प्रलयपंथी पूजा भाव का उपासक भाइयों का हित चिंतक और गोरक्षा का समर्थक रहा ।

बाबई के जिस प्राथमिक विद्यालय में पिता स्वर्गीय नन्दलाल चतुर्वेदी ने शिक्षा प्राप्त की थी उसी विद्यालय में चतुर्वेदी जी को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रविष्ट किया गया । जहाँ से सन् 1901 में प्राइमरी परीक्षा की । सन् 1905 में उन्होंने प्राइमरी टीचर्स ट्रेनिंग की परीक्षा जबलपुर से उत्तीर्ण की । विद्यार्थी जीवन में चतुर्वेदी जी बड़े मेधावी कर्तव्य परायण एवं विनोद प्रिय रहे । किन्तु दुर्भाग्य वश आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न न होने के कारण वह विद्यालयीय शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ रहे ।

कवि नेसबसे पहले विष्णु पंत जी से बंगला सीखी थी । प्रवास काल में कवि ने पाल नामक नाई से एक रूपया मासिक व्यावसायिक प्रशिक्षण पर बंगला का अध्ययन किया । चतुर्वेदी जी ने माइकेल,

---

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी : मातृ वियोग पर त्याग भूमि पौषं सं0 1984

2- श्री माखन लाल चतुर्वेदी से डॉ0 कृष्णदेव शर्मा का वार्तालाप दि0 23-4-63

सूदनदत्त, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बकिंम चन्द्र चटर्जी शरद् चन्द्र चटोपाध्याय प्रभृति विद्वानों की रचनाओं को बड़े मनोयोग से पढ़ा था। मराठी तथा गुजराती भाषा का कवि को अच्छा ज्ञान था। कवि को अंग्रेजी भाषा पर भी पूर्ण अधिकार प्राप्त था। कवि को विलियम सेक्सपियर के मर्चेन्ट आफ वेनिस, जूलियस सीजर, किंग लीयर और मैकवेथ तथा जान मिल्टन की पैराडाइज लास्ट आदि पुस्तकें विशेष प्रिय थीं।

यों तो काव्य सृजन की प्रतिभा कवि में नैसर्गिक होती है। किन्तु इस प्रतिभा के भी कुछ प्रेरक तत्त्व होते हैं। इन्हीं तत्त्वों को हम कवि के प्रेरणास्रोत भी कह सकते हैं। कवि माखन लाल चतुर्वेदी के काव्य के प्रेरणा-स्रोत मुख्यत: ये हैं -

1- प्रकृति विन्ध्या और सतपुड़ा के निर्झर प्रपात।

2- श्रीमाखन लाल चतुर्वेदी जी के काव्य पर वैष्णववाद का प्रभूत - प्रभाव है इस वैष्णववाद के उनके प्रेरणा-बिन्दु निम्नांकित है -

   1- स्वामी रामतीर्थ के भाषण

   2- स्वामी रामकृष्ण परम हंस का साहित्य

   3- उनकी पत्नी

   4- अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी।

श्री माखन लाल चतुर्वेदी के कहने पर स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी अपना सर्वस्व बलिदान करने को प्रस्तुत करते थे। स्वयं कवि उन्हें अपने

काव्य का प्रेरणास्रोत मानता है और उन्होंने स्वयं कहा है कि - ये मेरे कहने पर बड़ी से बड़ी सजा भोगने को तैयार थे ।•[1]

महाकौशल के असहयोग आन्दोलन का श्रीगणेश चतुर्वेदी जी ने "कर्मवीर" के द्वारा ही किया । "कर्मवीर" का तूफानी प्रचार प्रादेशिक सरकार को असह्य हो गया था । अतः सरकार ने चतुर्वेदी जी पर दफा 124 ‌(अ) के अनुसार विलासपुर में दिये गये 12 मार्च सन् 1921 के अभिभाषण पर राजद्रोह का अभियोग चलाया •[2] चतुर्वेदी जी को 5 जुलाई सन् 1921 को मि० पारधी द्वारा 8 मास के सपरिश्रम कारावास के प्रवासकाल मे भी कवि माखन लाल ने अनेक सुन्दर कविताओं की रचना की थी । पुष्प की अभिलाषा और पर्वत की अभिलाषा कविताएं कवि की दृष्टि मे श्रेष्ठतम रचनाएं हैं ।

सन् 1923 के झन्डा सत्याग्रह में चतुर्वेदी जी ने सक्रिय सहयोग दिया और वह भी इससत्याग्रह के अन्तिम सेनानी थे ।[3]

श्री माखन लाल चतुर्वेदी जी ने एक स्थान पर लिखा है - जीवन का काम साहित्य बनाना और गा बजाकर जिन्दगी बिताना मुझे कभी स्वीकार नहीं था । मैं कला और सृजन का सदैव हामी,

---

1- ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ, माखनलाल चतुर्वेदी पृ056
2- श्री लक्ष्मण सिंह चौहान : माखन लाल चतुर्वेदी, अमृत पत्रिका 4 अप्रैल सन् 1960
3- श्रीमाखन लाल चतुर्वेदी : अमीर इरादे ,गरीब इरादे पृ0 127

प्राणों के मूल्य भी किन्तु जो वैषम्य मैंने आस-पास की दृष्टियों में देखा भोगा और चुपचाप स्वीकार किया, वह बहुत ही कडुआ था।[1] इस बात को मुझे 30 वर्ष पहले ही व्यक्त कर देना चाहिए था किन्तु उन दिनों व्यक्त करता तो मेरा पिस्तौल का परिवार मुझे क्षमा न करता, क्योंकि मेरी "कहास" का दण्ड उन दिनों जाने किन-किन को भोगना पड़ता। आज भी मैं उसे पूरी तरह व्यक्त कर सकूँगा ? सन्देह ही है।[2] किन्तु उनसे यह किसी ने नहीं पूछा कि देश सेवा में उन पर क्या बीती उन्हें राजनीति का खेल -खेलकर मरण बरसाने वालों के द्वारा कौन-कौन से अपमान, सहन, करने पड़े और वह जीमरण त्योहार, जवानी, कैदी और कोकिला, सिपाही आदि कविताएं लिखी थी, वह कहीं स्वयं चतुर्वेदी जी परबीती घटनाएं ही तो नहीं थी जो पुष्प की अभिलाषा की छाया में खड़ी होकर वाचादान मांगती रही। यदि स्वयं चतुर्वेदी जी पर बीती का गाढ़ा रंग न होता, तो क्या उन रचनाओं के प्राणों तक कोई पहुँच पाता ? इस विषय में स्वयं चतुर्वेदी जी का कहना था कि - मैं और मेरे बन्धु - हमने जीवन के काँटे देखे ही नहीं - "हमने अक्षरों और शब्दो से जोश और ज्वाला तौल दी।[3] बलि और गीत ये युग की बीहड भूमि पर एक दूसरे के पूरक पंथी है[4] जिन्हे कवि ने अपने

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी, माता भूमिका पृ0 5
2- माखन लाल चतुर्वेदी : माता भूमिका पृ0 5
3- वही, पृ0 6
4- वही,

जीवन में साकार कर दिया था । चौसंठ वर्ष हिन्दी जगत में काम करने का आडम्बर करने के बाद भी कवि बीते वर्षों की लिखी- बेलिखी बीती घटनाओं के सामने ईमानदार लिख सकने में निरुत्तर रहा । काशी भारत धर्म महामण्डल द्वारा सन् 1935 में कवि को सम्पादक भूषण की सम्मानित उपाधि से समलंकृत किया गया । चतुर्वेदी जी को उनकी अमूल्य हिन्दी सेवा के उपलक्ष्य में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थायी समिति की 22 वैसाख संवत 2003 (सन् 1943) की बैठक के निश्चय संख्या 3 के अनुसार सम्मानार्थ (साहित्य वाचस्पति" की उपाधि सम्मेलन के करांची अधिवेशन में श्री वियोगी हरि जी के सभापतित्व में अर्पित की गयी ।"[1]

इस कवि मनीषी का आकार आर्य-जाति के आदर्श भूत समग्र शरीर गठन को अपने में समाहित किये हुए है । उज्जवल गौरवर्ण उन्नत एवं विस्तृत ललाट , आजानु बाहु हाथों की लम्बी अँगुलियाँ, अनूप आभा को आभासित भव्य मुखमण्डल उनके स्वरूप का सदैव ही स्वतः परिचय देता रहा है। उनके नेत्रों के गोलकों में चिन्तन की अगाध गहराई झाँकती है और चेहरे परमहापुरुषोचित तेज झलकता रहा है । उनके श्वेत धवल केश जैसे किसी देव दूत का आभास देते रहे हैं । आर्य गौरव की प्रतीक उनकी शिखा उनके दृढ़ संकल्पों का परिचय देती रही है । अपने पूर्ण आकार में

---

*- हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रदत्त ताम्रपत्र के आधार पर

सुरक्षित मूँछे उनकी भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा की द्योतक रही है रतनारी लपटों में दमकता सा वैष्णवी मुख, जिस पर अनुक्षण क्रीडा करने वाली मन्दस्मिति दर्शक की दर्शन लालसा की तृप्ति नही होने देती। उनके शरीरवयवों पर कविवर प्रसाद की ये पंक्तियाँ पूर्णत: घटित होती है -

" अवयव की दृढ़ मांसपेशियाँ
उर्जस्वित था वीर्य अपार
स्फीत शिरायें स्वच्छ रक्त का
होता था जिनमे संचार"[1]

विश्व साहित्य का इतिहास साक्षी है कि साहित्य सृजन में महान साहित्यकारों का उद्देश्य अर्थप्राप्ति कभी नहीं रहा है। अनुभूति के विशिष्ट क्षणों में भावों की अभिस्फुरण यथावत अभिव्यक्ति ही उनका मुख्य लक्ष्य है और यही इनकी साहित्य निर्मिति का प्रधान हेतु इन क्षणों में इनके हृदय में एक ऐसा उद्देलन होता है जिसे अभिव्यक्त किये बिना वे नहीं रह सकते। चतुर्वेदी जी ऐसे ही द्रष्टा कवि थे, जिन्होंने अपने अन्त: स्फुरित भावों को वाणी देने के उपयुक्त साधन की खोज नही की प्रेरणा पाते ही लिखना प्रारम्भ कर दिया। रामेश्वर गुरू का कथन है - " प्रेरणा मिली कि लिखा- कागज के टुकड़े पर लिफाफे के पीछे, मैली कापी के बुक के पुठ्ठे पर। इन सबका सुरक्षित रह जाना

1- श्री जयशंकर प्रसाद कामायनी पृ० 4

एक आश्चर्य की बात है ।"[1]

चतुर्वेदी जी की वह असाधारण स्वभाव ऋजुता क्या विस्मृत कर देने की वस्तु है जो उनके हृदयगत निखिल नैर्मल्य को लेकर मुख पर प्रतिभासित होती थी । उनका अन्त: और बाह्य सभी सादगी सम्पन्न था । वस्तुत: यदि माखनलाल चतुर्वेदी तथा सादगी को पर्याय मान लिया जाय तो किसी प्रकार की अत्युक्ति न होगी ।

माखनलाल चतुर्वेदी का हृदय प्राणिमात्र के प्रतिप्रेम की अजस्र धारा से पूर्ण था । ऐसा प्रतीत होता था उनके हृदय तत्व का निर्माण मानव की इसीउदार वृत्ति से हुआ था । उनका हृदय इतना करूणार्द्र था कि वह किसी भी व्यक्ति को पीड़ा सहन नही कर सकते थे, उनका समग्र काव्य इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है । देश के स्वातन्त्र्य संग्राम के सेनानी बनने में उनका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ न था । वस्तुत: विदेशियों द्वारा शोषण किये जाते हुए देशवासियों के प्रति प्रेमभावना ने ही उनके हृदय में क्रान्ति का बीज वपन किया था । हृदय में मुक्ति की उद्दाम आकांक्षा लिये हुए माखनलाल चतुर्वेदी अपने जीवन में सदैव नैकविध सघर्षों से जूझते रहे । यही कारण है कि आगत कठिनाइयों से युद्ध करना उनकी प्रकृति का एक मूल भूत अंग बन गया । उनका मनोअभिलषित उन्ही की निम्न पंक्तियों में सकदम स्पष्ट हो जाता है -

---

1- श्रीरामेश्वर गुरू : माखन लाल चतुर्वेदी §सं0 पदुमलाल पुन्ना लाल बख्शी §

सिर पर प्रलय नेत्र में मस्ती

मुट्ठी में मन चाही ।

लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है,

मै हूँ एक सिपाही ।"[1]

हिन्दी साहित्य जगत में माखन लाल चतुर्वेदी एक ऐसे व्यक्ति रहे हैं, जिनका पूरा जीवन संकटापन्न रहा है । उनकी लेखनी से जब कभी जो कुछ भी निकला है वह उनके अन्तरतम् की आवाज रही है । जब तक अनुभूत विचारों ने उनके हृदय में आकुलता जन्यआन्दोलन नहीं उत्पन्न कर दिया तब तक उनकी अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने लेखनी नहीं उठाई । यही कारण है कि उनकी कृतियाँ ,हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि बन गयी है । पुष्प की अभिलाषा कैदी और कोकिला, जवानी, मरण और त्यौहार आदि उनकी रचनाएं अनुभूत तीव्रता के ही कारण प्रत्येक साहित्य के विद्यार्थी के कण्ठ का आभूषण बन चुकी हैं ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि माखन लाल चतुर्वेदी जैसे भारतीय मनीषी के व्यक्तित्व के विषय में जितना कहा जाय थोड़ा है । उनका अन्त: बाह्य मिलकर उनके व्यक्तित्व को ऐसी भव्यता प्रदान कर देता है कि वह एक आदर्श की वस्तु बन जाता है ।

1- माखन लाल चतुर्वेदी ,हिमकिरीटनी पृ0 50

<u>व्यक्तित्व निर्माण में सहायक महापुरूष तथा साहित्यकार -</u>

कवि लोकमान्य तिलक की स्वराज्य सम्बन्धी नीति का प्रबल समर्थक रहा यद्यपि लोकमान्य तिलक पर कुछ लिखना वाङ्मयी गंगा के तट पर खड़े होकर बूंदों का रजिस्टर बनाना जैसा कठिन है । फिर भी चतुर्वेदी जी ने लोकमान्य तिलक पर तुम्हारी स्मृति और भारतीय अशान्ति के जनक नामक दो रेखाचित्र और "तिलक" नामक कविता की रचना की ।

सन् 1921 में गांधी जी ने काशी विश्वविद्यालय में अभिभाषण किया था जिसमें उन्होंने कहा था - तुम मुझे पिस्तौल दो मैं तुम्हे स्वराज्य दूंगा " । उस समय माखन लाल जी गांधी जी के व्यक्तित्व से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने पिस्तौल का समर्पण कर दिया । तब से लेकर मृत्यु पर्यन्त चतुर्वेदी जी गांधी जी की नीति का पूर्णतया पालन करते रहे । सन् 1926 में मोती लाल जी कांग्रेस तथा राष्ट्रीय कार्य हेतु खण्डवा पधारे और चतुर्वेदी जी के अतिथि रहे ।[1] यूं तो मोतीलाल जी कांग्रेस के नरमदल के व्यक्तियों में से थे, किन्तु क्रान्तिकारी कार्यों के लिए चतुर्वेदी जी को धन से सहायता किया करते थे ।

1- माखन लाल चतुर्वेदी : समय के पांव पृ० 131

चतुर्वेदी जी सुभाष चन्द्र बोस , डॉ० राजेन्द्र प्रसाद आदि से विशेष रूप से प्रभावित थे । चतुर्वेदी जी डॉ० राजेन्द्र प्रसाद को सच्चा देश भक्त मानते थे और उनकी देश सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे ।

श्री माखन लाल चतुर्वेदी जी का स्वर्गीय जमनालाल बजाज से घनिष्ठ सम्बन्ध था। इनकी मृत्यु पर वे 18 दिन तक बीमार थे ।

डॉ० पद्म सिंह शर्मा कमलेश के शब्दों में - क्रान्तिकारियों के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और रासबिहारी बोस जैसे क्रान्तिकारी तक ने उनके यहाँ आश्रय पाया ।"[1]

गीता के कर्मवाद की प्रतिष्ठा चतुर्वेदी जी के जीवन का लक्ष्य रहा है। उन्होंने इस सिद्धान्त को अपने जीवन में अवतारित किया है । कर्मवार का "कर्मवीर " जीवनपर्यन्त कर्मवीर बना रहा। उसने प्रबल शब्दों में कर्म की घोषणा की ।

कर्म है अपना जीवन प्राण
कर्म मे बसते है भगवान,
कर्म है मातृभूमि का मान
कर्म पर आओ हो बलिदान ।

1- डॉ० पद्म सिंह शर्मा, कमलेश हिन्दी गद्य काव्य पृ० 27।

चतुर्वेदी जी राधा बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे तथा राधा के श्रीकृष्ण के प्रति आत्मार्पण भाव के कायल थे। अपनी धार्मिकता के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है कि - "कृष्ण भक्ति का प्रभाव मुझ पर अधिक है। राधा का उपासक मैं अधिक हूँ। राधा के कृष्ण को समर्पित होने के कारण मैं प्रभावित हूँ। यह समर्पण कारण से अभिभूत नहीं। सच्चासमर्पण है। कारण लगाया हुआ समर्पण मुझे अच्छा नही लगता कारण रहित कृपालु। पुष्टि मार्ग को भी मै मानता हूँ। कृष्ण प्रिय इसलिए है कि वे गरीबो के साथ है। सिंह वालो के साथ नहीं। राम मेरे दोस्त मेरे लिए स्कूल मास्टर है। श्रीकृष्ण मेरे दोस्त है मैं कृष्ण को लोकरक्षक मानता हूँ।"[1]

श्री माखन लाल चतुर्वेदी सन् 1903 से मृत्यु पर्यन्त साहित्य क्षेत्र में सक्रिय रहे। उन्होंने स्वयं भी साहित्य सर्जना की और दूसरों को भी लिखने की प्रेरणा दी। जिनसे वे अधिक प्रभावित हुए -श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, श्री वियोगी हरि, हरिकृष्ण प्रेमी, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, डॉ० हरि वंशराय बच्चन -डॉ० विनय मोहन शर्मा कमलेश, रामधारी सिंह दिनकर, सुभद्रा कुमारी चौहान, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय" डॉ० लक्ष्मी नारायण दुबे, महादेवी वर्मा आदि।

1- श्रीकृष्ण देवशर्मा : नवभारत टाइम्स, 3 अप्रैल 1966

चतुर्वेदी जी के सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध उपन्यासकार पद्म भूषण डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा के ये शब्द विस्मृत नहीं किये जा सकते - चतुर्वेदी जी का व्यक्तित्व उच्च व्यक्तित्व उज्जवल ।"[1] उनकी वाणी और व्यक्तित्व ने तो नजाने कितने व्यक्तियों को उच्च कोटि का लेखक बनाया है ।

रामधारी सिंह दिनकर ने उनके व्यक्तित्व की झांकी प्रस्तुत करते हुए लिखा है - " पण्डित माखन लाल चतुर्वेदी शरीरसे योद्धा , हृदय से प्रेमी, आत्मा से विहवल भक्त और विचारों से क्रान्तिकारी है ।"[2] वस्तुत: उनके व्यक्तित्व में इन चारों गुणों का अद्भुतपूर्ण समन्वय हुआ है जो नि:सन्देह स्पृहणीय है बन गया है ।

सुश्री विद्यावती कोकिल ने उनके व्यक्तित्व को इस प्रकार चित्रित किया है - उनका व्यक्तित्व ही ऐसा है कि आपने श्री कोमल चमकीले, सुन्दर रागात्मक और समर्पणात्मक तत्वों की पिटारी अपने अन्तर के किसी बन्दकमरे में छिपाकर रख छोड़ी है वह उनके सामने आते ही स्वाभाविक रूप से खुलने लगती है और आप उस परकोई बनावटी नियन्त्रण नही लगा सकते । एक बार मिलने के बाद कोई भी उनके पास से कतरा कर नही निकल सकता । वे यथा नाम तथा गुण ही नही तथा रूप भी है । वे माखन की भाँति ही कोमल, आकर्षक शुद्ध एवं रसमय है, उनका

1- वृन्दावन लाल शर्मा का डा0 कृष्णदेव शर्मा को लिखित पत्र दि0 29-12=63

2- रामधारी सिंह दिनकर: मिट्टी की ओर , पृ0 37

आकार भी माखन की भाँति अमल धवल और स्निग्ध है। उनके विचार संसार के वादों और आदर्शों से मथकर निकाले गये सामंजस्य सार है। आधुनिक ढंग से जोकर दिखाने का प्रयास कर रहा है। इस संक्रान्तिकाल में विचारों के न जानेकितने वाद चलाये और अपनाए, पर भारतीय संस्कृति में पगे हुए उनके विचारों ने अपनी अग्नि में आधुनिकता को ढाला है, वे उसमें ढले नहीं हैं। इस प्रकार वे सभी परिवर्तन वादियों को एक चुनौती, सी देते हुए एक उन्नतपर्वत की भाँति खड़े है। ..... वे एक रक्ताभ अग्निल गुलाब के समान हैं।[1]

उनके व्यक्तित्व में कितना आकर्षण, भव्यता, विराटता और उदारता विद्यमान थी, यह श्री नारायण अग्निहोत्री के शब्दों में द्रष्टव्य है - उनका (माखन लाल चतुर्वेदी) का व्यक्तित्व समुद्र के वक्ष पर तैरते हुए आइस वर्ग की भाँति शुभ्र, स्वच्छ एवं अपनी गोपनीयता में विशाल हैं। दादा जी का यह व्यक्तित्व जितना ही निकट से देखा जाय उसकी विविधता और विशालता उतनी ही अधिक स्पष्टता से एक श्रद्धा सम्पन्न साहित्यिक साधक के समक्ष अपने को उधार कर रख देगी।[2]

1- सुश्री विद्यावती कोकिल का कृष्णदेव शर्मा को लिखित पत्र 17-2-64

2- श्रीनारायण अग्निहोत्री का श्री कृष्णदेव शर्मा को लिखित पत्र (2-1-63)

माखनलाल चतुर्वेदी का कृतित्व

अपने व्यक्तिगत जीवन में स्वतन्त्रता संग्राम के कर्मठ सैनिक बलिपंथी अद्वितीय क्रान्तिदर्शी पत्रकार और साहित्य क्षेत्रमें एक भारतीय आत्मा के नाम से विख्यात पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी सुदीर्घकाल से सन् 1904 से जनवरी सन् 1968तक अनवरत साहित्य सृजन करते रहे [1] और प्रत्येक क्षेत्र में उनमें वही ताजगी तारूण्य दिखाई दिया जो उनके साहित्य सृजन के आरम्भिक काल में था ।

चतुर्वेदी जी प्रतिभाशाली साहित्यकार थे उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी । उन्होंने काव्य, गद्य निबन्ध, गद्य-काव्य, रेखाचित्र और संस्मरण नाटक और कहानी सभी क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाई । इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में चतुर्वेदी जी की प्रकाशित तथा अमुद्रित रचनाएं निम्नलिखित हैं ।

"हिमकिरीटिनी (सन् 1943), हिमतरंगिनी (सन् 1949) माता (सन् 1951), युगचरण (सन् 1956) समर्पण (सन् 1956) बेजुबी गजेधरा (सन् 1960) आजके लोकप्रिय हिन्दी कवि माखन लाल चतुर्वेदी (सन् 1960) संकलन सम्पादक श्री हरि कृष्ण प्रेमी, आधुनिक कवि- भाग 6

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी की अन्तिम रचना वीर जवाहर (कविता) है जो कविता प्रकाशन, अलवर से प्रकाशित युगपुरूष की विदा पर नामक कविता संग्रह में संकलित है - लेखक ।

§संकलन सन् 1960§ मरण ज्वार § सन् 1963§ बीजुरी काजल आज रही § सन् 964§ ।

गद्य - साहित्य देवता § सन् 1943§ अमीर इरादे गरीब इरादे § सन् 1960§ समय के पाँव §सन् 1962§ चिन्तन की लाचारी सन् 1965 ।

नाटक - "कृष्णार्जुन युद्ध" §सन् 1968 § ।

कहानी - कला का अनुवाद § सन् 1954§ ।

काव्य - धूमवलय ।

गद्य - रंगों की बोली, पाँव- पाँव ।

इस प्रकार चतुर्वेदी जी के 11 काव्य संग्रह 6 गद्य कृतियाँ 1 नाटक और एक कहानी संग्रह हमारे सामने है। यहाँ इन सबका अनुशीलनात्मक परिचय प्रस्तुत है ।

हिमकिरीटिनी -

ऐतिहासिक दृष्टि से हिमकिरीटिनी" श्री माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं का प्रथम प्रकाशित संग्रह है। इसमें चतुर्वेदी जी की सन् 1913 से लेकर सन् 1940 के मध्य लिखी गयी कविताए संकलित हैं ।

हिमकिरीटिनी में समर्पण और बलिदान ही तो सारे गीतों की अन्तर्ध्वनि हैं ।[1]

1- श्री प्रद्युम्नलाल पुन्नालाल बख्शी । माखन लाल चतुर्वेदी, एक अध्ययन, आलोचना भाग, पृ0 7

"हिमकिरीटिनी" की कविताओं में प्रधान स्वर राष्ट्रीयता-बलिदान की भावना का है। हिमकिरीटिनी भारत माता का प्रतीक है। इन कविताओं में कवि ने हिमकिरीटिनी अर्थात् भारत माता पर न्यौछावर होने के लिए देश के तारूण्य को ललकारा है बलिदान और क्रान्ति के लिए आह्वान किया है।

हिमकिरीटिनी का दूसरा प्रमुख स्वर कवि के उपास्य देव के प्रति आत्म निवेदन और समर्पण का है, जिसमें कही प्रेम- कही रहस्यात्मक भावना और कहीं समर्पण की भावना अभिव्यक्त हुई है। पूजा इस दृष्टि से सर्वाधिक सुन्दर रचना है।

चतुर्वेदी ने स्वयं कहा है - शृंगार की परम सुकोमलता और आकर्षणशीलता जब मेरी आस्थाओ को गुदगुदा उठती है, तब मैं कभी उसे देश पर कभी देव पर और कभी मानव पर और कभीप्रभु पर चढ़ाने का मोह संवरण नही कर सकता।"[1]

हिमकिरीटिनी" में समर्पण और बलिदान की भावना का मनोमुग्धकारी समाहार है जिसकी एक दिशा में प्रलयकर शंकर की संघर्षमयी पुकार है तो दूसरी ओर शिव शंकर की कल्याणमयी मनुहार। कैदी और कोकिला इस प्रकार की कविता का सर्वोत्तम उदाहरण है। जिसमें कोकिला कीपुकार चतुर्वेदी जी के हृदय में बसे हुए मधुर कवि और बलिपंथी को एक साथ जगा देती है।

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी आधुनिक कवि - 6 भूमिका पृ0 11

"हिमकिरीटिनी" में भाषा की सफाई अभिव्यक्ति की वक्रता विरोधाभास का प्रचुर प्रयोग मुहावरे और उर्दू शब्दों का प्रयोग भावानुकूल हुए है कवि हृदय के समर्पण की यह काव्य संकलन - व्यापक अभिव्यक्ति है ।

हिमतरंगिनी -[1]

हिमतरंगिनी श्री माखनलाल चतुर्वेदी की 55 कविताओं का दूसरा संकलन है । इन कविताओं में चतुर्वेदी जी के व्यक्तित्व का केवल मधुर कवि - भावुकनारी - वाला अंश ही प्रतिध्वनित हुआ है, उनका समग्र व्यक्तित्व नहीं । चतुर्वेदी जी का भक्त हृदय हिमतरंगिनी की कविताओं में अपने आराध्य के सम्मुख समर्पित होकर अपने हृदय की अभिव्यक्ति कर रहा है ।

हिमतरंगिनी में समर्पण भावना की अभिव्यक्ति मुख्यत: दो रूपों में हुई है। इनकी कुछ कविताओं में वैयक्तिक भाव चेतना कवि की व्यक्तिगत वेदना को भी वाणी मिली है ।

(क) छायावादी प्रणय और रहस्य भावना के गीत,

(ख) मध्यकालीन भक्ति भावना के पूजा गीत और

(ग) वैयक्तिक भाव चेतना के गीत ।

हिमतरंगिनी में छायावादी प्रणय और रहस्यभावना के गीतों की संख्या 20 है। जिनमें कवि हृदय के दर्द-पीड़ा की वैयक्तिक अनुभूति

1- प्रकाशक - भारती भण्डार -इलाहाबाद । प्रथम संस्करण सन् 1954

और उसके बीच से फूट पड़ने वाली रहस्यात्मकता का स्वर सुनाई पड़ता है । "जो न बनपाई तुम्हारे, बोल राजा स्वर अटूटे यह अमर निशानी किसकी है गीत इस प्रकार के गीतों में सर्वश्रेष्ठ है ।

हिमतरंगिनी में मध्यकालीन भक्ति भावना के पूजागीतों की संख्या भी 20 है । इनगीतों में कही आराध्य के प्रति समर्पण भावना कहीं उपालम्भ और कहीं स्वाभिमान की भावना दिखाई देती है "जब तुमने यह धर्म पढ़ाया बोल राजा, बोल मेरे आदि गीत इसी प्रकार के हैं ।

हिमतरंगिनी की सबसे सुन्दर रचनाएं वैयक्तिक भाव चेतना के गीत है जिनमें कवि ने व्यक्ति वेदना को वाणी दी है । दिसम्बर सन् 1914 में अपनी पत्नी के स्वर्गवास परलिखा गया गीत "भाई छेड़ो नही मुझे" सर्वश्रेष्ठ है जिनमें वेदना का नितान्त निरावृत रूप देखने को मिलता है ।

कला की दृष्टि से हितरंगिनी "कवि की अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति है भाषा शैली की नवीनता, चतुर्वेदी जी के अन्य कविता संकलनों की भाँति इस संग्रह की विशेषता है । कवि प्रायः अनुभूति के अतिरेकों में स्वाभाविक अभिव्यक्ति को ही लेकर चला है उसे अभिव्यक्ति के उपादानों की चिन्ता कम ही है। इस संग्रह की सभी कविताएं चतुर्वेदी जी के भावुक हृदय की कम्पन स्फुरण बन पड़ी हैं ।

माता [1]

श्री माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं का तीसरा संग्रह माता है। इस काव्य संग्रह का "माता नामकरण चतुर्वेदी जी की राष्ट्र – पूजा का प्रतीक है और रचना काल की परिधि राष्ट्रीय जागरण के सम्पूर्ण इतिहास को समेटे हुए है।

चतुर्वेदी जी ने एक ओर राष्ट्रीय जागरण को अपनी कविताओं में वाणी दी दूसरी ओर छायावादी प्रणय भावना को विशेष रूप से वैष्णव आस्तिकता और आत्म समर्पण की वृत्ति से मण्डित होकर आध्यात्मिक प्रणय भावना के रूप में अभिव्यक्त किया है माता संग्रह की कविताओं के ये ही दो मुख्य स्वर है जिनमें राष्ट्रीय चेतना की वाणी को प्रमुखता मिली है।

माता की कविताओं में मुख्य स्वर राष्ट्रीयता की भावना है जिसमें बलिपंथ –व्यंग्य, युग चित्रण, राष्ट्र गौरव आदि भावनाओं को वाणी मिली है। स्वदेश में देवत्व की भावना करके तथा उसके चरणों पर अपनी व्यक्तिगत भावनाओं का उत्सर्ग करके तिलक और माधवरावसप्रे की क्रान्तिकारी देशभक्ति के आवेग में एक भारतीय आत्मा ने बलिपंथ स्वीकार किया था।[2] उन दिनों देश प्रेम का अर्थ ही आत्मबलिदान था इसलिए

1– प्रकाशक – भारती भण्डार इलाहाबाद। प्रथम संस्करण 1950

2– डॉ0 जगदीशगुप्त {माता} {परिचय} आलोचना, अप्रैल 1954, पृ0 79–80

चतुर्वेदी जी की कविताओं में बलिपंथ का विशेष आग्रह किया गया है।

"माता" संग्रह की कुछ कविताए कवि की राष्ट्रीयभावना और वैष्णव आस्तिकता की अभिव्यक्ति के आवरण में लिपटी होने पर भी विशिष्ट विषयों पर लिखी विशिष्ट रचनायें मिलती है । ये रचनाएं है - जयगीते , भारत के भावी विद्वान, मेरी रमवन्ती, तुम्हारा स्मरण, कविता कल्याणी । अन्तिमतीन कविताओं में चतुर्वेदी जी ने कविता सम्बन्धी प्रेरणा और कविता सम्बन्धी आदर्श और उसमें निहित लक्ष्य एवं दृष्टिकोण की व्याख्या की है । इनमें भी राष्ट्रीय भावना का प्रकाश्य है ।[1]

माता काव्य संग्रह की रचनाओं में विशिष्ट मन:स्थिति का चित्रण हुआ है जैसे- माँ का मन "व्याकुल " आदि मे और कुछ में प्रगतिशील विचारो को भी अभिव्यक्ति मिल जाती है जैसे- मैने धूनी रमायी ।

कला की दृष्टि से "माता" संग्रह कीरचनाएं भाषा की प्रौढ़ताप्राञ्जलता परिष्करण और अलंकरण साथ ही प्रवाह सहजता प्रान्तीय प्रभाव और भाषा की ध्वन्यात्मकता कापरम निदर्शन प्रस्तुत करती हैं ।

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी "माता" मेरीरमवन्ती, पृ0 93

शब्द योजना की दृष्टि से "माता" संग्रह की कविताएं सुष्ठुता और कसावट का परिचय देती है । कवि ने अलंकरण का प्रयोग भी इन कविताओं में किया है साथ ही कुछ प्रान्तीय शब्द भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं जैसे - दुख: भोगी कविता मे फल्यौ, मिल्यौ, काँपत आदिक्रिया प्रयोग और माँ का मन कविता में नाहि , रहियो आदि शब्द योजना । अमीर, हजार, इरादे जैसे उर्दू शब्द यत्र-तत्र मिल जाते हैं ।

युग चरण[1]

"युग चरण " चतुर्वेदी जी की कविताओं का चौथा प्रकाशित संग्रह है । इन कविताओं में सबसे अधिक संख्या राष्ट्रीय भाव भूमि पर लिखित रचनाओं की है । स्थूल दृष्टि से इन रचनाओं को दो वर्गों में रखा जा सकता है -

(क) राष्ट्र के प्रति युगानुरूप आह्वान की कविताए ।

(ख) बलिदान की भावना से समन्वित राष्ट्रीय भूमि की कविताएं ।

प्रथम वर्ग की कविताओं में स्वतन्त्रता प्राप्ति से उद्भूत प्रसन्नता और गौरव तथा स्वाभिमान नये युग की आवश्यकताओं के अनुकूल राष्ट्र के प्रति आह्वान , युग चित्रण ,सामयिक भावनाओं , व्यक्ति पूजा और राष्ट्र पूजा की भावनाओं को वाणी मिली है । "विजय की स्मरण वेला " क्यों आये हो, सीमाओं के अक्षर और "भारती" आदि इसी प्रकार की

1- प्रकाशक- भारती भण्डार इलाहाबाद । प्रथम संस्करण सन् 1956

कविताएं है। इन कविताओं में राष्ट्र का आह्वान करते हुए वीरपूजा और उनके गौरव का स्मरण, कृषक पूजा और राष्ट्र के प्रति कर्तव्य भावना की ओजपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है ।[1]

बलिदान की भावना से समन्वित सभी कविताएं स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व लिखी गयी हैं । इनमें पुष्प की अभिलाषा कविता चतुर्वेदी जी की प्रतिपाद्य कविता है और उनकी बलिदान भावना का चरम उत्कर्ष है प्रदर्शित करती है । इस वर्ग की अन्य कविताएं है - सेनानी से चेतावनी सत्याग्रही क्रन्दन और मूर्छित सौरभ ।

युगचरण में चतुर्वेदीजी की कुछ कविताए कवि के भक्त-हृदय से निःसृत है । इनमें रहस्य भावना की कुछ कुछ अस्पष्ट सी अभिव्यक्ति हुई है "मृत्यु" यह भी न बने, वह भी न बने, और दूर "मृत्यु " बाँसुरी" ऐसी ही कविताए हैं ।

युगचरण" की बंग जननी कविता में कवीन्द्र रवीन्द्र का स्मरण किया गया है। अतीत गौरव का चित्र भी इसमें सुन्दर बन पड़ा है ।

"युगचरण" में संग्रहीत कविताओं का अभिव्यक्ति पक्ष सहज है - उसमे वैसी कलात्मकता नही जो चतुर्वेदी जी की समर्पण और प्रकृति-पूजा सम्बन्धी कविताओं में मिलती है - जैसे - हिमतरंगिनी की

1- श्री माखनलाल चतुर्वेदी युगचरण विजय की स्मरण बेला पृ० ।

कविताओं में । अपने नामकरण के अनुकूल ही युगचरण की कवितायें सहज शैली में युग की वाणी देती है । फिर भी स्थान-स्थान पर कवि की अभिव्यक्ति सम्बन्धी सामान्य विशेषताएं स्पष्टता से उभरी हैं। "भारती और बंगजननी कविताओं में जँहा तत्समता प्रधान है वहीं यत्र-तत्र गुस्ताख जवानी दिलवर का दिल जिद दिलदार दोजख जैसे उर्दूशब्दों का प्रयोग कवि ने स्वतन्त्रता पूर्वक किया है, कुल मिलाकर अभिव्यक्ति की सहजता ही इन कविताओं का प्राण हैं ।

समर्पण[1]

समर्पण श्री माखन लाल चतुर्वेदी की मूल भावधारा की दृष्टि से नितान्त वैविध्यमयी कुछ राष्ट्रीय कुछ रहस्य-भावना परक और आराधना सम्बन्धी कुछ कोमल प्रणय भावना की अनुभूति मे गुम्फित और कुछ नये विचारो की अभिव्यंजना करने वाली 82 कविताओं का संकलन है । राष्ट्रीय भावना, देशपूजा और उद्बोधन अज्ञात सत्ता के प्रति समर्पण, आराधना और रहस्य की भावना प्रकृति पूजा, प्रगतिशील दृष्टिकोण आदि इन कविताओं का मूल स्वर हैं ।

काव्यवस्तु की दृष्टि से इन राष्ट्रीय कविताओं में कहीं तो तरूणाई को अपने प्रणय के राव को प्रलयरथ के तले रखने के लिए ललकारता है, तो कहीं क्षुधित पुतलों को नाचकर रोटियों के राग गाने के लिए

1= प्रकाशक -भारती भण्डार इलाहाबाद प्रथम संस्करण- सवत् 2013

कहीं ठिठक कर तमाशा देखने वाले तरुणों की निष्क्रियता के लिए वह उनकी भर्त्सना करता है ।

राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत कविताओं के पश्चात "समर्पण" में दूसरा स्थान रहस्य भावना और आराधना-परक कविताओं का है । तुम भी देते हो तोल -तोल फूल की मनुहार उलाहना आदि इसी प्रकार की कविताएं है । इन कविताओं में कवि कहीं तो अपने इष्टदेव को अपने पास बैठा हुआ अनुभव करता है तो कहीं प्रकृति के नाना व्यवहारों में ही प्रियकी झाँकी देखता है, तो कही दुखियो की चीत्कारों और पागलों की मनुहारो में उसी अज्ञात प्रियतम के दर्शन करता है ।

समर्पण की प्रेम परक कविताएं अन्य सभी प्रकार की रचनाओं की अपेक्षा अधिक भावपूर्ण एवं मार्मिक बन पड़ी है । इनमें कही तो संयोग की अनुभूतियाँ है कही वेदना का मार्मिक चित्रण है। तुम्हारा मिलन , स्मृति का बसन्त सखि रैन आदि कविताओं में इसी प्रकार का चित्रण है ।

"समर्पण " काव्य संकलन में "लक्ष्यभेद के उतावले तीर से टूटती जंजीर बेचैनी और समय की चट्टान कविताएं सूक्त्यात्मक हूँ अभिव्यक्तियाँ हैं । इनमे कवि विशिष्ट प्रसंग की व्यंजना न करके सांकेतिक सूक्ति वाक्य कहता है -

<u>जैसे</u> – एक कहता है जोवन को कहानो बेगुनाह[1] कला को दृष्टि से इन कविताओं में न रमणोयता है न अभिव्यक्ति का वैविध्य ।

रमणोय उक्तियाँ तो चतुर्वेदो जो के काव्य का प्राण हो है । समर्पण काव्य संकलन में भो उनके अनेक उदाहरण मिल जाते हैं –"वृक्ष वल्लरो के गले मत मिल, कि सर चढ़ जायेगो यह रूदन में पुतलो पर जो को जूठन डोलेरो आदि । उर्दू शब्दो का प्रयोग इन कविताओं में कमहुआ है । संकलन में नोरस तुकबंदियां भो सम्मिलित हैं जैसे- "दूर या पास " बेचैनो आदि । पर समग्रता समर्पण काव्य संकलन रमणोय बन पड़ा है।

<u>वेणुलो गूँजे धरा</u>[2]

"वेणु लो गूँजे धराश्रो माखन लाल चतुर्वेदो के अत्यापक काव्य धरातल और मर्म स्पर्शो जोवन दृष्टि का परिचय देने वालो 72 कविताओं का संग्रह हैजिसमें कवि के जोवन दर्शन प्रकृति पर्यवेक्षण रहस्य भावना और राष्ट्रपूजा से सम्बन्धित विविध काव्य दृष्टियों का अद्भुत सम्मिलन हुआ है। उन्होंने भूमिका में लिखा है –

1– श्रो माखन लाल चतुर्वेदो समर्पण टूटतो जंजोर पृ0 82

2– प्रकाशक– भारतोय ज्ञानपोठ –काशो प्रथम संस्करण 1960

जो तुकबन्दियाँ इस संग्रह में दी गई हैं उनकी संख्या भले ही कितनी ही हो किन्तु उनके स्वर की विविधता का ही ध्यान रखना होगा ।[1] कवि के इन विविध स्वरों में जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति का स्वर सबसे प्रधान है ।

"वेणुलो गूँजे धरा" में कवि के सामान्य विचारों का जीवन दर्शन की सूक्त्यात्मक अभिव्यक्तियाँ सबसे अधिक हैं कुछ सूक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

(क) पूजा का स्वर तो स्वैर नहीं होता है
पूजा के घर बैर नहीं होता है ।[2]

(ख) प्रणय, वह अभिमान का मीठा बहाना,
त्याग वह नीलाम की दुनिया बसाना
जी रहे हैं, ठीक है कुछ कम नहीं है
प्राप्ति का वैधव्य तो संयम नहीं है ।[3]

वेणुलो गूँजे धरा में प्रकृति सम्बन्धी कविताओं का दूसरा स्थान है,। मखमल हरी मोतियों वाली चाँदनी से दूध झरता है यह बरसन आदि कविताओं में चतुर्वेदी जी ने प्रकृति के रस सौन्दर्य और शक्ति की सुन्दर झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं ।

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी वेणुलो गूँजे धरा भूमिका पृ0 3
2- वही पृ0 15
3- वही, पृ0 78

वेजुलो गूँजे धरा का एक अन्य स्वर है- प्रकृति सम्बन्धी रहस्य भावना का । बोल मानस के पंछी मन को बोली खोल नित आँख मिचौली खेल रहा, समर्पण आदिकविताओं में चतुर्वेदी के भक्त हृदय की साधना आस्तिकता, आराधना और रहस्य को सुन्दर पृष्ठभूमि मिलती है ।

वेजुलों गूँजेधरा की कुछ कविताए जैसे- "फुंकरण कर रे समय के सांप, प्यारे भारत देश, "गगन कह रहा कि ठहरो बहादुर वेणुलों गूँजेधरा आदि राष्ट्रीय एवं राष्ट्र पूजा से सम्बन्धित हैं । इन कविताओं में राष्ट्र के प्रति गौरव-भावना तथा कुछ राष्ट्रीय कविताओं के प्रति पूजा- भावना के अतिरिक्त राष्ट्र की वंदना का स्वर भी मिलता है ।[1]

वेजुलों गूँजेधरा नामकरण इस संकलन में सम्मिलित कविताओं कोभावभूमि जकेवन दर्शन और उनकी रूपाकृति का परिचायक है । स्वयं चतुर्वेदी जी ने लिखा है -" मेरे निकट तो श्याम सुन्दर मोठा आकर्षण शील परम सत्य है। जब वायु जोर से चलती है तो मुझे लगता है उसने वेणु ले ली है और जब अन्धड़का सन्नाटा सुनता हूँ तो लगता है धरा गूँजने लगी है ।[2]

इसमें सन्देह नहीं कि चतुर्वेदी का यह काव्य संग्रह - अनुभूति की उदारता व्यापक और समर्थ जीवन चेतना, वैष्णव आस्था

1- श्री माखनलाल चतुर्वेदी, वेजुलो गूँजे धरा पृ0 84

2- वही, भूमिका, पृ0 3

और कवि की अनूठी कलात्मकता का सही और सप्रमाण परिचय देता है।

आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि : माखन लाल चतुर्वेदी –

आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि माखनलाल चतुर्वेदी , चतुर्वेदी जी की 36 कविताओं का संकलन है। संकलन कीअधिकांश कविताए दूसरे काव्य संग्रहों में आ चुकी है । हिमकिरीटिनी में सम्मिलित 7 कविताएं हिमतरंगिनी में 8, माता में 3 युगचरण में । कविता पुष्प की अभिलाषा समर्पण में 10, वेणुलो गूँजेधरा में 1, धूम्रवलय में सम्मिलित 3 कविताए – तुम्हारा चित्र, रात फैल गयी, आँखि आज निहाल हो गयी, शेष तीन जो किसी काव्य संग्रह में संकलित नही है – तुम न हुए पर मेरे " कौन है कोई नहीं है सदयके अंकुर । इसमें से पहली कविता का विषय है प्रकृति जिसमें कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों को भीस्वर मिला है। शेष दोनों सूक्ति के रूप में रमणीय अभिव्यक्तियाँ हैं ।

इस संकलन के प्रारम्भ में श्री हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा लिखित चतुर्वेदी जी की संक्षिप्त जीवनी भी दी गयी है । कवि ने विभिन्न स्वरों के एक स्थान पर संकलन और कवि के परिचय की दृष्टि से यह एकसुन्दर प्रयास है ।

आधुनिक कवि : 6[1]

आधुनिक कवि: 6 श्री माखन लाल चतुर्वेदी की 79 प्रतिनिधि

1– प्रकाशक –हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण शक संवत् 1882

कविताओं का संकलन है। संकलन की कविताओं का चुनाव कवि के द्वारा ही किया गया है इस दृष्टि से कवि की काव्यगत प्रवृत्तियों का इन कविताओं में अधिक वास्तविक स्वरूप देखने को मिलता है ।

आधुनिक कवि: 6 काव्य संकलन की एक विशेषता यह है कि इसके प्रारम्भ में कवि की अपनी काव्य प्रवृत्ति के सम्बन्ध में एक व्याख्यात्मक टिप्पणी (भूमिका) भी सम्मिलित है। इस भूमिका में चतुर्वेदी जी ने काव्य के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण तो प्रस्तुत किया है अपनी काव्य प्रेरणा परभी प्रकाश डाला है – "काव्य विचार और जीवन के बीच की सुनहली कड़ी है । अन्तकरण की मनमोहिनी उथल - पुथल वह कष्ट में पड़े हुए आवश्यकता से प्रताड़ितों और मन के जहर से जहरीले होने से घबराये हुए लोगों को दौड़कर सहायक होने की कला है ।"[1]

चतुर्वेदी जी की उपर्युक्त पंक्तियाँ उनके काव्य की विभिन्न भाव-भूमियों की प्रतिनिधि कहीं जा सकती है -राष्ट्रीयता वैष्णव आस्तिकता प्रणय भावना ,प्रगतिशील दृष्टिकोण आदि सभी प्रवृत्तियाँ इन कविताओं में मिलती है ।

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी : आधुनिक कवि 6 भूमिका पृ0 7

इस संकलन की अधिकांश कविताएं चतुर्वेदी जी के दूसरे काव्य संग्रहों में आ चुकी है। आधुनिक कवि : 6 कविता संकलन की अमृत अब उगा " हरियाली दूब उठेगी और गोदी के ग्राम कविताओं में प्रकृति का रमणीय चित्रण कवि का लक्ष्य रहा है जिसमें आराधना परक समर्पण भी देखने को मिल जाता है। मिलन युगों का जाना पहचाना है और "पतझड़ कविताओं में युग चित्रण की पृष्ठभूमि में प्रगतिशील दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति मिली है। गंगा की विदा कविता एक विशिष्ट रचना है और आकार में लम्बी भी इसी प्रकार शिशु पर लिखी नजर लग जायेगी तोतली बोली भी वात्सल्य भाव की विशिष्टकृतियाँ हैं।

आधुनिक कवि : 6 संकलन के प्रारम्भ में चतुर्वेदी जी के ही हस्तलेख में उठ-उठ कोटि कोटि के महाप्राण कविता दी गयी है। उसमें कवि के व्यक्तित्व का पौरूष बल और ओजअपनी चरम परिणति को प्राप्त हुआ है।

मरण - ज्वार -

मरण ज्वार श्री माखनलाल चतुर्वेदी की 33 प्रखर राष्ट्रीय कविताओं का संकलन है सम्पादक ने संकलन के प्रवेश में अपना उद्देश्य इस प्रकार व्यक्त किया है -" मरण ज्वार श्रद्धेय दादा पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी की कुछ चुनी हुई कविताओं का संकलन है। राष्ट्र की वर्तमान

परिस्थिति को देखकर ही नहीं अन्य अनेक दृष्टि से भी यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि उनकी कविताओं का एक ऐसा संकलन प्रस्तुत किया जाय।[1] मरण ज्वार का प्रकाशन चीनी, आक्रमण के पश्चात् का है। सम्पादक ने इस परिस्थिति की ओर भी संकेत किया है -" पिछले दिनों देश की उत्तरी सीमा पर भी आक्रामक जघन्यताएं हुई है। उन्होंने एक बार फिर शरीर से टूटते हुए वर्षों से अस्वस्थ चले आते हुए 75 वर्षीय माखनलाल जी को झकझोर दिया।[2]

इस संग्रह की 33 कविताओं में 20 चतुर्वेदी जी के दूसरे काव्य संग्रहों में स्थान पा चुकी है। मरण ज्वार में उठ महाप्राण जय-जय भावमयी वाणी आजादी पर सूर्य की पुकार मुक्तक, चलो सजाओं सैन्य, बहने दो बलि पंथीधारा गांधी विनोवा और हाकिम प्राण हमारा आदि कविताएं संकलित है। इन सभी कविताओं में चतुर्वेदी जी ने बलिदान भावना राष्ट्र-पूजा भावना और अतीत गौरव की प्रेरणा की भाव भूमि में भारत की तरूणाई को राष्ट्र पर बलि होने के लिए आह्वान किया है। विशेष रूप से बूढ़ों को क्या बात युगों की तरूणाई के दिन आये है और सीमा टूट रही सिरवाले पंक्तियों में प्रारम्भ होने वाली कविताए बलिदान के आह्वान की दृष्टि से बेजोड़ हुई है।

1- श्रीमाखनलाल चतुर्वेदी मरण ज्वार सम्पादकीय भूमिका पृ0 3

2- श्री माखनलाल चतुर्वेदी मरणज्वार सम्पादकीय भूमिका पृ0 7

इनमें से पहली कविता तो अत्याधिक लोकप्रिय हुई है । राष्ट्र के प्रति यही आह्वान - इसी प्रकार का उद्बोधन मरण ज्वार में संकलित कविताओं का मूल स्वर है और इन्हें निश्चय ही इस दृष्टि से प्रखर राष्ट्रीय कविताए कहा जा सकता है ।

बीजुरी का जल आँज रही -[1]

बीजुरी का जल आँज रही श्री माखन लाल चतुर्वेदी की 34 कविताओं का संग्रह है । इस संग्रह में चतुर्वेदी जी की अपनी गहन अनुभूति चिन्तन की एक सुष्ठु रूपरेखा के साथ अभिव्यक्त हुई है ।

इस संग्रह की अधिकांश कविताएं ऐसी है, जिसमें कवि ने प्रकृति के नाना रूपों को अपनी सघन अनुभूति में रंगकर उतारा है । इन प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में कल्पना का वैभव देखते ही बनता है। जब कभी वन प्रान्त में एकान्त प्रदेश में फूलों की झूलन देखता है तो वह आनन्दोल्लास से विस्मय विमुग्ध हो जाता है । अन्तस की उदासीनता की स्थिति में कवि को ये ही फूल झूलते हुए पीले अतएव बीमार रूप में दिखाई देते है । इसी प्रकार सभी किरणों को कवि बकरियां समझ बैठता है। हृदय के उल्लास की आभा से दीप्ति होने पर सारस दल कवि कीगीत गाता हुआ प्रतीत होता है ।

1- प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, काशी प्रथम संस्करण 1965

प्रकृति सम्बन्धी पूजागीतों के उपरान्त बीजुरी काजल आँज रही में जिन गीतों की संख्या सर्वाधिक है वे ऐसे पूजा गीत है जिनमें कवि के भक्त हृदय के उद्गारो को वाणी मिली है । गीत संख्या 34, 36, 39, 43, 70 आदि इसी प्रकार की कविताए है । इनगीतों में चतुर्वेदी जी का संस्कारी मन अपने आराध्य देव को विभिन्न रूपों में स्मरण करता है । कवि के मन में भक्ति भावना का इतना अधिक प्राचुर्य है कि वह प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में भी अपने इष्टदेव, कृष्ण, राधा गोपियें ,ग्वालों को विस्मृत नहीं कर सका है ।

इस संग्रह की कविताओं में चतुर्वेदी जी के कुछ प्रणय गीत भी सम्मिलित है । दोनो आँखों के बहते झरने को रोको किस विध होता रहता मन पर यहलेना यह देना, आदि ऐसे ही गीत हैं ।

इस संग्रह के अधिकांश गीतों में प्रकृति की पूजा की गई है तथापि कवि के सहजदेशानुरागी राष्ट्रीय और बलिपंथी मन से अपने प्रिय देश की भव्य झाँकी न दूर न हो सकी है ।[1]

नवीनतावादी आधुनिक कविता युग केभावों विचारों एवं कल्पना की नूतनता इस संग्रह में देखते ही बनती है ।

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी बीजुरी काजल आँज रही, गीतस0 90
पृ0 114-15

भाषा के क्षेत्र में कवि ने इस संकलन में भाषा सम्बन्धी किसी भी रूढ़ि का पालन नहीं किया है । उसकी मूल दृष्टि भावों तथा प्रकृति व्यापारों के यथावत चित्र उतारने की ओर रही है जिसमें भाषा की उदारता ने पूरा योग दिया है। भाषा का माधुर्य ही इन कविताओं की प्रमुख विशेषता है । इसमें सन्देह नहीं कि कवि के अनुभूति गुम्फित भावों को गहराई में उतरने केलिएबड़ी सहृदयता के साथ चिन्तन करना पड़ता है ।

धूम्रवलय -

धूम्रवलय श्री माखन लाल चतुर्वेदी की 70 छोटी छोटी कविताओं का संकलन है। उनमें से 45 कविताए सन् 1956-57 ,58 इन वर्षों में लिखी गयी तथा विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है ।

इस संग्रह की कविताओं में पहला स्थान आराधना, समर्पण और रहस्य भावना की कविताओं का है। राधा तू कहा कुंजवन में अनहोनी चितवन के छलिया । यह समर्पण है आदि कविताएं विशुद्ध आराधना और समर्पण भावना को लेकर लिखी गयी है । रहस्यभावना की कविताओं में घर आकर लौट गया कोई मीठी मीठी बात मैंने वे चरण निहारलिए आदि कविताओं की गणना हो सकती है। इन कविताओं में सृष्टि के नाना व्यापारो मे उस अज्ञात प्रियतम की ही झाँकी देखी है ।

इस संकलन में दूसरा स्थान राष्ट्रीय कविताओं का है। संकलन की सभी राष्ट्रीय कविताएं स्वतन्त्रता के बाद लिखी हुई है। इसीलिए उनमें बलिपथ और उद्बोधन का स्वर नही है, बल्कि उनमें राष्ट्र के नवनिर्माण से प्रेरित व्यापक राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय भावना के ह्रास की प्रवृत्ति पर व्यंग्य को स्वर मिला है। व्यंग्य की उत्कृष्ट योजना की दृष्टि से रावी का तट यमुना का तट, विशेष प्रभावपूर्ण, ओजगुण सम्पन्न और समर्थ कविता बन पड़ी है।

धूमवलय काव्य संकलन में कुछ कविताएं प्रणय भावना की अनुभूति को लेकर लिखी गयी है एवं कुछ कविताओं में कही रहस्य तो कही समर्पण और प्रगतिशील विचारो की रमणीय झाँकियाँ प्रस्तुत की गयी है, संकलन की रूप की बाँसुरी और अर्चना के अश्रु, कविताओं में भक्त्यात्मक अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं।

धूमवलय में कुछ विशेष रचनाएं भी सम्मिलित है जिन्हें कहीं तो व्यक्ति पूजा का स्वर मिला है कही काव्य प्रेरणा की व्याख्या। बापू का बरस दिन बूँद-बूँद झर उठे गानबोधे व्यर्थ आदि ऐसी ही कविताए है। चिरअमन्द मकरन्द कविता में चतुर्वेदी जी ने विश्व शान्ति का सन्देश दिया है गान बोधे व्यर्थ कविता एक विशेष मनःस्थिति का अभिव्यक्ति है जिसमें वेदना को वाणी मिली है।

इस संकलन की कविताओं में अभिव्यक्ति की सफाई और प्रौढ़ता भाषा का विशिष्ट प्रवाह और ओज देखने को मिलता है। भाषा के ओज गुण और सामर्थ्य की दृष्टि से प्रस्तुत संकलन की बापू का बरस दिन, भूदान पंथी, तेरा चौड़ा व्रात आदि कविताए विशेष प्रभावपूर्ण बन पड़ी हैं। कुल मिलाकर प्रस्तुत संकलन कवि के नवीन दृष्टिकोण की सुन्दर अभिव्यक्ति है।

साहित्य देवता[1]

साहित्य देवता[1] चतुर्वेदी जी के 33 भावात्मक गद्यखण्डों[2] का संग्रह और एक श्रेष्ठ गद्य काव्यकार और अद्वितीय शैलीकार के रूप में उनकी कीर्ति का प्रथम आलोकबिन्दु हैं। आलोचकों ने साहित्य देवता के इन गद्य खण्डों को गद्य काव्यात्मक निबन्ध[3] और साहित्यिक भाव प्रधान निबन्ध[4] कहा है।

साहित्य देवता में कवि के दो प्रकार के निबन्ध संकलित है। एक वे जो काव्योन्मुखी है यानी गद्यकाव्य की श्रेणी में आते हैं, दूसरे वेजो विचार प्रधान या विवेचनात्मक हैं।[5] विचार प्रधान गद्यकाव्य

1- प्रकाशक -साहित्यिक सदन खण्डवा प्रथम संस्करण सन् 1943
2- श्रीमाखन लाल चतुर्वेदी अपनी गद्य रचनाओं को प्रायः गद्य खण्ड ही कहा करते थे। द्रष्टव्य- रंगों की बोली का "आमुख।
3- डॉ0 प्रभाकर माचवे व्यक्ति और वाङ्मय पृ0 87
4- डॉ0 शिव प्रसाद सिंह हिन्दी साहित्य कोश भाग 2, पृ0 588
5- वही।

को गद्यकाव्य का एक उपवर्ग मानना चाहिए, आचार्य विनयमोहन शर्मा द्वारा उल्लिखित गद्यकाव्य और गद्यगीत में गीतितत्व की प्रधानता होती है । इसलिए उसे गीतितत्व प्रधान गद्यकाव्य कहा जा सकता है । इस प्रकार साहित्य देवता की रचनाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में करना ही उचित जान पड़ता है -

1- गद्यकाव्य   §क§ कल्पना प्रधान गद्यकाव्य
§ख§ गीतितत्व प्रधान गद्यकाव्य
§ग§ विचार प्रधान गद्यकाव्य

2- विचारात्मक निबन्ध ।

इन दोनों वर्गों की रचनाओं में भावतत्व भी प्रचुरता से मिलता है, यह पहले ही कहा जा चुका है। साहित्य देवता साहित्य की वेदी लहरें चोर विजयनामा वह वाणी आदि कविताओं की गणना कल्पना प्रधान गद्यकाव्य के अन्तर्गत की जा सकती है । गीतितत्व प्रधान गद्यकाव्य के अन्तर्गत-आंशिक तुम आने वाले हो मुरलीधर दूरी की निकटता आदिकविताएं आती है । इन रचनाओं में संगीत ध्वनित होता हुआ दिखाई देता है कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है -

तुम आने वाले होइसलिए काली जमीन अपने पर हरे चित्र, हरियाली अपने पर लाल चित्र फूलों की लाली अपने पर भ्रमरों के काले

चित्र बना रही है ।[1]

साहित्य देवता की जनता छलकनगगरी "जोगी, जीवन का प्रश्न चिन्ह आदि रचनाएं विचार प्रधान गद्यकाव्य के अन्तर्गत आती हैं ।

साहित्य देवता की अंगुलियों की गिनती की पीढ़ी महत्वाकांक्षा की राख गिर धर गीत है, मीरा मुरली है विचारात्मक निबन्धों की श्रेणी में रखी जा सकती है । इन निबन्धों की श्रेणी में रखी जा सकती है । इन निबन्धों की शैली व्यंग्यात्मक है, जिससे प्रतिपाद्य की बड़ी तीव्र और प्रखर व्यंजना नितान्त सहज रूप में देखने को मिलती है ।

साहित्य देवता में भक्ति और प्रेम-बलिदान की भावना तथा राष्ट्रीयता आदि भावधारायें की सुन्दर व्यंजना मिलती है । साहित्य देवता चतुर्वेदी जी की कला का मूर्तिमान रूप है। इसमें लाक्षणिक मूर्तिमता उक्तिवैचित्र्य मनोरम अर्थ व्यंजना और इन सबमें प्रवहमान व्यंग्य - सब मिलाकर "साहित्य देवता" की रचनाएं उच्चकोटि के मुक्तक काव्य का कलात्मक स्वरूप प्रस्तुत करती है । कहीं-कहीं भावों की दुरारूढ़ योजना भाषा के क्लिष्ट लाक्षणिक प्रयोग एवं पाठकों की बोधगम्यता से बाहर के व्यंग्य भी साहित्य देवता में मिलेंगे ।"[2]

1- श्री माखनलाल चतुर्वेदी "साहित्य देवता पृ० 117
2- डॉ० अष्टभुजा पाण्डेय हिन्दी गद्यकाव्य उद्भव एवं विकास पृ० 344 ।

चतुर्वेदी के अनुसार – उन विचारों को मेरे लेखे उससे सरल भाषा में नहीं लिखा जा सकता था।[1] वास्तव में साहित्यदेवता" का कला रूप अनुभूति की गहनता के कारण ही कहीं-कहीं गहन हो गया है जो स्वाभाविक ही है।

अमीर इरादे:गरीब इरादे[1]

अमीर इरादे गरीब इरादे चतुर्वेदी जी की दूसरी गद्य कृति है। इसमें विषय और शैली की दृष्टि से अद्भुत वैविध्यमयी संख्या में कुल 33 गद्य रचनाओं का संग्रह किया गया है। इसमें चौदह विचारात्मक लेख 6 ललित वा भावात्मक निबन्ध चार गद्यकाव्य खण्ड पाँचभाव कथाएं और चार संस्करण संगृहीत हैं।

विचारात्मक निबन्धों में कला साहित्य, काव्यऔर व्यक्तित्व आदि महत्प्रश्नों पर लेखक की मनीषा का उद्घाटन[3] मिलता है। इस संग्रह में कविता जी में उतरकर सृजनात्मक आनन्ददायी कला निबन्ध क्रम से हिमकिरीटिनी समर्पण और युगचरण" की भूमिकाओं के रूप में पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं।

1– श्री माखन लाल चतुर्वेदी पाँव-पाँव साहित्य के प्रति मेरा दृष्टिकोण पृ0 9।
2– प्रकाशक– भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्रथम संस्करण सन् 1961
3– श्रीमाखन लाल चतुर्वेदी अमीर इरादे गरीब इरादे, परिचय से।

संग्रह के बन्धुत्व कोमतो वस्तु अबोला समर्पण मौसमो बादलों को प्रतोक्षा निबन्ध ललित या भावात्मक निबन्धों को कोटि में आते हैं। इन निबन्धों में बड़ो हो बड़ो हो भावोन्मेषशालिनो शब्दावलो में प्रतिपाद्य को अभिव्यक्ति हुई है। लेखक ने इन निबन्धों में प्रतोक पद्धति का सुन्दर प्रयोग किया है। मेरा सूटकेस निबन्ध इस पद्धति का सुन्दर निदर्शन है।

रजत श्यामके "घास-पात" कहन 1913 में इस संग्रह के गद्यकाव्य हैं। गद्यकाव्य का मूल गुण - काव्यत्व और भावोन्मेष इन सभो गद्य खण्डों में देखा जा सकता है।

अमोर इरादे गरोब इरादे में लिबास इसो वक्त आ गई अधिकारो पाकर चिरजागृत- हम कभो नहीं सोया करते मजदूरो को कोमत और नोका मल्लाहिन ये पाँच छोटो छोटो भाव कथाएं है इनमें भो गद्य काव्य खण्डों के समान, किसो एक विचार सूत्र को भावपूर्ण कथात्मक शैलो में व्याख्या को गई है।

संग्रह को चार रचनाएं संस्मरण है जिनमे बचपन में प्रेम सागर पढो और कहन 1913 में रचनाओं को विशुद्ध संस्मरण के अन्तर्गत और ग्रामोणों को खेलते कूदते देखकर विचारात्मक संस्मरण कहा जायेगा। प्रेमचन्द्र शीर्षक रचना जोवनी संस्मरण और रेखाचित्र का सुन्दर सामंजस्य प्रस्तुत करतो है।

1- श्रोमाखन लाल चतुर्वेदो अमोर इरादे, गरोब इरादे पृ0 32

इस संग्रह के विचारात्मक निबन्धो में और कहीं -कहीं रचनाओं में भी चतुर्वेदी जी के विचार और चिन्तन की मर्यंत और सुस्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है ।

विषय और साहित्य विधाओं की विविधता के कारण इस कृति में शैली का भी अद्भुत वैविध्य देखने को मिलता है । इसमें कहीं तो नितान्त भावात्मक और कलात्मक गद्य का"चोंची का मुरब्बा जैसा अचम्भा ईमान बेचकर रोटियाँ खरीदना[1] बोलने का रोजगार[2] जैसी अभिव्यक्तियाँ और आम्रवृक्ष की बौरती डाल पर मर्कत अपनी अभिनयप्रियता से महकता वैभव भूमि पर बिखेरे कर अपनी हलचल के परिणाम से इतने बेखबर कि किसी के तारूण्य का सम्पूर्ण वैभवलूटकर गोद का नन्हा साधन जैसे बेखबर हो ।[3] जैसी कलात्मक अभिव्यंजना सभी रचनाओं में मिलेगी । विषय और शैली दोनो की दृष्टि से यह कृति चतेर्वेदी जी के स्वतंत्र चेता और अद्वितीय शैलीकार दोनो रूपो को प्रस्तुत करने में समर्थ है ।इसमे सन्देह नहीं ।

समय के पाँव -

समय के पाव माखन लाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित, लोकमान्य तिलक, राष्ट्रपिता, महात्मागाधी ,सुभाषचन्द्र बोस, विट्ठल भाई पटेल, पं0 नेहरू गणेश शंकर विद्यार्थी आदि महापुरूषों के संस्मरणो और रेखाचित्रों

1- श्री माखनलाल चतुर्वेदी अमीर इरादे :गरीब इरादे पृ0 5।

2- वही पृ055

3- वही पृ0 7।

का संकलन है। भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में इन अग्रदूतों के साथ मुंशी प्रेमचन्द्र, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद सुमित्रानन्दन पंत, रवीन्द्र ठाकुर आदि साहित्यिक विभूतियों का भी स्मरण समय के पाँव में किया गया है। लेखक के अनुसार इस पुस्तक के बहुत से व्यक्तियों ने जो चरण चिन्ह छोड़े है वे कभी मिट नहीं सकते।[1]

समय के पाँव, जीवनी, संस्मरण और रेखाचित्र का सम्मिलित रूप प्रस्तुत करने वाली कृति है। इस कृति के द्वारा लेखक का उद्देश्य महापुरुषों का जीवन व उनके गुण स्मरण करना रहा है क्योंकि महापुरुषों के जीवन हमें यह स्मरण दिलाते है कि हम किस प्रकार अपने जीवन को ऊँचा उठा सकते हैं।[2] चतुर्वेदी जी ने स्पष्ट कह दिया है कि - समय के पाँव पर मस्तक रखने के सिवाय और कोई चारा नहीं दिखाई देता[3] और प्रतीत होता है कि इन व्यक्तियों के जीवन ने मेरे जीवन को रहन रख लिया था।[4]

"समय के पाव" के माध्यम से लेखक ने भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम का इतिहास भी चित्रित कर दिया है। लोकमान्य तिलक, राष्ट्र पिता महात्मा गांधी और अमर शहीद भगत सिंह के संस्मरण हमारे

1- श्री माखनलाल चतुर्वेदी : समय के पाँव, दो शब्द

2- वही।

3- वही।

4- वही, पृ0 47

स्वातन्त्र्य संग्राम की ही रूप रेखा है। इन संस्मरणों में ऐसी धारा वाहिकता आ गयी है कि उस युग की राष्ट्रीयता उभरती हुई सामने स्पष्ट प्रतीत होती है।[1]

साहित्यिकता और कलात्मकता की दृष्टि से समय के पाँव में हमें संस्मरणों की व्यावहारिक प्रवाहमयी और व्यंजनात्मक शैली के साथ-साथ चतुर्वेदी जी के भावात्मक और कलात्मक गद्य का स्वरूप भी स्पष्ट दिखाई देता है। कहीं-कहीं छोटे-छोटे वाक्यों में अपूर्व व्यंजनात्मकता परबड़ी स्वाभाविकता से अपनी बात कहते हैं तो कहीं भाव विभोर हो कहीं वे व्यंग्य द्वारा अपनी उक्तियों में अद्भुत अर्थ गाम्भीर्य कर देते है तो कहीं आलंकारिक उक्तियों द्वारा कलात्मक गद्य का निर्माण करने लगते हैं। आलंकारिकता का विधानद्रष्टव्य है -" लोक मान्य तिलक पर कुछ लिखना वाङ्मय गंगा के तट पर खड़े होकर बूँदों का रजिस्टर बनाने जैसा कठिन हैं।[2] तुम हुए केवल मातृभूमि के भारत भूमि के तुम्हारी सेनाओं पर दोपदान तुम्हारे निश्चयों पर जय जयकार तुम्हारे बलिदान पर आजाद भारतवर्ष के अमित पर्व [3]। आदि शब्दों के सुभाष के प्रति लेखक की अमित श्रद्धा उमड़ उमड़ पड़ी है।

1- डॉ० प्रेमशंकर समय के पाँव शिखरों का सेतु, धर्मयुग 12 जनवरी 1964 ई० पृ० 35

2- श्री माखन लाल चतुर्वेदी, समय के पाँव पृ० 7

3- वही पृ० 53

समय के पाँव में सम्मिलित महापुरूषों के प्रति लेखक के हृदय को जिस सहृदयता और सहज आत्मीयता का परिचय मिलता है उससे इस कृति को भारतीय आत्मा के उदार हृदय की गूँज कहा जाना उपयुक्त ही है ।"[1]

चिन्तक की लाचारी[2]

चिन्तक की लाचारी चतुर्वेदी जी के 14 चुने हुए भाषणों का संग्रह है। इन भाषणों के समय भिन्न-भिन्न है और भिन्न स्वभाव के जनजीवन के सम्मुख उन्हें उपस्थित किया गया है ।[3]

चिन्तक की लाचारी में चतुर्वेदी जी के विचार और चिन्तन की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। समय की दृष्टि से ये भाषण सन् 1927 सेलेकर सन् 1958 तक की लगभग तीन दशकों की दीर्घ अवधि को अपने में समेटे हुए है।। स्पष्ट ही कुछ भाषण स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व के है कुछ उसके बाद के । एक भाषण- साहित्य के चिन्तक की लाचारी (आकाशवाणी नागपुर से प्रसारित) का समय नहीं दिया गया है।

जैसा कि इस संग्रह में दिये गये भाषणों के शीर्षकों से स्पष्ट है इन भाषणों के विषय साहित्य, समीक्षा पत्रकारिता और राष्ट्रभाषा

1- डॉ० प्रेमशंकर समय के पाँव शिखरों का सेतु, धर्मयुग 12 जनवरी 1964, पृ० 35
2- प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी प्रथम संस्करण 1965
3- श्रीमाखन लाल चतुर्वेदी चिन्तक की लाचारी प्राक्कथन पृ० 4

प्रचार से सम्बन्धित है । साहित्य और कविता " रचना शीर्षक द्वढती है साहित्य के चिन्तक की लाचारी साहित्य और साहित्यिक ये चार भाषण विषय की दृष्टि से विशुद्ध साहित्यिक कोटि में आते हैं । पत्रकार इन दो भाषणों का विषय विशुद्ध रूप से पत्रकारिता है ।

चतुर्वेदी के इन भाषणो में उनकी राष्ट्रीयता की भावना कई स्थानो पर प्रखरता से उभरी है । मातृभूमि -हिन्दुस्तान को वह हमारा देवता[1] कहते है । चतुर्वेदी जी का विचार है कि देशाभिमान का विकास हमारा पहला कर्तव्य है - उससे नीचे उतरने पर किसी को भी क्षमा नहीं करना है ।[2]

भाषणों के अवसर के अनुकूल गद्य के विविध रूपों के दर्शन हमें चतुर्वेदी जी के इन भाषणों में होते है ं कभी-कभी कुछ भाषण ऐसे स्थानों पर दिये गये हैं जहां केवल शालाओं के विद्यार्थी अथवा भोले-भाले देशवासी रहे है जहां विचारों और चिन्तन का विश्लेषण किसी अंग्रेजी कैलैटिन बना देने जैसी भूल होती है ।[3] और तदनुकूल ही प्रायः सरल व्यावहारिक और व्यासगुण सम्पन्न गद्य का प्रयोग ही इन भाषणों में हुआ है ।

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी चिन्तक की लाचारी प्राक्कथन, पृ0 52
2- वही, पृ0 3
3- वही पृ0 5

चिन्तक की लाचारी के सम्बन्ध में दो एक बाते और ज्ञातव्य है। भाषणो की शैली के अनुरूप इन भाषणों में भी प्रारम्भिक भूमिका कही-कहीं स्थान की प्रशंसा और सर्वत्र श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखा गया है। विभिन्न परिस्थितियों में दिये जाने के कारण इनमें शैली की विविधता भी मिलेगी जैसे पत्रकार सम्मेलनों में दिये गये भाषणों में विचारात्मकता और कलात्मकता का सुन्दर सामंजस्य हुआ है । इन भाषणों के आकार में वैविध्य द्रष्टव्य है। कुछ भाषण चार-पाँच पृष्ठों में समाहित हुआ है। इसमे मुख्य कारण अवसर ही रहा है ।

पाँव - पाँव [1]

पाँव-पाँव पं0 माखन लाल चतुर्वेदी जी के 26 गद्य खण्डों का संग्रह है। विषयवस्तु और रूप विधान की दृष्टि से पाँव-पाँव चतुर्वेदी जी अन्य कृतियों से इस रूप में भिन्न है कि इसमें कोई भाव प्रधान गद्य रचना (गद्य काव्य, गद्यगीता या काव्यमय गद्य) सम्मिलित नही की गई है और न ही इसमें लेखक की सूझ (कल्पना) का वैसा चमत्कार देखने को मिलता है जैसा साहित्य देवता के गद्य खण्डों या रंगो की बोली " और अमीर इरादे गरीब इरादे में संग्रहीत गद्य काव्य खण्डों में । संग्रह की भूमिका में चतुर्वेदीजी ने स्वयं इस बात को स्पष्ट

1- पाँव-पाँव, 1957 में संग्रहीत । प्राप्ति स्थान साहित्य सदन चिरगाँव -झाँसी ।

कर दिया है इसमें कल्पनाओं के आकाश में विचरण करने की मूर्खता नहीं कर रहा हूँ । यह तो जमीन पर पाँव-पाँव चलने का छोटा प्रयास ही है ।[1] इसी कथन के अनुरूप पाँव-पाँव संग्रह की रचनाएं कल्पना के स्थान पर यथार्थ की भाव भूमि पर आधारित है और उनकी यह प्रवृत्ति शैली तथा रूप विधान में समान रूप से प्रवृत्ति दिखाई देती है ।

इस संग्रह की एक कहानी और एक संस्मरण के अतिरिक्त शेष सभी रचनाएं साहित्य की निबन्ध विधा के अन्तर्गत आती है कला की दृष्टि से इस संग्रह की कहानी कमाल की प्रेम कहानी सर्वश्रेष्ठ रचना कही जायेगी ।

विषय की दृष्टि से इस संग्रह के निबन्धों का दो भागों में रखा जा सकता है - साहित्य सम्बन्धी निबन्ध और दूसरा साहित्य विषयों से सम्बन्धित निबन्ध । कला और साहित्य, काव्यसृष्टि काव्य दृष्टि साहित्य के प्रति मेरा दृष्टिकोण आदि प्रथम वर्ग के रखे जा सकते है । अभिव्यजना पद्धति की दृष्टि से साहित्य सम्बन्धी निबन्ध विचारात्मक हैं ।

पाँव-पाँव में संग्रहीत शेष रचनाएं दूसरे वर्ग साहित्येतर विषयों जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित निबन्ध के अन्तर्गत आती है । विषय की दृष्टि से इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है -

---

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी :पाँव-पाँव भूमिका ।

§क§ पर्व और त्योहारो से सम्बन्धित – दीपक के पर्व का दिन । होली सम्यक त्योहार §ख§ बुनियादी शिक्षा से सम्बन्धित निबन्ध – बुनियादी तालीम §ग§ ऋतु सम्बन्धी – वर्षा की प्रथम बौछारे §घ§ लेखकों कीसमस्याओं से सम्बन्धित – लेखक – एक मार डालने की वस्तु §ड़. § अन्य निबन्ध हमारे गाँव और उनके शिक्षक ।

पाँव-पाव के निबन्धों में कुल मिलाकर साहित्य और जीवन के विविध पक्षों पर यथार्थ की भाव भूमि पर सहृदयता पूर्वक प्रकाश डाला गया है। इन नि बन्धों में चतुर्वेदी जी के साहित्य चिन्तन की अभिव्यक्ति भी द्रष्टव्य है।

पाँव-पाँव चलने के प्रयास रूप इन रचनाओं की भाषा प्रायः सरल और व्यावहारिक है इन रचनाओं में सरल और व्यावहारिक व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया गया है । इसी प्रकार शब्द योजना में तीव्रता के विधान केलिए शब्दों का तुलनात्मक प्रयोग भी मिलता है। भाषा शैली के इन गुणों के कारण ही चतुर्वेदी जी की प्रचारात्मक रचनाएं भी साहित्य बनगई है ।

रंगो की बोली [1]

रंगो की बोली चतुर्वेदी जी के 39 गद्य खण्डों का संग्रह है । इसके आमुख में चतुर्वेदी जी ने लिखा – है – साहित्य देवता §1943§

1- रंगो की बोली ,श्रीमाखन लाल चतुर्वेदी खण्डवा, मध्य प्रदेश ।

के पश्चात् यह मेरे गद्य खण्डों का दूसरा संग्रह है।[1] इससे ज्ञात होता है कि यह चतुर्वेदी जी के गद्य संग्रह अमीर इरादे : गरीब इरादे (1961) के पहले का संकलन है।

रंगों की बोली की कुल 392 रचनाओं का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है – (क) विचारात्मक निबन्ध – 10 (ख) ललित निबन्ध – 2 (ग) साहित्य तथा अन्य विषयों पर टिप्पणियाँ – 11 (घ) गद्य काव्य– 12 (ङ) रेखा चित्र – 1 (च) कहानी – 1 (छ) भाव कथाएं – 2 (ज) विशिष्ट व्यंग्य कृति – 1 । इस संग्रह का आमुख एक स्वतन्त्र विचारात्मक निबन्ध बन गया है और विषय तथा कला की दृष्टि से संगृहीत रचनाओं से भी सुन्दर कहा जा सकता है। इसमें चतुर्वेदी जी ने साहित्य में मौलिकता के प्रश्न पर अपने निर्भीक और संतुलित विचारों को वाणी दी है। उनके अनुसार "यदि भारतीय मनको एक वृक्ष माने तो उसके नीचे हमने शब्दों के वाक्य विन्यास का चुराई हुई कल्पनाओं का तथा और भी कितनी बातों का उतना विदेशी स्वाद भर दिया है कि यह मन भारतीय मिट्टी से रस ग्रहण नहीं कर पाता ।[2]

गद्य खण्डों में प्रभु के प्रति लेखक की भावुकतापूर्ण समर्पण – भावना और उसके सान्निध्य को पाने की उत्कट अभिलाषा का सुख उमड़ता

1– श्री माखनलाल चतुर्वेदी रंगों कीबोली आमुख "
2– श्री माखनलाल चतुर्वेदी रंगों की बोली आमुख"

प्रतीत होता है। इनमें से श्यामसुन्दर जी ही गद्य खण्ड अमीर इरादे गरीब इरादे में रंजन श्याम के शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है।

रंगो की बोली में चतुर्वेदी जी की अन्य कृतियों की अपेक्षा उनके साहित्य सम्बन्धी विचार अधिक स्पष्टता से उभर कर आये हैं।

शैली की दृष्टि से रंगो की बोली में भावात्मक और कलात्मक गद्य का प्रयोग अधिक हुआ है। रंगों की बोली में संगृहीत रचनाओं के शीर्षक लाक्षणिक अर्थ पूर्ण और भावात्मक गद्य के अनुकूल ढले हुए है। नाजुक बदन पत्थर की लिखावट इस शराब को न पियों आदि अनेक शीर्षकों में प्रतीक लाक्षणिकता और अर्थगाम्भीर्य की विशेषता स्पष्ट है।

चतुर्वेदी जी की अन्य कृतियों की अपेक्षा रंगों की बोली साहित्य देवता के अधिक निकट होने के कारण इनका महत्व भी अधिक है। रंगों की बोली नामकरण भी इसकी लाक्षणिकता की ओर ही संकेत करता है।

<u>कृष्णार्जुन युद्ध</u>[1]

कृष्णार्जुन युद्ध माखन लाल चतुर्वेदी का अकेला नाटक है। मूल रूप से यह नाटक जबलपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन में खण्डवा के कुछ

1- प्रकाशक - प्रकाश पुस्तकालय कानपुर प्रथम संस्करण, 1918

मित्रों द्वारा अभिनीत किया गया था। सन् 1918 में लिखित यह नाटक बड़ा प्रसिद्ध हुआ और केवल इस एक नाटक की रचना द्वारा श्री माखन लाल चतुर्वेदी जी ने हिन्दी नाट्य साहित्य को एक विशेष महत्वपर्ण देन दी है।

कृष्णार्जुन युद्ध की कथावस्तु का आधार श्री कृष्ण और अर्जुन के युद्ध की पुराण प्रसिद्ध कथा है, किन्तु इस कथा का मूल स्रोत उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः यह विषय जैमनीय महाभारत का रहा होगा।[1]

इस नाटक की कथा वस्तु चार अंकों में विभक्त है और उनमें क्रमशः चार पाँच सात तथा छः कुल मिलाकर बाईस दृश्य है। नाटककी रचना संस्कृत नाट्य प्रणाली के आधार पर हुई है और उसमें प्रस्तावना नान्दीपाठ सूत्रधार की योजना और भरत वाक्य का भी प्रयोग किया गया है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से इस नाटक में नारद और सुभद्रा के चरित्र पर विशेष ध्यान दिया गया है पुराण प्रसिद्ध श्रीकृष्ण तथा अर्जुन एवं भीम को यहाँ उपस्थित नहीं किया गया है। सुभद्रा में भारतीय नारी के चरित्र की अच्छी झलक मिलती है।

1- श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार सम्पादक कल्याण दिनांक 8-4-64

कृष्णार्जुन युद्ध नाटक में धर्मवीर रस अंगीरूप में आया है और हास्य श्रृंगार तथा करूण अंग रूप में । नाटक कार में नारद के आश्रय मे धर्मवीर रस की अच्छी अभिव्यक्ति है। शंख की अटपटी बाणी और चेष्टाएं हास्य की सुन्दर सृष्टि करती हैं ।

यह नाटक पौराणिक कथा को लेकर चला है, परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों की कोई योजना या देश काल का चित्रण यहाँ नहीं किया गया है । इसके विपरीत शंख और शशि के संवादो में आधुनिकता का समावेश प्रभूत मात्रा में है। साथ ही राजनीति का पुट भी कृष्णार्जुन युद्ध नाटक में मिलता है ।

संवादो मेंसर्वत्र व्यावहारिकता का निर्वाह कियागया है। भाषा सरल है और संवाद चुस्त तथा गढ़े हुए । उस संबंध में कृष्णार्जुन युद्ध में एक उल्लेखनीय बात है । संवादो में पद्य का प्रयोग तथा गीत योजना । पद्य कहीं-कहीं उपयुक्त है कहीं-कहीं उन पर पारसी नाटकों का प्रभाव है ।

कृष्णार्जुन युद्ध नाटक मूलतः अभिनय के लिए लिखा गया था और इस प्रकार बहुत अधिक सफल भी हुआ था । छोटे-छोटे रोचक संवाद हास्य पूर्ण दृश्यों की योजना कथानक की तीव्र गति तथा संघर्ष आदि विशेषताओं के कारण यह नाटक रंग मंच के लिए पूर्णतः उपयुक्त है। नाटक

कलेवर भी थोड़ा है और इसे सरलता से दो ढाई घंटे में अभिनीत भी किया जा सकता है ।

कला का अनुवाद[1]

कला का अनुवाद श्रीमाखन लाल चतुर्वेदी की दस कहानियों का संग्रह है। ये कहानियां केवल कहानियाँ नहीं लेखक का व्यक्तित्व है । क्रान्तिकारी कवि की वाणी, जीवन की समस्त संवेदना और कटुता को अपने में समेटकर इन कहानियों के रूप में मुखरित हो उठी है। एक मर्मवेदना जीवन की एक कटु अनुभूति ही इन कहानियों का प्राण है। कला का अनुवाद नामकरण लेखक के व्यक्तित्व का परिचायक है। उसका जीवन उसका व्यक्तित्व उसका कला का अनुवाद है ।

कला का अनुवाद कहानियाँ स्वतन्त्रता प्राप्ति से काफी समयपूर्व लिखी गयी है । इसलिए इनका जीवन और वातावरण आज से भिन्न और बहुत पहले का है। बेगार का दण्ड समाज में विधवाओं पर किये जाने वाले अत्याचार की करुण कहानी है । कला का अनुवाद राष्ट्रीय साहित्य की रचना करने वाले पर अन्दर से राजभक्त अंग्रेजी राज्य के भक्त युवकों पर व्यंग्य है ।

कथाविकास कीदृष्टि से बिरन मेरा सावन बीतीजाय और कला का अनुवाद श्रेष्ठ रचनाएं है और इनमें कहानी कला की पूर्णता के दर्शन

1- प्रकाशक -विश्व विद्यालय प्रकाशन गोरखपुर । प्रथम संस्करण सन् 1954

होते हैं ।

वातावरण के प्रमुख तत्वों -परिस्थिति योजना, स्थानीय चित्र विधान की दृष्टि से ये कहानियाँ सर्वश्रेष्ठवन पड़ी है ।

गाँव के कच्चे रास्ते , सावनकी हरियाली, ग्रामीण किसानों की सरलता प्राचीन बेगार प्रथा, विधवाओं की करूण स्थिति कहीं-कहीं आन्तरिक वैषम्य और अनैतिकता , स्त्रियों की प्रवृत्ति आदि का अच्छा चित्रण इन कहानियों मे हुआ है ।

चतुर्वेदी का कवि रूप इन कहानियों में भली भाँति उभरा है । उनकी शैली अलंकृत मुहावरेदार है ।

कहीं-कही वर्णनों की अधिकता और पृष्ठभूमि या प्रारम्भिक पीठिका की दीर्घ सूत्रता खलने वाली है। कच्चा रास्ता के प्रारम्भ में "आर" का वर्णन इसी प्रकार का है । वर्णनो की अधिकता कुछ अंशों तक इन कहानियों में इसलिए अवश्य उपयुक्त ठहरती है कि इनमें वातावरण का सजीव चित्रण हुआ है ।

चतुर्वेदी जी की कला का अनुवाद संग्रह की कहानियाँ वातावरण और मार्मिकता तथा शैली की लाक्षणिकता और व्यंग्य की दृष्टि से निश्चय ही महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी है ।

सप्तम् - अध्याय

माखन लाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता

श्री माखन लाल चतुर्वेदी के सम्पूर्ण काव्य की मूल चेतना राष्ट्रीय है । उन्होंने राष्ट्र को अपना आराध्य देव स्वीकार करके अपने काव्य का अर्घ्य राष्ट्र देवता के चरणों में अर्पित किया है । इसलिए वे स्वयं साहित्य देवता है, राष्ट्रीयता की मूल भावधारा पर आधारित उनका काव्य राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है वह हमारी समग्र राष्ट्रीयता चेतना का प्रतिरूप है। चतुर्वेदी जी के काव्य में समय के पैरों के निशान स्पष्ट दिखाई देते हैं । कभी-कभी लगता है कि जब इतिहास के राहगीर को अपनी यात्रा का सामान खोजना होगा उस समय उसे इन निशानों की जरूरत होगी ।[1] इतिहास के ये निशान ही चतुर्वेदी जी के काव्य का विशेषकर उनके राष्ट्रीय काव्य का वास्तविक स्वरूप है- उनकी अन्तर्वर्तिनी मूल भावधारा । जिस सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में चतुर्वेदी जी ने जन्म लिया था उसमें सहज रूप से उनका व्यक्तित्व उस तीर्थराज की भाँति हो गया जहाँ साहित्य की गंगा और राजनीति की यमुना अन्तर साधना की सरस्वती से गलबाँही कर एकमेक हो जाती है । चतुर्वेदी जी का सम्पूर्ण जीवन

1- श्रीकान्त जोशी: मैं अग्निपथ का अंगारा हूँ - नई धारा अगस्त 1955

राष्ट्रीयता का पर्याय हो गया । ऐसा प्रतीत होता है मानो वे राष्ट्र के लिए ही जन्मे, जिये और राष्ट्र प्रेम का पीयूष प्रवाहित करते ही मरे ।

चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीयता का स्वरूप -

चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीयता का केन्द्रीय तत्व बलिदान है एक शब्द में उनकी राष्ट्रीयता बलिदानवादी राष्ट्रीयता है। बलिदान उसकी मूल प्रेरणा है उसका मूल स्रोत है। बलिदान और समर्पण कवि के राष्ट्रीय काव्य का मूल स्वर है । दिनकर जी ने ठीक ही लिखा है कि -

प्रेम हो, अध्यात्म प्रकृति दर्शन हो अथवा कल्पना का लीला विलास माखनलाल जी की प्रत्येक मनोदशा में बलिदान की मधुरता किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहती है । चतुर्वेदी के राष्ट्रीय काव्य में अभिव्यक्त भावधारा भी बहुमुखी है । उसमें कही तो व्यापक और संश्लिष्ट रूप में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है तो कहीं राष्ट्रीय चेतना रहस्य ﴾आराधना, समर्पण, आध्यात्मिकता﴿ प्रेम और प्रकृति के माध्यम से अपना स्वर व्यक्त करती है। राष्ट्रीय चेतना की संश्लिष्ट रूप में अभिव्यक्ति उनके राष्ट्रीय काव्य का मूल स्वर है । वे कहीं तो राष्ट्र रक्षा के निमित्त राष्ट्र के युवकों का आह्वान करते हुए समर्पण और बलिदान के गीत गाते हैं तो कहीं राष्ट्र पर होते अत्याचार देखकर सच्चे कलाकार की आत्मा जब अपने राष्ट्र की गुलामी

नहो सह पाती तो क्रान्ति और विद्रोह का शंखनाद करते हैं । क्रांति और विद्रोह तथा समर्पण और बलिदान के इन स्वरो में भेद नहीं मूल भूत समरसता है । उनका कलाकार जब क्रान्तिऔर विद्रोह का शंख फूकता है तो अपने को राष्ट्र पर बलिदान करने को दृढ़ता लेकर भी चलता है । इनको कुछ राष्ट्रीय कविताए सामयिक राजनीति से भी प्रेरित हैं । उनमें जन-जागरण और उद्बोधन को विशेष स्थान मिला है । भारत को तत्कालीन राजनीति में तिलक गांधी आदि राजनीतिक नेताओं के व्यापक महत्व को स्वीकारते हुए चतुर्वेदी जी ने कुछ कविताओं में इनके प्रति श्रद्धांजलियाँ भी व्यक्त की है । गांधी जी के विचारो को भी कहीं कहीं वाणी मिली है । इधर भारत को स्वतन्त्रता मिलने के बाद जिस जिस नई राष्ट्रीयता का निर्माण हुआ है उसको अभिव्यक्ति भी चतुर्वेदी जी को स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय कविताओं में मिल जाती है । समग्र रूप में – चतुर्वेदी जी के राष्ट्रीय प्रगीतों में बलिदान को भावनाएं गांधी जी को तप त्याग और प्रेम अहिंसामयी आत्मा तथा सामयिक राजनीति के सर्प का फुकरण आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक आदि विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण उद्बोधन जेल यातनाएं संस्मरण श्रद्धांजलियाँ आदि प्रमुख रूप से मिलती है । [1]

1- डॉ० गणेश खरे –आधुनिक प्रगति काव्य पृ० 132

संश्लिष्ट रूप में जहाँ अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना के अतिरिक्त जहाँ कवि की भावना आराधना और समर्पण प्रेम और प्रकृति को भी राष्ट्रीयता का जामा पहनाकर चलती है वहाँ उसका पूरा व्यक्तित्व राष्ट्रीय चेतना में ही समाविष्ट हो जाता है। चतुर्वेदी जी की अनेक भक्ति परक प्रेमपरक रचनाएं राष्ट्रोन्मुख हैं। प्रलय और प्रणय दोनों चतुर्वेदी जी के काव्य व्यक्तित्व के दो छोर होते हुए भी एक में मिले हुए हैं - वे प्रलय और प्रणय के कवि हैं। चतुर्वेदी जी ने स्वयं कहा है -

" पीढ़ी को तुम मधुर गाने दो तो प्राणों को उठान भी दो सपने फूले तो बलि के पुष्य भी फूले कलि चटके तो आकाश से गोलियां भी चटके दें। रिमझिम मेह बरसे तो बारूद की फुलझड़ियां क्यों न रंग दे ? मानव विकारों को उठाकर विश्व को जिन्दगी देने वाले मधुर गायक प्यार में जीवन घोल घोलकर गाओ।"[1] उनके राष्ट्रीय काव्य में उनके सम्पूर्ण जीवन को अभिव्यक्ति मिल जाती है। उनकी भावधारा की लहरियाँ राष्ट्रीय गंगा में ही प्रवाहित दिखाई देती हैं।"[2]

एक आलोचक का कथन है -

"यदि भारतेन्दु की वाणी राष्ट्र के

1- माखन लाल चतुर्वेदी अमीर इरादे गरीब इरादे पृ0 24

2- माखन लाल चतुर्वेदी - साहित्य देवता पृ0 73

अधरों की वाणी है तो पंडित माखनलाल चतुर्वेदी की वाणी राष्ट्र के मर्म की वाणी है । इस दृष्टि से उनका एक भारतीय आत्मा उपनाम सार्थक है ।

हिन्दी के राष्ट्रीय काव्य का अपना एक गौरवशाली इतिहास रहा है । चंदर बरदाई से दिनकर तक हमें इस स्वरूप का क्रमिक विकास देखने को मिलता है । प्रत्येक युग के कवियों ने अपनी परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार देशवासियों में साहस और शौर्य का संचार करना चाहा है । किन्तु चतुर्वेदी जी का स्वर न केवल अपने पूर्ववर्ती प्रत्युत सामयिक कवियों से भी अंशतः भिन्न है । वेदनाओं को गले लगाने की जैसी उमंग बलिदान का जैसा उत्साह आदर्श पर मिटने की जैसी लगन उनकी वाणी में दीख पड़ती है वैसे उनके युग के किसी अन्य कवि की रचना मे नहीं । हिन्दी साहित्य सम्मेलन केहरिद्वार अधिवेशन में उन्होंने कहा था -

जिस देश में कलम तलवार जैसी प्रखर नही होती उस देश में तलवार भी तलवार बनकर नहीरह सकती । चतुर्वेदी जी की कलम अपने संरक्षण के लिए किसी इतर शक्ति की मुहताज नहीं वह स्वयं युग की तलवार को शोषित करने वाली थी । "

माखन लाल जी संस्कार से वैष्णव थे वैष्णव भक्त की वैयक्तिक मुक्ति में विश्वास नहीं होता । वह इस जीवन में रहकर ही

अपने प्रभु का सामीप्य-लाभ करना उनका प्रसाद पाना चाहता है।
माखनलाल जी ने अपनी वैष्णव भक्ति को स्वदेश भक्ति में घुला दिया।
मातृभूमि के लिए झेली गयी यातना को वे अपने प्रभु की सेवा मानते थे।
दूसरी ओर आराध्य का वही रूप उन्हें प्रिय था - जिसमें उसने सम्पूर्ण
देश अथवा उसके एक भाग को छिगुनी पर तान रखा है -

उठा दो वे चारों कर -कंज
देश कोली छिगुनी पर तान
और मैं करने को चल पड़ूँ
तुम्हारी युगल मूर्ति का ध्यान।[1]

एक भारतीय आत्मा का व्यक्तित्व वह सेतु था जिस पर
चढ़कर द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक काव्य शैली ने छायावाद तक की
अपनी यात्रा पूरी की। छायावाद जिस वैयक्तिता के उभार लाक्षणिक
अभिव्यक्ति प्रणाली और स्थूल से सूक्ष्म की ओर पयाण करने के लिए
बदनाम है उसका पहली बार स्पष्ट आभास हमें - माखनलाल चतुर्वेदी
जी की कविताओं में ही मिलता है।

माखनलाल जी ने राष्ट्रीयता के अनगढ़ तंतु को बुद्धि के
धरातल से उतारकर भावनाओं के रंग में रंगा और उसे अध्यात्म के करघे
पर चढ़ाकर कविता का इन्द्रधनुषी पट बुन दिया। उसके साथ त्याग तपस्या

1- हिमकिरीटिनी - माखनलाल चतुर्वेदी।

और बलिदान के एक जीवंत इतिहास का समापन मानना चाहिए ।

इस प्रकार चतुर्वेदी जी के राष्ट्रीय काव्य का हम निम्नलिखित भागों में वर्गीकरण कर सकते हैं –

§क§ संश्लिष्ट राष्ट्रीय चेतना का काव्य–

1– बलिदान और समर्पण मूलक राष्ट्रीय काव्य ।

2– क्रान्ति और विद्रोह स्वर मूलक राष्ट्रीय काव्य ।

3– सामयिक राष्ट्रीय चेतना का काव्य ।

4– वीर पूजा संस्मरण और श्रद्धांजलि परक काव्य ।

5– गांधीवादी राष्ट्रीय चेतना का काव्य ।

6– देश– प्रेम– देश वंदना और प्रशस्ति सम्बन्धी काव्य ।

7– स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय काव्य ।

§ख§ रहस्यमूलक राष्ट्रीय काव्य ।

§ग§ प्रेम मूलक राष्ट्रीय काव्य ।

§घ§ प्रकृति प्रेम मूलक राष्ट्रीय काव्य ।

§1§ बलिदान और समर्पण मूलक राष्ट्रीय काव्य –

जिस दिन रस में आग लगाकर

किया को रस का प्राण दिया कवि

जिस दिन सूझों के उजाड़ में

नंदन का वरदान दिया कवि
उस दिन हृदय होनता बोली
कौन कहो क्या अटपट बोला ?
उस दिन तुक पर तुक रखकर
जोने वाला सिंहासन डोला ।[1]

तूने देखा प्राणदान तो अपमानो कोखैराते है
कवि के लिए अँधेरा दिन है और कालिमा की रातें हैं ।[2]

उपर्युक्त पंक्तियाँ कभी एक भारतीय आत्मा ने महाप्राण निराला के जीवन काल में उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखी थी । किन्तु ये पंक्तियाँ अवधूत कवि निराला जी के लिए जितनी सार्थक और सटीक है उतनी ही स्वयं अपने स्रष्टा जीवनदानी साहित्यकार माखनलाल चतुर्वेदी के लिए भी ।

राष्ट्रवीणा के अमर गायक, त्याग बलिदान के प्रोज्ज्वल प्रतीक माखनलाल जी देश की उन विरल विभूतियों में थे, जिन्होंने न केवल लेखनी से लाखोंलाख देशवासियों के अन्तकरण में स्वदेशानुराग को जगाया अपितु शरीर से भी स्वा धीनता संग्राम में निर्भय कूदकर अस्थियों की मशाल जलाई। वाणी और कर्म का दुर्लभ सामंजस्य कविवर माखनलाल जी के व्यक्तित्व का अनोखा आकर्षण था और उनी व्यक्तित्व की मर्मिकता का कारण भी ।

1- माखन लाल चतुर्वेदी - निराला पृ0 232
2- वही पृ0 285

पंडित माखनलाल जी ने जिस युग में लेखनी उठाई उस युग में लेखन व्यवसाय नहीं बना था तब लिखना प्राय: आत्म संतोष के लिए होता था या राष्ट्रीय जागरण में योगदान देने के लिए । एक भारतीय आत्मा" के साहित्य में उन दोनों उद्देश्यों का समाहार हो गया है। वे उस युग के प्रतिनिधि थे जो युग अपने त्याग और बलिदान को सुविधा के सिक्कों में बदलना नहीं जानता था। चतुर्वेदी जी जीवन में अनेक बार सम्मानित उपाधियों से अलंकृत और अभिनंदित होकर भी भौतिक दृष्टि से बराबर नि:स्व हो बने रहे । यहाँ तक कि अस्सी वर्षों के सुदीर्घ साधनामय जीवन के बावजूद वे अपनी कहने योग्य एक कुटिया भी न बना पाये । अपने सम्मान के अवसर पर उन्होंने कहा था -

मैं तो साहित्य की इमारत का वह पत्थर हूँ जिसे साहित्य मन्दिर के शिल्पियों ने मंदिर में इमारत के लिए अयोग्य बताकर रखने से इंकार कर दिया था और वर्षों तक अलग रख दिया किन्तु अच्छे पत्थर के दुष्काल में जिसे कभी इमारत के सुन्दर कोने पर लगाए जाने का सौभाग्य प्राप्त हो गया ।

कवि राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संग्राम में समर्पण और बलिदान के लिए सदैव प्रस्तुत है । स्वतन्त्रता संग्राम के प्रारम्भ में ही - महात्मा गांधी ने देशवासियों को बलिदान का ऐसा महामन्त्र दिया था कि जन-जीवन में पराधीनता के प्रति विद्रोह कर जेल जाने एवं अन्य कष्ट

सहन करने की क्षमता आ गयी थी । इस बलिदान की उत्कृष्ट भावना का ही यह परिणाम था कि जेलों में सत्याग्रहियों की ऐसी भीड़ थी कि उनमें जगह नहीं रह गयी थी । स्वातन्त्रता के साधकों ने प्राणों की बाजी लगायी ।[1] माखन लाल जी के काव्य में बलिदान की भावना अधिक पुष्ट रूप में अभिव्यक्त हुई है । उनकी कविता भी बलि का गान सुनाती है -

मैं बलि का गान सुनाती हूँ
प्रभु के पथ की बनकर फकीर
माँ पर हँसि-हँसि बलि होने में
खिंच हो रहे मेरी लकीर ।[2]

इसी प्रकार उनके पुष्प की यह अभिलाषा तो उनके काव्य का प्रतिनिधि स्वर है -

मुझे तोड़ लेना बनमाली
उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ पर जावें वीर अनेक ।[3]

1- डॉ० सुषमा नारायण- भारतीय राष्ट्रवाद के विकास हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति, पृ० 322

2- माखन लाल चतुर्वेदी हिमकिरीटिनी पृ० 43

3- माखनलाल चतुर्वेदी - युगचरण पृ० 31

जवानी कवि के लिए आमोद प्रमोद और हास-विलास की बेला नही । उसकी सार्थकता मौत को चुनौती देने में है । जीवन मे वह मरण का त्यौहार हैं । जिंदगी का स्वाद ही अधूरा रह जाय अगर उसमें मृत्यु का आलिंगन करने की उमंग लाड़का मरण ज्वार न हो । इसलिए जिस कवि ने जवानी के दिनों में एक पुष्प के ब्याज से अप्सराओं के गहनो में गुंथे जाने तथा देवताओं के मस्तक पर चढ़ने जैसे बड़े प्रलोभनो को ठुकराकर मातृ भूमि के लिए शीश कटाने जा रहे वीरो के पथ में चुपचाप फेंक दिये जाने एवं उनके चरणों तले कुचले जाने की कामना प्रकट की थी, उसी ने देश की सीमा को जब विदेशियों द्वारा पदमर्दित होते देखा तो पचहत्तर वर्षों की आयु में उसका पौरूष गरज उठा और उसने बूढ़े जवान सबका प्राणदान के लिए आह्वान किया -

बूढों की क्या बात, युगो के तरूणाई के दिन आये हैं,
चट्टानों खंदको , पहाडो की खाई के दिन आये हैं
गंगा मांग रही है मस्तक यमुना मांग रही है सपने
आज जवानी स्वयं टटोले सिर हथेलिया अपने-अपने

\- -

चलो सजाओं सैन्य समय की भरपाई के दिन आये हैं
आज प्राण देने के युग की तरूणाई के दिन आये हैं ।

कवि ने देश की उठती जवानी को ,[1] उसके राजा रानी को,

1- माखन लाल चतुर्वेदी - चलो सजाओ सैन्य पृ0 209

देश के सूच्यग्र पर देश की मुस्कान पर कुरबान और बलिदान होने के लिए इस प्रकार ललकारा है -

देश के सूच्यग्र पर कुरबान हो उठती जवानी,

देश की मुस्कान पर बलिदान हों राजा रानी[1]

बलिदान की प्रवृत्ति असाधारण मनःस्थिति का परिणाम है। इसके अन्तर्गतप्रेम की उत्कृष्टता और उत्साह की अनवरुद्ध त्वरा सम्मिश्रित होती है। उत्साह भरा प्रेम या प्रेमोत्साह बलिदानवृत्ति का और श्रृंगार रस का एकान्वय है। वीर पुष्ट श्रृंगार रस की अभिव्यंजना भारतीय प्रबंध काव्यों में होती ही रही है जिसकी यह अभिनव परिणति है। बलिपंथी का प्रेम और वीरत्व उसे प्रेम-वीर बना देता है।

चतुर्वेदी जी की कविता का मेरुदंड बलिदान वाद ही है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए चतुर्वेदी जी ने प्रगीतकाव्य शिल्प कोही अपनाया है।

चतुर्वेदी जी की दृष्टि में -

" साहित्य चिंतक का यह दायित्व है कि वह पुरुषार्थ को दोनों हाथों में लेकर जीने का खतरा और मरने का स्वाद अपनी पीढ़ी में बोये। "

वे अपने बलिदान को राष्ट्र के स्वातन्त्र्य मन्दिर की नींव का पत्थर मानते हैं और कहते है कि - मरण और सपनों में मेरे धर

1- माखन लाल चतुर्वेदी -युग चरण पृ0 34

होती होड़ा-होड़ी । उस मनःस्थिति का निर्माण परतन्त्रता के वातावरण में हुआ है । सिपाही विद्रोही देशभक्त और प्रेमी के रूप में वे इसी बलिदान की अभ्यर्थना करते हैं । उन्हें नाश का त्यौहार सर्वाधिक प्रिय है और शूल के अमरत्व पर बलि-फूल के मैंने चढ़ाए । के सम्बन्ध में कभी आगापीछा नहीं सोचते । मरण ज्वार में उनकी इतनी प्रबल आस्था है कि वे प्रहार- रहित बलिदान से प्राप्त जीत या हार को स्वीकार ही नहीं करना चाहते हिमतरंगिणी एवं माता में उन्होंने राष्ट्रीय कार्यकर्ता की कतिपय अनुभूतियों को बलिदानवादी दृष्टिकोण से अभिव्यक्त भी किया है । उन्हे प्राण का श्रृंगार वहीं दिखाई पड़ता है जहा काल की झंकार होती है - स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उनका निर्देश है -

मिले रक्त से रक्त बने अपना त्यौहार सलोना
भरा रहे अपनी बलि से माँ की पूजा का यह दोना।[1]

वे बचाव या विश्राम को मृत्यु का अवमूल्यन समझते हैं । स्वतन्त्रता का जो सिपाही बलिदान को अपना अंतिम साध्य मानता उसका यह स्वरूप है -

सिर पर प्रलय नेत्र में मस्ती मुट्ठी में मनचाही
लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है मै हू एक सिपाही [2]

1- माखन लाल चतुर्वेदी -युगचरण, मुक्त गगन है मुक्त पवन है पृ0 253

2- माखन लाल चतुर्वेदी- सिपाही पृ0 94

वह जानता है कि बिना प्रेम के बलिदान झूठा पड़ जाता है –

प्रणय से मीठा मधुर जब बेड़िया झंकार उठी
सूलियों ने मांग भरकर कहा– जी मैं प्यार घोलो ।[1]

उनकी दृष्टि में रोटियों का राग गाने वाले ,ाणों को बचाकर अपने पुर्जों के गातों को झुठलाते हैं । वे बिस्तर की लाश है बलिपंथी न ैं । उधार के सपने का राजा राष्ट्र का नेता ही है जिसकी एक-एक बोली पर सौ–सौ सिर न्योछावर होते है । उसे कवि युग पुरूष के रूप में कृति की नव आशा यशोविभूति की प्रेरणा भी अभिलाषा और युग की अमर सांस मानता है जिसकी तान भरोर ? पर–

शीश की लहर उठे फसल की एक शीशदे
पीढ़िया बरस उठे हजार शीश शीश ले ।[2]

विवाह को कवि सर्वस्व का दान मानता है । क्योंकि "बेटी की विदा" को उसने आत्म समर्पण ही कहा है । कवि ने अपने समग्र त्याग तत्व को इन पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है –

उनके सपने हरियाता मेरी सूझी का पानी
मुझ से बलिपंथ हटा है मुझ पर दुनिया दीवानी

1– माखन लाल चतुर्वेदी –समर्पण – लालठीका पृ0 24।
2– माखन लाल चतुर्वेदी– तान की मरोर –समर्पण पृ0 255

इसलिए सूलो पर चढ़ना उसका जीवनोत्सव है । मौत की बेला को वह त्यौहार मानता है और- उसका खेल प्रलयकर है -

कवि अपनी प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में भी इस प्र वृत्ति को अपनाए है - यथा-

पहाड़ों को किस्मत में बलिदान लिखकर
नदी बह पड़ी थी जकड़कर बिलखकर
गरम रक्त था पी द्रिया जग रही थी ।
कि बाजी खुले प्राण की लग रही थी ।[1]

अन्यत्र उसने कहा है कि वह मनुष्य है जो सिर देने में संकोच करता है पर वृक्ष तो फूलों को फेंक देता है । आत्म समर्पण के समय मानवीय विश्वास की बदर्य न्यूनता इसका कारण है जो ऐसी प्रभुता या अर्पण की चुप्पी से पैदा होती है । कवि का सम्पूर्ण जीवन वंशीधर की खोज के लिए समर्पित है । भारत की स्वतन्त्रता का संघर्ष भी उसकी इसी खोज का ही एक अंग था। समर्पण के प्रति उनका इतना अधिकलगाव है कि वे समर्पण एवं मिलन को एक ही अर्थ में स्वीकार करते हैं । उनके इस समर्पण में भी मौलिकता है। आत्मसमर्पण के बिना परम सत्य का सानिध्य नहीं पाया जा सकता है । इस आत्मोत्सर्ग का माधुर्य जीवन की मधुरिमा से भी बढ़कर है ।

1- समर्पण - माखनलाल चतुर्वेदी

जीवन आज डाह कर उठा अर्पण में इतनी मधुराई ।[1]

माखनलाल जी के समर्पण में कहीं भी दैन्य आत्मग्लानि हीनता या अश्रु विगलित याचना नहीं है । उनके वैष्णवी आत्म समर्पण में उपनिषदों के धीर का ओज सहज ही मिल गया है ।

धीर तेरी धीरता पर सौ सराह निसार ।

तथा -

आन रख . हू बान पर सतनयन नीर बहा ।

समर्पण यों न स्वीकार गया समर्पण ।[2]

समर्पण तो सू ी का पथ है वह अन्तर में उठने वाला अमृत स्वर है जिसकी प्राप्ति के लिए विष-घट अपनाना पड़ता है ।

आत्मसमर्पण की दृष्टि से कबीर, सूर, मीरा, आदि से प्रेरणा प्राप्त करते हुए भी माखनलाल जी ने परम्परागत वैष्णव प्रेम को नवीन आयाम दिया है। उनकी लोकबद्धता ने वैष्णव भावना को नयी दिशा प्रदान की है । अपनी इस विलक्षणता और मौलिकता के कारण वे कबीर सूर, मीरा इत्यादि से अलग है । 26 जनवरी उनकी दृष्टि से बलिदान काव्य का वह छन्द है जिसमे स्वतन्त्रता साकार हुयी है इनके बलिपथ में हृदय की विवशता कोई व्यवधान नहीं उपस्थित कर पाते ।

1- बीजुरी काजल आंजरही -माखनलाल चतुर्वेदी पृ0 13

2- वेणुलो गूंजेधरा- माखनलाल चतुर्वेदी पृ0 37

वे समझते है कि युग नारी के हाथ मे प्रलय गीत और युगपुरुष के हाथ में मातृभूमि के गौरव की लालिमा है। बलिदान की भावना को वे मरण ज्वार कहते है जिसके अभाव में रक्त वेस्वाद अर्थात् पानी हो जाता है इसलिए वे संकल्प एवं समर्पण को महत्व देते हैं सफलता और सिद्धि को नहीं।

सिद्धि दासिया पीछे-पीछे चले समर्पण आगे -आगे "[1]

वे बचाव या विश्राम को मृत्यु का अवमूल्यन समझते हैं। स्वतन्त्रता का जो सिपाही बलिदान को अपना अंतिम साध्य मानता है उसका यह स्वरूप है -

सिर पर प्रलय नेत्र में मस्ती, मुट्ठी में मनचाही
लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है, मैं हूँ एक सिपाही

डा० नगेन्द्र ने ठीक ही लिखा है -

माखन लाल जी के वीर गीतों में विजय का उत्साह नही बलिदान का उत्साह है और यह गांधी जी की देन है। "

माखन लाल जी की कविता में आत्मोत्सर्ग का अपरिमेय बल कूट-कूट कर भरा है। कवि की समस्त अनुभूतियाँ कल्पनायें एवं अभिव्यंजनाए इसी प्रधान मनोभावना से उद्वेलित है।

1- माखन लाल चतुर्वेदी - चले समर्पण आगे-आगे पृ0 272

2- माखनलाल चतुर्वेदी - सिपाही, पृ0सं0 94

चतुर्वेदी जी की दृष्टि में साहित्य चिंतक का दायित्व है कि - वह पुरूषार्थ को दोनो हाथो में लेकर जीने का खतरा और मरने का स्वाद अपनी पीढ़ी में बाँटे । वे समझते है कि साहित्यकार अपने लिए न जिए, दीन, दुखियों के लिए भूखे प्यासे गरीबो के लिए क्रान्ति मचा दें । वे कवि को मूलतः विद्रोही मानते हैं जो रूढ़ियों का अनुकरण नही करता, बल्कि अपना मार्ग आप बनाता है । सुख और दुख प्रेम और कर्तव्य, प्रणय और प्रलय तथा व्यंग्य और बलिदान को साहित्यकार एक साथ अपनी कलम की नोक पर रख देता है ।

चतुर्वेदी जी की दृष्टि में अपनी जन्म भूमि के हित के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने वाला समर्पणवादी ही आदर्श देश प्रेमी बन सकता है । उसके लिए स्व सुख और स्वार्हित कीकल्पना भी वर्जित है । अपने प्यारे देश के लिए अपने प्राणों को हथली पर लिए वह इस प्रतीक्षा में रहता है कि कब उसकी पुकार हो कब वह अपना शीश देने चले । प्राणों से भी बढ़कर कोई वस्तु होती तो देश प्रेमी उसे भी अपनी मातृभूमि पर न्यौछावर करने में नहीं हिचकता । मातृभूमि का सुख है उसका अपना सुख है, उसकी मुक्ति ही उसकी सबसे बड़ी जीत है । वह मर मिटकर भी उस विजय को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है ।

चतुर्वेदी जी का बलिदानवाद मात्र उनकी रचना प्रवृत्ति नही है बल्कि उनका समग्र जीवन दर्शन है, उनका कथन है -

एक कवि के रक्त की पहचान और सिर का दान मांगती है और दूसरी वस्तु में समा सकने के कोमलता क्षणों के उत्तर समर्पण का सबूत चाहती है एक कवि का निश्चय है और दूसरी कवि की अनुभति बनकर रहना चाहती है । इनमें विषमता कहाँ । कवि का यह वक्तव्य डॉ० नगेन्द्र के इस कथन की पुष्टि करता है -

पं० माखन लाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्व में मधुर कवि और ओजस्वी सैनिक एक आलिंगनपाश में आबद्ध है, उनमें भावुक नारी और कर्मशील पुरुष का संयोग हैं ।"[1]

चतुर्वेदी जी भावुक देश प्रेमी है और अनन्य देशभक्त । वे अन्तर्मुख कवि है और बहिर्मुख जीवन द्रष्टा । चतुर्वेदी जी प्रेम नामक मनोवृत्ति के अन्तर्मुख कवि है। इस प्रेम को उन्होंने अतिशय विशद बना दिया है। और उसे आंतरिक विवशता की कसौटी पर कसा है। इसी प्रेम को इन्होंने एक नई अर्थनीति दी है । उनके प्रेमदर्शन के उस नव्य रूप को ही उनका बलि दर्शन या बलिदानवाद कहा जा सकता है । इसे सर्वस्व समर्पण प्राणार्पण , बलिदान या आत्मोत्सर्ग का पर्यायवाची समझना चाहिए । प्रेम की उत्कटता कवि को साहसी बना देती है । वह अपने संकल्पित इष्ट पर न्यौछावर हो जाने में अपनी कृत कार्यता या अस्तित्व की सार्थकता मानता है । इसलिए चतुर्वेदी जी का व्यक्तित्व

1- पं० माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व सं० प्रेमनारायण टण्डन पृ० 105

प्रेमवीर के आदर्श को चरितार्थता प्रदान करता है । उनका वीरत्व प्रेम का मुँह नही देखता वरन् उनका प्रेम वीरत्व का अनुसरण करता है । अभिप्राय यह है कि उनकी भावधारा जीवन-दर्शन अथवा आदर्श निष्ठा की अनुगामिनी है । अपनी तीव्र भावुकता अनन्य संकल्प निष्ठा त्याग समग्र रूप में प्रेमवीर का कवि का व्यक्तित्व सुस्थिर रख पाने के कारण वे हिन्दी साहित्य के अद्वितीय कवि सिद्ध होते हैं ।

2- क्रान्ति एवं विद्रोह स्वर मूलक राष्ट्रीय काव्य -

क्रान्ति और विद्रोह का स्वर माखनलाल चतुर्वेदी के राष्ट्रीय काव्य की दूसरी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है । राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के सक्रिय सैनिक होने के कारण उनके काव्य में स्वातन्त्र्य भावना की अभिव्यक्ति तो मिलती ही है भारत की पराधीनता के प्रति आक्रोश और तत्कालीन ब्रिटिश शासन के प्रति क्रान्ति एवं विद्रोह की भी अभिव्यक्ति मिलती है । रिफार्म एक्ट, रौलेट एक्ट, अमृतसर का अधिवेशन पूर्ण स्वराज्य की माँग तिलक की सजा जलियावाला बाग की घटनाएं आदि भी उनके राष्ट्रीय गीतों में समाहित हो गयी है । इनके माध्यम से चतुर्वेदी जी ने अपने आक्रोश एवं जोश को प्रकट देश के नवयुवकों को विद्रोह का शंखघोष करने के लिए आह्वान किया है। जेल की चहर दीवारी में बंद कैदी और कोकिला के स्वरो में भी वह अपेक्षा करता है

कि उसके द्वारा मृतक देश में एक प्रलयकारी जागृति आयेगी और इस पराधीनता को अन्त हो जायेगा । निम्नलिखित पंक्तियों में कवि ने कोकिला से यही अपेक्षा की है -

इन लौह सीकचों की कठोर पाशों में
क्या भर दोगी ? बोलो निद्रित लाशों में
क्या ? घुस जायेगा रूदन
तुम्हारा निःश्वासों के द्वारा
कोकिल बोलो तो ।
और सबेरे हो जायेगा
उलट-पुलट जग सारा
कोकिल बोलो तो । -1

चतुर्वेदी जी के राष्ट्रीय काव्य पर लोकमान्य तिलक की क्रान्तिकारी राष्ट्रीयता का पूरा प्रमाण है । लोकमान्य तिलक के इन प्रगीतों में सर्वत्र आह्लादमयी अग्नि ज्वाला, और जलन मिलती है। -2 बेगुली पर चढ़ने को उत्सव और मौत की बेला को त्योहार कहते हैं चुम्बनों का मूल्य वे सिर कहते हैं । हिमकिरीटिनी में संकलित जवानी शीर्षक कविता में उन्होंने विधुरा जवानी को सम्बोधित करते हुए उसे मरण का त्योहार कहा है । इस रचना में उनकी राष्ट्रीय भावनाओं का

1- हिमकिरीटनी - माखनलाल चतुर्वेदी -कैदी और कोकिला पृ0 137
2- डॉ0 गणेश खरे - आधुनिक प्रगीत काव्य पृ0 3।

प्रचण्ड स्वरूप देखने को मिलता है ।[1]

क्रान्ति का एक आवश्यक तत्व है उग्रता । और यह उग्रता हमेशा उनके काव्य पर हावी रही है ।

पराधीनता की अवस्था में वे आत्म विश्वास का मरजाना जीवन की एक सहज प्रक्रिया मानी जाती है – जबकि ऐसा स्वाभाविक नहीं है । होता यह है कि आत्मविश्वास की आग पर नियंत्रण की राख फैल जाती है बस एक फूंक चाहिए कि वह धधक उठती है। स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीयों की यही स्थिति थी इस स्थिति से उबारने का प्रयास चतुर्वेदी जी ने किया है । उनके काव्य में राष्ट्रीयता की बातें कम राष्ट्रीय जागरण की चेतना अत्यधिक तरूणों की उनकी अपनी परिभाषा है – तरूण वही है जिसमें कार्यक्षमता और उत्साही जीवन संवेदना हो , अवस्था से उसका कोई संबंध नहीं । उन दिनों राष्ट्रीय चेतना के स्वर चाहे जितने तीव्र रहे हो पर बुझे जरूर थे । आवाज और आवाज की भार में विरोध वैचित्र्य अवश्य था ।

ब्रिटिश शासन की दमन नीति के विरूद्ध कवि ने अपने भाव व्यक्त करते समय जिस शैली का प्रयोग किया है वह निर्भीकता की पराकाष्ठा है । कैदी और कोकिला शीर्षक कविता कवि की निर्भीकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

1– श्री माखनलाल चतुर्वेदी –हिमकिरीटनी पृ0 13

कविता मे एक ओर कारावास का भीषण एवं जीवन्त चित्र है तो दूसरी ओर ब्रिटिश शासकों की अन्याय अत्याचारपूर्ण नीति का सशक्त भाषा में उद्घाटन। डाकू, चोरो, बटमारो के डेरे में बन्द कवि आधा पेट भोजन खाकर विवशता के साथ बंदी का जीवन व्यतीत कर रहे है। जीवन पर नाना प्रकार के कठोर नियंत्रण है। शासन क्या है। मानों तम का गहरा प्रभाव ही देश पर छाया हुआ है। सन्तरी के पहरे की आवाज और बन्दियों की श्वास की घर-घर ध्वनि के सिवा कैद खाने की काली दीवारो के घेरे में कुछ सुनाई नही दे रहा है - ऐसे समय कोकिल की तान सुनकर कवि का मानस प्रश्नो से आन्दोलित हो उठता है -

क्या देख न सकती जंजीरो का गहना।
हथकडियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश राज्य का गहना
कोल्हू का चर्रक चूँ जीवन की तान
मिट्टी पर अँगुलियों ने लिखे गान ?
मैं मोट खींचता लगा पेट पर जुआ
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुआँ।-[1]

चतुर्वेदी जी स्वयं स्वतन्त्रता संग्राम के सक्रिय सेनानी थे और उन्होंने देश की आजादी के लिए लड़ते हुए अनेक बार कारागार की यातनाएं भी सही थी। फलतः अंग्रेज सरकार के नृशंसतापूर्ण एवं पाशविक

1- माखन लाल चतुर्वेदी - कैदी और कोकिला पृ0 139

अत्याचारों का पर्दाफाश करते हुए सम्पूर्ण भारत को चेतावनी दी कि अंग्रेजों ने जो शिक्षा प्रदान करके हमें आत्मगौरव से वंचित किया है हमारे मनुष्यत्व को मिटा दिया है तथा हमें पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ दिया है, उनके लिए हमें कसकर सर्वप्रथम शीघ्रातिशीघ्र उठना होगा और विदेशी शासन का जुआ अपने कन्धों से उठाकर फेंक देना होगा, तभी हम स्वतन्त्रता के साथ रह सकेंगे और आराम से जीवन बिता सकेंगे।

कवि रात्रि के शान्त वातावरण में अंधकार को भेदने वाली चुपचाप विद्रोह बीज बोने वाली कोयल को सम्बोधित करते हुए कहता है -

> काली तू रजनी भी काली शासन की करनी भी काली
> काली लहर कल्पना काली, मेरी काल कोठरी काली
> टोपी काली, कमली काली, मेरी लौह श्रृंखला काली
> पहरे की हुंकृति की व्याली तिस पर है गाली से काली[1]

विदेशी शोषक शक्तियों के प्रति घृणा तथा क्षोभ के रूप में कवि की राष्ट्रीय भावना का प्रसार इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

---

1- कैदी और कोकिला -माखन लाल चतुर्वेदी पृ0 139

ऊँची काली दीवारों के घेरे में
डाकू चोरों बदमाशों के डेरे में
जीने को देते नहीं पेट भर खाना
मरने भी देते नहीं तड़प कर रह जाना
जीवन पर अब दिन रात कड़ा पहरा है
शासन है या तम का प्रभाव गहरा है ।"[1]

अपने ही घर इस प्रकार के पहले को देखकर खून खौल उठना अस्वाभाविक नहीं । रक्त की यह उष्णता ही जवानी का प्रतीक है।

कवि ने मरण के त्यौहार के रूपमें जीवन की इस जवानी का अभिनंदन किया है। उनकी दृष्टि में देश की दुरवस्था को देखकर जिस तरूण हृदय में उबाल नहीं आ जाता है वह निरर्थक है मृत्यु तुल्य है। इसलिए जिस कवि ने जवानी के दिनों में एक पुष्प के ब्याज अप्सराओं के गहने गूँथे जाने एवं उनके चरणों तले कुचले जाने की कामना प्रकट की थी उसी ने देश की सीमा को जब विदेशियों द्वारा पदमर्दित होते देखा तो पचहत्तर वर्ष की आयु में उसका पौरूष गरज उठा और उसने बूढ़े जवान सबको प्राणदान के लिए आह्वान किया -

---

1- माखन लाल चतुर्वेदी- कैदी और कोकिला पृ0 137

बूढ़ों को क्या बात युगों की तरूणाई के दिन आये हैं

चट्टानों खंदकों पहाड़ो को खाई के दिन आये हैं

गंगा मांग रही है मस्तक यमुना मांग रही है सपने

आज जवानी स्वयं टटोले सिर हथेलियाँ अपने-अपने

.. .. ..

चलो सजाओ सैन्य समय की भरपाई के दिन आये हैं

आज प्राण देने के युग की तरूणाई के दिन आये हैं ।-1

श्री माखन लाल चतुर्वेदी का सम्पूर्ण राष्ट्रीय काव्य उनके क्रान्तिकारी व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति है । वे साहित्य में राष्ट्र की तरूणाई उसके बलिदान और उसकी विजय की अभिव्यक्ति को आवश्यक मानते हैं ।

§3§ सामयिक राष्ट्रीय चेतना का काव्य -

चतुर्वेदी जी के राष्ट्रीय काव्य में भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की सजीव झाँकी मिल जाती है । राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्रामकेसैनिक होने के कारण आपके राष्ट्रीय काव्य में देश की सामयिक राजनीतिक उथल पुथल का चित्र भी मिल जाता है । इसलिए उनके राष्ट्रीय काव्य में समय के पैरों के निशान या तत्कालीन राष्ट्रीयता का दर्पण कहा जाता है ।

1- माखन लाल चतुर्वेदी -मरण ज्वार चलो सजाओ सैन्य पृ० 272

इनके इस प्रकार के राष्ट्रीय काव्य में सामयिक राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति संश्लिष्ट रूप में मिल जाती है । इसमें कहीं तो स्वातंत्र्य संग्राम की घटनाओं का चित्रण है तो कहीं जेल जीवन की मार्मिक अनुभूतियाँ मिलती है । देश के अंग्रेजी शासन के क्रिया-कलाप तथा तज्जन्य प्रतिक्रियाओं से प्रभावित होना उनके लिए स्वाभाविक ही था । इसी पृष्ठभूमि पर उन्होंने रिफार्म एक्ट, रौलर एक्ट और जलियाँवाला बाग आदि की घटनाओं पर अपने भाव व्यक्त किये हैं । जेल जीवन से सम्बन्धित रचनाओं में प्राय: अत्याचार के प्रति आक्रोश और कहीं व्यंग्य कहीं संकल्प आदि की मन:स्थितियों का चित्रण भावात्मकभूमिका में ही किया गया है । इस दृष्टि से निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है -

बंध चली ममता कसी जंजीर सी
यह परिस्थिति का गुनहखाना हुआ
घिर गये आत्मीय में बेबस हुआ
भोग की सहमार दीवना हुआ ।"[1]

इतना ही नहीं कवि उस सामयिक परिस्थितियों में राष्ट्रीय भावनाओं के संघर्ष को कुचलने के लिए जिन राजनैतिक कानूनों तथा उपायों का प्रयोग किया था उन सभी का निर्भयता के साथ स्पष्ट शब्दों में उल्लेख करता हुआ कवि कहता है कि -

---

1- माखन लाल चतुर्वेदी -समर्पण पृ0 89

हथियार न लोकि हथकड़िया
रौलट का हियमें घाव लिए
डायर से अपने लाल कटा
ये टूट पड़ेगें, जरा, केसरी कंपित कर हुंकार उठे
हाँ आन्दोलन के धन्वा को तू कर मैंने टंकार उठे ।"[1]

कवि को लेखनी स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु न केवल देशवासियों के अन्तस्तल में विद्रोह को भावनाओं को जन्म देती है वरन् प्रकृति के अनन्तरूपे ां में अनन्त प्रतिक्रियाओं को अपनी ही अनुभूतियों में चित्रित करती है और इसलिए -

विद्रोही है हमी हमारे फूलों में फल आते
और हमारी कुरबानी पर जड़ भी जीवन पाते ।[2]

चतुर्वेदी जी स्वयं स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी थे । उन्होंने देश को आजादी के लिए लड़ते हुए अनेक कारागार को यातनाएं सही थी । फलतः अंग्रेज सरकार के नृशंसतापूर्ण एवं पाशविक अत्याचारों का मार्मिक एवं सजीव चित्र उनकी कविताओं में अंकित हो गया था -

क्या देख न सकती जंजीरों का गहना ?
हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश राज्य का गहना ।
कोल्हू कार्यक यू जीवन की तान

1- माखन लाल चतुर्वेदी - तिलक पृ0 65-66 ।

2- माखन लाल चतुर्वेदी - विद्रोही पृ0 156

मिट्टी पर अँगुलियों के लिखे गान ।

हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जुआ

खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुआँ ।[1]

कारागार की यातनाएं उन्हें कभी हतोत्साहित नहीं कर नही पायी उल्टे, उन्होंने उनमें सुख का अनुमान किया । उन्होंने उन्हें हँसते-हँसते झेला । नवयुवकों एवं देश भक्तों के लिए उनका काव्य प्रेरणा का स्रोत है । उन्होंने युवकों का आह्वान करते हुए लिखा है -

द्वार बलि का खोल चल भू डोलकर दे

एक हिमगिरि एक सिर का मोल कर दे

मसलकरअपने इरादों सी उठाकर

दो हथेली है कि पृथ्वी गोल कर दें

रक्त है या रंगों में क्षुद्र पानी

जाचकर तू सीस दे दे कर जवानी।[2]

राष्ट्रीय भावना का कवि केवल राष्ट्र के अन्तर्बाह्य सौन्दर्य का भावुक गायक नहीहोता अनाकांक्षाओं का एकान्त ऋत्विक नहीं होता और न वह तापमापक यंत्र होता है बल्कि वह एकऐसा विक्रान्त जननायक होता है जिसकी वाणी के विजृम्भण मात्र से काल की कुक्षि का भूचाल

1- हिमकिरीटनी -माखन लाल चतुर्वेदी पृ0 17

2- माखन लाल चतुर्वेदी - जननी - पृ0 215

सा आ जाता है । उसके शब्द प्रेरणा का पांचजन्य होते है और उसके छंद महाकाल के तृतीय आग्नेय नेत्र का उन्मेष होते हैं । जनता के उत्ताप-ताप से उद्गीर्ण उसके स्वरों में लोक चेतना कोउद्बुद्ध कर देने का अपार बल होता है। वह जन मन की शिलीभूत जड़ता और तमस परबज्र प्रहार कर उसेअपनी आत्मा के आलोक से परिचित कराता है । वकि उसकी प्रेरणा का पंचामृत पीकर जनता के मर्म-नेत्र उन्मीलित हो जाते हैं । अतः राष्ट्रीय भावना का कवि ही सात्विक जन-नायक होता है । चतुर्वेदी जी के काव्य में ऐसी प्रेरणा के मोरपंख खुले-खुले दीख पड़ते हैं । ज्यों हमे लक्ष्य सिद्धि के लिए प्राणो का होम करने से सन्नद्ध कर देते है तरूणो को ललकारते हुए वे कहते हैं -

लाल चेहरा है नहीं ? फिरलाल किसके ?
लाल खून है नही ? अरे कंकाल किसके
विश्व है असि का नही संकल्प का है
हर प्रलय का कोण कायाकल्प का है
फूल गिरते शूल शिर ऊंचा किये है
रसों के अभिमान को नीरस किये हैं ।
खून होजाये न तेरा देख पानी
मरण का त्योहार जीवन की जवानी ।[1]

1- हिमकिरीटिनी- माखन लाल चतुर्वेदी -मरण त्योहारपृ0 119

तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया को अभिव्यक्ति के अतिरिक्त देश की दुर्दशा का चित्रण तथा वर्तमान शासन के प्रति तीव्र असन्तोष की भावना को अभिव्यक्ति मिलती है । अंग्रेजी शासन में आपत्तियों की कालरात्रि में पराधीनता के बन्धनों में बंधी हुई अन्याय के भार से अवनत आँसू ढाती हुई जड़वत खड़ी मातृभूमि की दुर्दशा कवि का ध्यान आकृष्ट करती रही है कैदी और कोकिला कविता में राष्ट्र का यह चित्र कितना करूण है -

जीवन पर अब दिन रात कड़ा पहरा है ।
शासन है या तम का प्रभाव गहरा है ।-[1]

वर्तमान शासन के प्रति तीव्र असन्तोष की भावना चतुर्वेदी की सभी राष्ट्रीय कविताओं में मिली रहती है। कवि अपनी कविताओं के द्वारा भारतीय जन-जीवन को स्वदेश पर बलि होने के लिए प्रेरणा देता रहा । जनमानस में देश भक्ति की तीव्र लहरें उठाता रहा है और भारतीय तरूणों को आगे बढ़ने के लिए सतत उत्साह प्रदान करता रहा । परन्तु इस प्रेरणा में अंधानुकरण की अथवा भक्ति की भ्रामक कल्पना न थी अपितु उन्हें देश भक्ति के सीधे-सच्चे एवं ऋजु पथ पर तीव्र गति से नहीं अथवा आँधी की तरह नहीं प्रत्युत धीरे-धीरे मंदगति से स्थिरता के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की ।

1- माखन लाल चतुर्वेदी - हिमकिरीटनी पृ0 15

कवि चाहे बाहर रहा हो या जेल के अन्दर, अपनी प्रेरणामयी कविताओं के द्वारा बराबर स्वदेशानुराग के गीत गाता रहा और अपनी ओजस्वी वाणी के द्वारा भारतीय जनमानस में देशभक्ति की अदम्य भावना जगाता रहा। चतुर्वेदी जी की सुप्रसिद्ध कविता कैदी और कोकिला ऐसी ही कविता है जिसमें कवि की आत्मा मानो साकार हो उठी है कवि जेल की भयावह स्थिति का चित्रण करते हुए भी निराश एवं हताश नहीं दिखाई पड़ता। वह कोयल की वाणी सुनकर एक विशेष उत्साह एवं अनूठी उमंग से परिपूर्ण दिखाई देता है और अपने हृदय में प्रज्वलित देश प्रेम की उत्कट भावना को व्यक्त करता हुआ पुकार कर उठता है -

तुझे मिली हरियाली डाली
    मुझे नसीब कोठरी काली
तेरा नभ भर में संचार
    मेरा दस फुट का संसार
तेरे गीत कहावें वाह
    मेरा तो रोना भी गुनाह
देख विषमता तेरी मेरी
    तिस परबजा रही रण भेरी
इस हुँकृति पर अपनी कृति से
    और कहो क्या कर दूँ

कोकिला ! बोलो तो !

मोहन से व्रतधर प्राणों का

आसन किसमें भर दूं

कोकिल ! बोलो तो ![1]

सामयिक राष्ट्रीय चेतना के काव्य में जन जागरण और उद्बोधन का स्वर भी पर्याप्त तीव्र है। स्वतन्त्रता की वेदी पर बलिदान होने के लिए देश के नवयुवकों को चतुर्वेदी जी ने बार-बार ललकारा है। प्राण अन्तर में लिए, पगली जवानी कौन कहता है कि तू विधवा हुई - खो आज पानी[1] चढ़ा दे स्वातन्त्र्य प्रभु पर अमर पानी[2] उठ कोटि कोटि के महाप्राण ! सृजन प्रलय पर ताण्डव-लय पर, कर कूजि नववेदगान[4] आदि कथनों मेंउद्बोधन का स्वर ही व्यक्त हुआ है।

4- वीर पूजा एवं श्रद्धांजलि परक राष्ट्रीय काव्य -

चतुर्वेदी जी के राष्ट्रीय चेतना सम्बन्धी काव्य में वे कविताएं भी सम्मिलित है जो लोकमान्य तिलक स्वर्गीय माधवराज जी सप्रे स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी महात्मा गांधी तथा जवाहर लाल नेहरू के सम्बन्ध में विशेष कर उनके निधन के अवसर पर श्रद्धांजलि के रूप में लिखी गयी है।

1- माखन लाल चतुर्वेदी -कैदी और कोकिला पृ0 172

2- माखन लाल चतुर्वेदी- हिमकिरीटनी पृ0 112

3- वही, पृ0 115

4- माखनलाल चतुर्वेदी -मरण ज्वार पृ0 17

इनमें उन व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं का चित्रण तो मिलता ही है साथ ही कवि की अनुभूति भी व्यक्त हुई है " तिलक रोने दो लुट गया आज तथा स्वर्गीय सप्रे जी की महायात्रा पर इसी प्रकार की रचनाएं है । संस्मरणात्मक रचनाओं में संतोष बन्धन सुख , राष्ट्रीय झण्डे की भेंट आदि रचनाएं भी महत्वपूर्ण है जिनमे कवि की राष्ट्रीय भावना अपने प्रखर रूप में मिलती है ।

श्रद्धांजलि परक रचनाओं में कवि के राष्ट्रीय व्यक्तित्व के साथ-साथ इन व्यक्तियों के प्रति उसकी आत्मीयता और करूणा भी व्यक्त हुई है । तिलक शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ विशेष मार्मिक बन पड़ी है -

वज्रपात । मर मिटे हाय हम ।
रोने दो संहार हुआ
कसम कलेजे काढ़ दुखी हैं
बेसमय पर वार हुआ ।"[1]

राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत कविताओं में वीर-पूजा बन्धन सुख निःशस्त्र सेनानी अलिंगंथी आदि में इस कोटि की रचनाएं है जिनका आधार अहिंसा मूलक आन्दोलन है। इन कविताओं में गांधी जी की विचारधारा का सबसे प्रखर समर्थन माखनलाल जी ने किया है ।

1- माखन लाल चतुर्वेदी -हिमकिरीटनी पृ0 77

जिस प्रकार उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद की रचनाएं गाँधीवाद से परिपूर्ण है वैसे माखन लाल जी की कविताएं थी । बंधन – सुख कविता के द्वारा कवि ने सत्याग्रह की अहिंसामूलक भावना का बड़ी समर्थ शैली में वर्णन किया है । यह कविता गणेश शंकर विद्यार्थी की गिरफ्तारी पर लिखी गयी थी – आत्मदेव प्यारी हथकड़ियाँ और बेड़िया दे परितोष उतनी ही आदरणीया है जितना वह जय-जय का घोष तू सेवा है सेवाव्रत है, तेरा कसूर नहीं शूली वह ईसा की शोभा वह विजयी दिन दूर नहीं ।[1]

निःशस्त्र सेनानी कविता में भी कवि ने उसी भाव का प्रबल समर्थन किया है । महात्मा गांधी ही उस कविता में चित्रित हुए है –

> प्यार उन हथकड़ियों से और कृष्ण के जन्म स्थल से प्यार
> हार 9 कंधों पर चुभती हुई अनोखी जंजीर है हार ।

लोकमान्य तिलक के स्वर्गारोहण पर कवि ने जो उद्गार व्यक्त किये है उनमें भी भारतीय स्वाधीनता संग्राम की पुकार गूंज रही है तिलक के निधन से शोकार्त्त कवि देश के दुर्भाग्य पर दृष्टिपात करता हुआ भी उसके नव-निर्माण की कल्पना को नही छोड़ सका है ।

> बलि होने की परवाह नहीं मै हू कष्टों का राज्य रहे,
> मै जीता ,जीता हूँ माता के हाथ स्वराज्य रहे । [3]

1- माखन लाल चतुर्वेदी- निःशस्त्र सेनानी पृ0 128
2- माखन लाल चतुर्वेदी – निःशस्त्र सेनानी पृ0 128
3- वही, पृ0 128

चतुर्वेदी जी ने राष्ट्र निर्माताओं तथा राष्ट्र- रक्षा हेतु युद्ध में जाने वाले सैनिकों का यशगान भी किया है। यह यशगान प्रगीत रूप में अधिक है । जय तुम्हारी जय में आचार्य विनोबा भावे का उल्लेख है । एशिया की गोपियां बार-बार आती है में नेहरू जी को ऋतुराज का प्रतिरूप सिद्ध किया गया है। बापू की नोआखाली की यात्रा का चतुर्वेदी जी ने एक लम्बी कविता में वर्णन किया है। इसी प्रकार उन्होंने क्रान्ति द्वारा सिद्धि प्राप्ति की कामना स्वातन्त्र्य यज्ञ में आत्माहुति देने वाले सरदार भगत सिंह चन्द्रशेखर आजाद आदि अन्य वीरों का भी हार्दिक अभिनन्दन किया है । लोकमान्य तिलक के निधन पर कवि के शोकोद्गार तिलक शीर्षक रचना में बड़े ही मार्मिक रूप में लिपिबद्ध है । लोक मान्यतिलक का अभिभाज्य भारत तथा स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है सम्बन्धी चतुर्दिक विवादित समुद्रघोष इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

काश्मीर कुमारी सुनते थे, भारत मेरा अभिभाज्य रहे ।
दान वैभव को सुख साधन की धुन, जीवन में सब त्याज्य रहे
बलि होने की परवाह नहीं मै हूँ कष्टों का राज्य रहे
मै जीता-जीता हू माता के हाथ स्वराज्य रहे ।[1]

1- माखन लाल चतुर्वेदी - तिलक पृ0 65

§5§ गांधीवादी राष्ट्रीय चेतना का काव्य -

चतुर्वेदी जी के राष्ट्रीय काव्य पर महात्मागांधी की राष्ट्र नीति का पर्याप्त प्रभाव है । उनकी अदालत में सत्याग्रही के नाते बयान शीर्षक कविता में गांधी जी द्वारा प्रदत्त सत्याग्रह तथा अहिंसा के सिद्धान्तों का ही वर्णन किया गया है ।[1]

दुर्गमपथ कविता में भी महात्मागांधी की अहिंसा नीति की व्याख्या है कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है -

जो कष्टों से घबड़ाऊँ तो मुझमें कायर में भेद कहाँ ?

बदले में एक बहाऊँ तो मुझमें डायर में भेद कहाँ ?[2]

चतुर्वेदी जी गांधी जी से अत्यन्त प्रभावित हुए है । गांधी जी के प्रभाव के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख अंग थे - सत्याग्रह हिन्दू मुस्लिम ऐक्य अछूतोद्धार एवं स्वदेशी व्यवहार । माखन लाल जी ने इन सभी विषयों को काव्य रचना का आधार स्वीकार किया । मंदिर के चाँद चमकने की बात मसजिद में मुरली की तान इसी बात का संकेत करती है -

मंदिर में था चाँद चमकता, मसजिद में मुरली की तान

मक्का हो चाहे वृन्दावन होते आपस में कुर्बान "

1- माखन लाल चतुर्वेदी -माता पृ0 82

2- माखन लाल चतुर्वेदी - माता पृ0 75

चतुर्वेदी जी ने गांधी जी के अंहिसा मूलक विचारों नैतिक एवं आत्मिक बल की श्रेष्ठता तथा सत्य के वास्तविक स्वरूप का अंकन तत्कालीन गांधी वादी विचारधारा से प्रभावित होकर किया था ।[1]

इस विवेचन की दूसरी विशेषता भावात्मकता ।

बन्धव सुख, सिपाही, सिपाहिनी, राष्ट्रीय झन्डे की भेंट राष्ट्रवीणा, कोमलतम, बन्दीखाना मुक्ति अमरते कहाँ से आदि कविताओं में गांधीवादी दर्शन की अभिव्यक्ति मिलती है । यह काव्य वीरोन्मेषपूर्ण है । और उसका उदात्त स्वर हमारे काव्य में एक नई कड़ी जोड़ता है ।"[2]

इनमे राष्ट्रीयता का स्वर व्यंग्य है और उसका आश्रय है- गांधी तथा उनके सिद्धान्त ।

यद्यपि महात्मा गांधी की अहिंसानीति से वह पूर्णतया प्रभावित है किन्तु क्रान्ति का एक प्रबल आवेग भी उसमें परिलक्षित होता है । अतएव जहाँ एक ओर कवि की भावना है -

ले कृषक सन्देश कर बलि वन्दना
ध्वज तिरंगे की करो सब अर्चना
घूमता चरखा लिए गिरि पर चढ़ा
ले अहिंसा शस्त्र आगे ही बढ़ो ।[3]

1- डॉ0 सुषमा नारायण- भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति पृ0 282

2- डॉ0 रामरतन भटनागर- अध्ययन और आलोचना पृ0 245

3- माखन लाल चतुर्वेदी -मरण त्यौहार पृ0 120

वही कवि दूसरी ओर प्रबलता के साथ भैरवीराग गुंजार मान परिलक्षित होता है। कवि ही के शब्दों में -

> विश्व है अग्निका ? नहीं संकल्प का है,
>
> हर प्रलय का कोण कायाकल्प का है।[1]

गांधी जी के प्रभाव के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख अंग थे - सत्याग्रह, हिन्दू, मुस्लिम ऐक्य अछूतोद्धार एवं स्वदेशी व्यवहार। माखन लाल जी ने इन सभी विषयों को काव्य रचना का आधार स्वीकार किया है। मंदिर में चमकने की बात मस्जिद मुरली की तान इसी बात की ओर संकेत करती है -

> मंदिर में था चाँद चमकता मस्जिद मे मुरली की तान
>
> मक्का हो चाहे वृन्दावन होते आपस में कुर्बान।

इसलिए कुछ लोग यह स्वीकार करते हैं कि माखन लाल जी की रचनाएं विशुद्ध गांधी दर्शन {विचार धारा} का प्रतिनिधित्व करती है, पर ऐसा नहीं कोई भी दावा नही किया जा सकता। उनकी रचनाओं का सृजन आधार मात्र राष्ट्रीयता की भावना है और उस भावना के विकास के लिए वे गांधी और तिलक में कोई भेद नहीं रख सके हैं। यह जरूर है कि तिलक के उपरान्त गांधी जी एक लम्बेसमय तक राष्ट्रीय आन्दोलन के रंग-मंच पर टिक सके है अतः उनके काव्य पर

1- माखन लाल चतुर्वेदी - मरण त्यौहार पृ0 120

इनका प्रभाव स्वाभाविक है ।

हिमकिरीटनी में उन्होंने सम्पूर्ण भारत को एक कारागार के रूप में स्वीकार किया है जिससे छुड़ाने के लिए कभी देश के यौवन को कभी युग पुरूष को जगाया है और कभी मोहनरूपी मोहनदास गांधी को जनता के नेतृत्व के लिए आहूत किया है । स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए शक्ति साधना का यही स्वरूप उस समय के लिए उपयुक्त था । कवि की इससमय की आकांक्षा इन पंक्तियों में देखी जा सकती है -

....प्रथम भारत है हृदय हमारा देश
मेरे मरने जीने का धन प्यारा पूज्य हमारा देश
फिर शासन अपनी का हो हो अपनेलिए किया जावे
हृदय बढ़ाकर प्राण चढ़ाकर उसे अवश्य लिया जावे
इसके बाद विदेशी शासन हो चाहे जगदीश्वर का
वह स्वराज्य कहला न सकेगा हो अपना अपने घर का ।"[1]

बलिपंथी कारागार को कृष्णमन्दिर,हथकड़ी को माता, पृथ्वी को शैया और आकाश को आच्छादन मानकर नेता के संकेत पर सुरपुर तक को ठुकराकर राष्ट्राराधना में स्वयं कोलोन कर देने में पूरी तरह तत्पर हो रहे थे । और कवि इसके लिए उन्हें प्रेरणा दे रहा था ।

1- सत्याग्रही का बयान -माखन लाल चतुर्वेदी पृ0 135

कवि ने अपने युगपुरुष की प्रशंसा एवं स्वाभाविकता के साथ अपनी भावनाएं व्यक्त करते हुए कहा है -

तेरे कंधों लहरावे प्रतिभा की खेती
तेरे हाथों चले नाद जग संकट खेती
तुझ पर पागल बने आज उन्मत जमाना
तेरे हाथों बुने सफलता ताना बाना
तू युग की हुंकार अमर जीवन की वाणी
तेरे साँसो अमर हो उठे युग-कल्याणी ।[1]

तत्पश्चात् कवि युग पुरुष को प्रेरणा प्रदानकरते हुए जागृत होने के लिए पुकारा है और उसे सारे भारत राष्ट्र का नायक सिद्ध करते हुए राष्ट्र की बागडोर अपने हाथ मे लेकर नेतृत्व करनेकी भी प्रेरणा प्रदान की है । निस्संदेह कवि ने युगपुरुष रूपी महात्मागांधी के राष्ट्रव्यापी प्रभाव का एकसच्चा चित्रअंकित किया है।

इतनी ही नही कवि ने अपने राष्ट्रनायक, राष्ट्र एवं स्वदेश के प्रति उत्कट प्रेम व्यंजनाकरते हुए क्रांति एवं विद्रोह का स्वर भी मुखरित किया है।कवि की कितनी ही कविताएं ऐसी मिलती है जिनमें तत्कालीन आंदोलनो से प्रेरणा प्रदान की गयी है । और विद्रोह के लिए जन-जीवन में हलचल पैदा की गयी है । विद्रोह नामक की कविता में

1- माखन लाल चतुर्वेदी - युगपुरुष पृ0 126

कवि ने किसी वृक्ष के छोटे से दाने के विद्रोह का वर्णन करते हुए जनता के छोटे से छोटे व्यक्ति को अपने अधिकारों अपनी सुख-सुविधाओं एवं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शक्ति संचय करके विद्रोह करने की प्रेरणा प्रदान की गयी है -

मिट्टी के तह फटते जाते हम है उठ जाते
विद्रोही है-जो उठते है वे ही है हरियाते
आई जहां रूकावट हमको कहीं झगड़ते देखो
दायें-बायें सीधे हमको आगे बढ़ते देखो
और सनसने तूफानों में हमें अकड़ते देखो
हर विपदा पर हर प्रहार पर हमें उमड़ते देखो
फल फेकेंगें कभी- फूल भी फेकेंगें हम भू पर
विद्रोही पर अपना मस्तक किये रहेगें ऊपर ।[1]

पहले कुछ दिनों तक तो कवि क्रांतिकारियों के साथ रहा तथा कुछ दिवसों तक उसने क्रान्तिकारियों के दल में भी सक्रिय रूप से कार्य किया , किन्तु महात्मागांधी के सम्पर्क में आने पर कवि को विश्वास हो गया कि हम हिंसामयी क्रान्ति के द्वारा स्वाधीनता प्राप्त नही कर सकते, इसके लिएअहिंसक आन्दोलन ही ठीक रहेगा और इसी आन्दोलन द्वारा हम मातृभूमि कोआजाद करा सकते हैं ।

1- माखन लाल चतुर्वेदी -विद्रोही 154

चतुर्वेदी जी क्रान्ति और विद्रोह के मार्ग में भी गांधी जी से प्रभावित है। उनका आदर्श विद्रोही ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों का न होकर सेवाव्रत और रचनात्मक कार्य कोही अपना ध्येय समझता है। उस रूप में चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीयता एक मानव धर्म है जो विश्व के कल्याण की कामना रखता है ।[1]

राष्ट्र के युद्धक्षेत्र में स्वतन्त्रता के लिए बलि होने के लिए एक भारतीय आत्मा का आह्वान किया है ।

श्री स्वतन्त्रता की वेदी पर प्राण पुष्ट होकर निश्चल
देख चढ़ा पूजा हितलायी, नयनो की गंगा का जल ।[2]

केवल कृष्ण भक्ति की पूजा प्रणय याचना समर्पण भावना तथा बलिदान तक ही कवि का देश प्रेम सीमित नही है वह स्वतन्त्रता देवता के चरणो मे चुभने वाले उन कठिन क्रूरताओं के कंटको पर भी प्रकाश डालता हुआ अहिंसा आत्मिक बल का नामकहकर अहिंसा और शांति को अपनाने की राय देता है। वह दुर्गा माता से प्रार्थना करता है -

माता मेरे बधिकों का कालो मर्दन कल्याणकरे,
किसी समय उनेक हृदय में मानवता के भाव भरे ।[3]

1- श्री रामाधार शर्मा - माखन लाल चतुर्वेदी - एक अध्ययन पृ0 45
2- एक भारतीय आत्मा के राष्ट्रीय स्वर -डॉ0 देवेन्द्र कुमार शास्त्री पृ0 137
3- वही, पृ0 138

कवि सब ओर से विद्रोह की मस्ती में मस्त है यद्यपि महात्मा गांधी की अहिंसा और शान्ति से वह पूर्णतया प्रभावित है, किन्तु क्रान्ति का एक प्रबल आवेग भी उसमें लक्षित होता है। अतएव जहाँ एक ओर कवि की भावना है -

ले कृषक संदेश कर बलि वंदना
ध्वज तिरंगे की करो सब अर्चना
घूमता चरखा लिए गिरि पर चढ़ो
ले अहिंसा शस्त्र आगे ही बढ़ो।[1]

वही दूसरी ओर प्रबलता के साथ भैरवी गुंजारमान परिलक्षित होता है कवि के ही शब्दों में -

विश्व है असि का ? नहीं संकल्प का है
हर प्रलय का कोण कायाकल्प का है।

इस प्रकार जो कवि सत्य एवं अहिंसा का उद्घोष करता है और देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उन्हें अमोघ अस्त्र मानता है वही ललकारता हुआ कहता है -

जम्बुका चलो। जहाँ संहार है
वन्य पशुओं का लगा बाजार है
आज सारी रात कूकें वहाँ,
मोम दीपों का मरण त्यौहार।[2]

1- माखन लाल चतुर्वेदी -मरण त्यौहार पृ० 119
2- वही पृ० 120

§6§ देश- प्रेम देश वंदना और राष्ट्रीय प्रशस्ति सम्बन्धी राष्ट्रीय काव्य-

माखन लाल चतुर्वेदी का देश प्रेम मातृ भूमि कास्वतन्त्रता के लिए अपने प्राण न्योछावर करने वाले सेनानी का प्रेम है। मातृभूमि उसके लिए माँ है जिसकी पूजा का दोना वह अपने रक्त से भरने को प्रस्तुत रहता है। चतुर्वेदी जी के निःशस्त्र सेनानी का यह रूप देखिए -

प्यार के जन्म स्थल से प्यारा
कृष्ण के जन्मस्थल से प्यारा
हार ? कन्धों पर चुभती हुई
अनोखी जंजीरे हैं हार ।[1]

राष्ट्र के अतीत गौरव के चित्र चतुर्वेदी जी की कविताओं में कहीं-कहीं ही मिलते है। इन चित्रों में भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष का स्वरूप तत्कालीन विषमता के साथ तुलनात्मक रूप में, प्रस्तुत किया गया है -

कहाँ देश में है विशिष्ट जो तुझको ज्ञान बतायें ?
किये गये निःशस्त्र, किसे कौशिक रण कला सिखाये ।[2]

1- माखन लाल चतुर्वेदी : निःशस्त्र सेनानी पृ0 29
2- माखन लाल चतुर्वेदी : माता पृ0 35

चतुर्वेदीजीकी वर्तमान की तुलना में अतीत गौरव की अनुभूति अत्यधिक भावात्मक है । उसका विषाद पक्ष भी अधिक मूर्त है । वर्तमान काल में अतीत गौरव के चिन्हों के मिटते रूप का निम्नलिखित वर्णन भावात्मक तो है ही विषाद की गहरी रेखायें भी प्रस्तुत करता है -

त्रिपुरी की नगरी जमीन में गड़ी नर्मदा तट पर
महलों के महराज लो: हैं तालों के पनघट पर
गांडवगढ़ गड़ता जाता है नित्य धूल खाता है
जन-समूह उसका शवदर्शन पुण्य लूट आता है
आज बना इतिहास बेचारा निठुर प्रकृतिकाहास
ले बैठी स्वातन्त्र्य भावना मिट्टी में सन्यास ।[1]

कुछ कविताओं में चतुर्वेदी जी ने भारत की भौगोलिक एकता के सुन्दर एवं भावात्मक चित्र खीचे हैं । उत्तर में हिमालय एवं तीन ओर से सागर द्वारा दक्षिण भारत देश जिसके हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख सभी धर्मावलम्बी रहते है, की पराधीनता से क्षुब्ध होकर विषादात्मक स्वर में कवि द्वारा पूछा गया प्रश्न क्या कहा कि यह घर मेरा है, विशेष करूणा सिक्तहै ।[2]

1- माखन लाल चतुर्वेदी -हिमकिरीटनी पृ0 54-55
2- वही, पृ0 144

चतुर्वेदी जी ने राष्ट्र की वन्दना करते हुए उसका मानवीकरण किया है । मुझको कहते है माता कविता इस दृष्टि से विशेष सार्थक है । उसमें विशेषणों के साभिप्राय प्रयोग द्वारा कवि ने वात्सल्य भाव की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति की है । मुझसे मेरे पूर्व जन्म का बचपन खेल रहा है, मेरे जी का टुकड़ा हँसकर मुझे ढकेल रहा है ।[1] आदि पंक्तियों में वात्सल्य भाव राष्ट्रीयता के स्वर का ही प्रतिरूप है। कवि ने भारतवर्ष को बन्दी खाने के रूप में चित्रित किया है । उस रूप में वह हिमगिरि की दीवार की कारागृह गंगा जमुना की गले का तौक, बंग खम्भात सागरों की लहरों की हथकड़िया रामेश्वर पर चढ़ि तरंगों की पैरों की कड़ियां और भारत की तीस करोड़ जनता को बंदी कहता है -

शंकर थी यह कारागृह है हिमगिरी की दीवार
धन्य बंग खम्भात आर्ध्य की लहरों की हथकड़ियाँ
रामेश्वर पर चढ़ी तरंगे बनी पैर की कड़ियाँ
कोमलतर बंदी खाने के तीस करोड़ बन्दी है
हो गुलाम, जीवन की बेहोशी में आनन्दी है ।[2]

कवि ने अपनी स्वदेशानुरागमयी कविताओं मे न केवल उद्बोधन के ही गीत गाये है अपितु अपने प्रिय भारत राष्ट्र को

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी हिमकिरीटनी पृ0 87
2- माखन लाल चतुर्वेदी " माता" पृ0 87

संजो? मूर्तियाँ भी अंकित है। जिनमे कवि स्मृति के रूप में ही सही, किन्तु अपने राष्ट्र को साकार प्रतिमा सदैव स्मरण पक्ष मे लाकर उसके प्रति श्रद्धवनत दिखाई देता है उसे अपना कहकर आत्मोयता प्रकट करता है और किसी और के अथवा किसी विदेशी को जब वह यह कहते सुनता कि यह भारत तो भारतीयों का नहीं अपितु मेरा घर है तो वह कुछ क्षुब्ध होकर एवं व्यथित भी हो उठता है। इतिहास को यह अद्भुत विडम्बना है कि विदेशियों के प्रभाव में आकर अनेक भारतीय इतिहास कारो ने भी यही सिद्ध करने का असफल प्रयास किया कि यहाँ कुछ वर्षों बाद अंग्रेज पुर्तगाली डच फ्रांसीसी एवं अंग्रेज आये। अत: यहाँ भारत केवल पहले आने वाले आर्यों का ही नही अपितु पीछे आने वालों का भी है। इसी ऐतिहासिक मिथ्या धारणा पर क्षुब्ध हुआ कवि ललकार उठा है -

क्या कहा कि यह घर मेरा है ?
जिसके रवि उगे जेलो में संध्या होवे वीरानो
उसके कानो में क्या कहते आते हो यह घर मेरा है।
x x

जो मुकुट हिमालय पहनाता, सागर जिसके पग धुलवाता
यह बंधा बेड़ियों में मंदिर मस्जिद गुरूद्वारा मेरा है
क्या कहा कि यह घर मेरा है ?[1]

1- माखन लाल चतुर्वेदी : घर मेरा है पृ0 168

माखन लाल चतुर्वेदी का हृदय सदैव से स्वदेशानुराग से ओत – प्रोत रहा है । इनके जीवन का अधिकांश भाग राष्ट्रीय समस्याओं के सुलझाने एवं एक कर्मठ सम्पादक के रूप में जन जीवन की विषमताओं के निरखने एवं परखने में ही व्यतीत हुआ है । एक कुशल एवं यशस्वी सम्पादक के रूप में आपने कभी सच्चाई को छिपाने का प्रयास नहीं किया और अनेकानेक प्रलोभनों के रहते हुए भी कर्तव्य परायणता से कभी पराड़मुख नहीं हुए । यही कारण है कि आपकी स्वदेशानुरागमयी कविताओं में भारत की आत्मा पुकारती हुयी दृष्टि-गोचर होती है भारत का एक प्रतिनिधि कवि पराधीनता के शिकंजे से मुक्त होने के लिए छटपटाता सा जान पड़ता है। भारतीय आत्मा की ही ओजस्वी वाणी चतुर्वेदी जी की कविताओं में हीअधिक मुखर हुई है । इसी कारण कवि की आत्मा जवानी कविता में भारत के तरूणों को प्रबुद्ध करती हुई ललकार उठती है –

प्राण अन्तर में लिए पागल जवानी
कौन कहता है कि तू बिधवा हुई खो आज पानी ?

× ×

द्वार बलि का खोल चल भडोल कर दे
हिमगिरि एक सिर का मोल कर दे
मसलकर अपने इरादों सी उठाकर

दो हथेली है कि पृथ्वी गोल कर दे
रक्त, है या है नसों में क्षुद्र पानी
जाँचकर तू सीस दे – देकर जवानी ।[1]

कवि का यह ओजस्वी यह तेजस्वी स्वर उसकी कितनी ही कविताओं में मुखरित हुआ है और वे सभी कविताए हृदय की सच्ची भावनाओं की साकार मूर्तियां जान पड़ती है ।

कवि अपनी कविताओं के द्वारा भारतीय जन मानस एवं स्वदेशानुराग की चिनगारी फूंकता रहा, जन-जन को स्वदेश पर बलि होने के लिए प्रेरणा देता रहा । जन मानस में देश भक्ति की तीव्र लहरे उठाता रहा और भारतीय तरूणों को आगे बढ़ने के लिए सतत उत्साह प्रदान करता रहा ।

(7) स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय कविता –

भारत को स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् राष्ट्रीय परिस्थितियाँ बदलगयी नई सम्भावनाएं दिखाई दी कुछ आशाएं बंधी प्रसन्नता और आह्लाद का एक वातावरण बना साथ ही बदली हुयी परिस्थितियाँ को सम्भावनाओं के विपरीत पाकर कहीं-कहीं निराशा भी हुई । चतुर्वेदी जी की स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय कविता इन्ही विभिन्न भाव-धाराओं को अभिव्यक्ति लेकर चली है। स्वतन्त्रता के उपरान्त अनवरत

1- माखन लाल चतुर्वेदी - जवानी पृ0 68

रूप से कर्तव्यरत रहने वाली निष्कम्प सक्रियता अधिकार प्राप्ति की ओर उन्मुख हुई सामूहिक साधना व्यष्टिगत सिद्धि में परिवर्तित होने लगी तथा सत्य और अहिंसा का जीवन व्यापी सिद्धान्त अर्थशून्य होकर शाब्दिक अलंकरण मात्र हो रह गया । राष्ट्र निर्माण के प्रयत्न प्रारम्भ हुए काश्मीर और गोवा की समस्या सामने आई कवि की जागरूक सृजनशीलता उन परिवर्तनों और समस्याओं के मध्य सक्रिय रही ।"[1]

चतुर्वेदी जी की अनेक कविताओं में उनके मन की उसी सक्रियता का चित्रण मिलता है उनकी ऐसी अनेक कविताएं समर्पण, युग चरण और वेणुलों गूंजे धरा में संकलित है । 15 अगस्त सन् 1949 और 15 अगस्त सन् 1951 के अवसर पर लिखी गई आज झोपड़ियां अनन्त सुहागिनी है और विजय कोस्मरण वेला कविताओं में स्वातन्त्र्योत्तर परिस्थितियों की विशेष सजग अभिव्यक्ति है पर दोनों दो दिशाओं में । आज झोपड़ियाँ अनन्त सुहागिनी है में स्वतन्त्रता का उत्साह पौरुष बल और आह्लाद का स्वर व्यक्त हुआ है। जबकि विजय का स्मरण वेला कविता में कवि स्वातन्त्र्योत्तर उपलब्धियों सम्भावनाओं की पूर्ति के प्रतिशंकित दृष्टि से प्रश्न करता हुआ दिखाई देता है । उत्साह और आह्लाद की अभिव्यक्ति निम्नलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है -

---

1- डॉ० राजेन्द्र मिश्र आधुनिक हिन्दी काव्य पृ० 262

आज वे मजबूरियां बड़ भागिनी है
आज वे झोपड़ियां अनन्त सुहागिनी हैं
हो गया आबाद फिर साकेत सूना,
जातियां घुलमिल गयी कह नेह दूना ।
साम्राज्य मेरा करो कड़िया पुरानी
रामराज्य हुआ रचो जाग्रत कहानी
है अमिट संकल्प से आबाद दिल्ली
आज काया कल्प से आजाद दिल्ली ।[1]

किन्तु विजय की स्मरण बेला सम्भावनाओं के पूर्ण न होने परभीनिराशा व्यक्त हुई है जिनके नाम पर सूलियां सुहागिनी थी जिनके गान पर अगणित वेदियां सुगन्धित थी कहीं हम उन्हे भूल तो नही गये प्रलय की वह मरण बेला कहीं विस्मरण तो नहीं कर दी ? काश्मीर हमसे आज फिर मधुर बलि प्राण पूजा मांग रहा है पूजा को महज पाषाण-पूजा न बना देना ।[2] स्वतन्त्रता के पश्चात भी कृषकों की दीन हीन दशा के प्रति भी कवि की सहानुभूति विषाद के स्वरो में अभिव्यक्त हुई है ।[3]

1- श्री माखनलाल चतुर्वेदी - युगचरण पृ0 41-42
2- माखन लाल चतुर्वेदी - युगचरण पृ0 1-1
3- वही, पृ0 3

स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय कविताओं में स्वतन्त्र भारत को दीन हीन दशा के प्रति असन्तोष और निराशा के वातावरण की अभिव्यक्ति भी हुई है। उधार के सपने कविता में इस प्रकार की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है -

बहुत बोल क्या बोलूँ ये सब सपने है उधार के राजा
बहुत भले लगते हैं गहने अपने हैं, उधार के राजा
तुझे जोश आता है देखा
तुझे क्रोध आता है देखा
पर हमने अपने दाता को
हठी पुतलियों को पहचाना
तू उनका युग-युग का दुश्मन तू उनको है आज जरूरत
एक साथ रख देख सलोने, उनको सूरत और जरूरत
तब फिर जोड़ लगाओ प्रहरी क्या खो खोकर क्या-क्या पाये
जीता कौन पछाड़ा किसने किसका अर्पण, किसको माया ।[1]

कहीं-कहीं चतुर्वेदी ने स्वातन्त्र्योत्तर कविताओं में बलि और क्रान्ति को भी बात कही है। यह क्रान्ति युग-तरूण को अपनी बलशाली और नाग सी फुफकारती मतवाली भुजा उठाकर राष्ट्र निर्माण के लिए आह्वान करती है, उठती जवानी को देश के सुपथ पर कुरबान होने के लिए ललकारती हुई सुहाने बलि पथ रचने की प्रेरणा देती है -

---

1- माखन लाल चतुर्वेदी - समर्पण पृ0 59

रक्त से मीठे सलोने आज श्रम सीकर न जाने ?

लो उठो, गाओ, घिरा छाओ, रचो बलि पथ सुहाने ।[1]

स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में कवि ने एशिया की सामूहिक जागृति की ओर भी संकेत किया है -

वेणु लो गूंजे धरा मेरे सलाने श्याम
एशिया कीगोपियों ने वेणु बाँधी है
गूंजते हो गान, घिरते हो अमिल अभिमान
तारकों सी नृत्य ने बारात साधी है ।[2]

इधर शान्ति के नाम से जितने शब्दों का दुरूपयोग किया गया है वास्तव में उतना सब कुछ नहीं किया गया । युद्ध के नाम पर भी शान्ति का प्रचार किया जाता है शान्ति के नाम पर भी । दूसरी ओर निर्बल की शान्ति पुकारभीकितनी उपहासस्पद होती है, जय तुम्हारी जय, कविता में शान्ति की पुकार पर इसी प्रकार का व्यंग्य मिलता है ।

स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय कविताओं में अचल ईमान औरऽंकार कर दो आदि कविताओं में कश्मीर रक्षा के हेतु जय कश्मीर हमारा बल हो[3]

1- माखन लाल चतुर्वेदी- युगचरण पृ0 35
2- श्रीमाखन लाल चतुर्वेदी- वेणुलो गूंजे धरा पृ0 99
3- माखन लाल चतुर्वेदी : मरण ज्वार, पृ0 22

और वह मरा कश्मीर की हिम शिखर पर जाकर सिपाही .... उठो बहिना आज राखी बांध दो श्रृंगार कर दो , उठो तलवार कि राखी बंध गई झंकार कर दो [1] आदि पंक्तियों में कवि ने राष्ट्र के तरूण वर्ग को भी जागृत किया है ।

चीन के आक्रमण से उत्पन्न परिस्थितियों के कारण उत्पन्न नवीन राष्ट्रीय चेतना को भी चतुर्वेदी जी ने वाणी दी है । चलो सजाओ सैन्य, आज चीन को मजा चखादें , बहने दो बलिपंथी धारा, सीमा टूट रही आदि कवितायें इसी नवीन राष्ट्रीय चेतना को लेकर चली है । इनमें से बूढी की क्या बात युगों की तरूणाई के दिन आये है और सीमा टूट रही सिरवाले आदि चतुर्वेदी जी की सारी राष्ट्रीय कविताओं में ओज पौरूष बल और क्रान्ति भावना शासक अभिव्यक्ति में बेजोड़ है। इन कविताओं में बूढे कवि की यह तरूण पुकार क्रान्ति की ज्वाला फूकने में सर्वथा समर्थ है -

(क) गंगा मांग रही मस्तक -जमना मांग रही सपने
आ जवानी स्वयं टटोलते सिर हथेलियाँ अपने- अपने
चलो सजाओ सैन्य, समय की भरपाई के दिन आये हैं[2]
आज प्राण देने युग की तरूणाई के दिन आये है ।

1- माखन लाल चतुर्वेदी : मरण ज्वार पृ0 24
2- वही, पृ0 51

को भी अपने मे समेट लेती है और इस रूप में प्रेम आराधना, विनय और समर्पण की भावनाएं भी राष्ट्रीयता का अंग बनकर आती है ऐसे सभी स्थलों पर उनकी व्यापक राष्ट्रीयता का आध्यात्मिक धरातल पर पल्लवन हुआ है। चतुर्वेदी जी के प्रेम, विनय और प्रकृति विषयक प्रगति भी अपनेउत्कर्ष में राष्ट्रीय धारा से सम्बद्ध हो गये हैं। अतएव उनकी राष्ट्रीय भावना-धारा व्यापक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक धरातल पर विस्तृत हो गयी है।[1] वेणुली गूंजे धरा कविता में चतुर्वेदी जी समग्र राष्ट्र को कृष्ण के आवरण में लपेटकर उनसे वेणुवादन का आग्रह करते हैं -

वेणु ली गूंजे धरा मेरे सलोने श्याम
एशिया की गोपियों ने वेणु बाधी है
गूंजते हो गान, घिरे हो अमित अभिमान
तारको सी नृत्य ने बारात साधी है।[2]

× ×

जगे उठे ने पाल प्रहरी, हँस उठे गन्धार
उदधि ज्वारी उमड़ आये, बसुन्धरा में प्यार
अभय वैरागिन प्रतीक्षा अमर बोले बोल,
एशिया की गोप-बाला उठे वेणी खोल [3]

1- डॉ० गणेश खरे - आधुनिक प्रगीत काव्य।
2- माखन लाल चतुर्वेदी - वेणु ली गूंजे धरा पृ० 99
3- वही, पृ० 101

को भी अपने मे समेट लेती है और इस रूप में प्रेम आराधना, विनय और समर्पण की भावनाएं भी राष्ट्रीयता का अंग बनकर आती है ऐसे सभी स्थलों पर उनकी व्यापक राष्ट्रीयता का आध्यात्मिक धरातल पर पल्लवन हुआ है। चतुर्वेदी जी के प्रेम, विनय और प्रकृति विषयक प्रगति भी अपनेउत्कर्ष में राष्ट्रीय धारा से सम्बद्ध हो गये हैं। अतएव उनकी राष्ट्रीय भावना-धारा व्यापक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक धरातल पर विस्तृत हो गयी है।[1] वेणुली गुंजे धरा कविता में चतुर्वेदी जी समग्र राष्ट्र को कृष्ण के आवरण में लपेटकर उनसे वेणुवादन का आग्रह करते हैं -

वेणु लो गुंजे धरा मेरे सलोने श्याम
एशिया की गोपियों ने वेणु बाधी है
गूँजते हो गान, घिरे हो अमित अभिमान
तारकों सी नृत्य ने बारात साधी है।[2]

× ×

जगे उठे ने पाल प्रहरी, हँस उठे गन्धार
उदधि ज्वारी उमड़ आये, बसुन्धरा में प्यार
अभय वैरागिन प्रतीक्षा अमर बोले बोल,
एशिया की गोप-बाला उठे वेणी खोल [3]

1- डॉ० गणेश खरे - आधुनिक प्रगीत काव्य।
2- माखन लाल चतुर्वेदी - वेणु लो गुंजे धरा पृ० 99
3- वही, पृ० 101

इस प्रकार का रहस्य भावना परक या रहस्यमूलक राष्ट्रीय काव्य चतुर्वेदी जी का राष्ट्रीय आध्यात्मिक काव्य कहा जा सकता है। चढ़े सूली उसी प्रभु का दास हो की भावना के अनुसार कवि की भक्ति भी राष्ट्रीयता में परिणति हो जाती है। उनका आराध्य उनका अन्तर्वासी कृष्ण है और भारत-राष्ट्र दोनो मे समाया हुआ है - और एक है। हिमकिरीटनी मे मैं नर्मदा बनी उनके प्राणों पर नित्य लहरती हूँ सखि[1] आदि पंक्तियों में यही आध्यात्मिक राष्ट्रीयता देखने को मिलती है। चतुर्वेदी जी के लिए कमनीय केरल के कन्याकुमारी से लेकर परम सुन्दर श्री नगर काश्मीर तक सारा विशाल भारत हिमकिरीटनी भारत माता राष्ट्र देवता के रूप में उनका आराध्य है ऐसा हृदय स्पन्दन है भारतीय आत्मा का।[2] उनकी कलिका भी प्रभु के पथ की फकीर बनकर बलि का गान सुनाती है और माँ पर हँसि हँसि बलि होने में अपनी जीवन रेखा का हरापन समझती है -

मैं बलि का गान सुनाती हूँ, प्रभु के पथकी बनकर फकीर

माँ पर हँसि-हँसि बलि होने में चिर हरी रहे मेरी लकीर[3]

ऐसे स्थलों पर चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीयता और भक्ति (रहस्य भावना) एक दूसरे में घुल मिल जाती है। उनके नाश के त्यौहार

1- माखन लाल चतुर्वेदी हिमकिरीटनी पृ0 3 ।

2- राष्ट्रभारती सम्पादकीय अप्रैल सन् 1958 ।

3- श्री माखन लाल चतुर्वेदी -हिमकिरीटनी पृ0 43

का यह चित्र भी राष्ट्रीयता और भक्ति का मिलाजुला रूप प्रस्तुत करता है -

एकझोंका वायु से ले
सिर हिलाकर तुमक जाना
और मीरा का मनोहर नृत्य
बनकर छुमक जाना
भूमि से विद्रोह है - ऊँचा ! ।
पत्तियों की ताल बनकर
फिर स्वरों पर घुमक जाना ।[1]

अन्यत्र कवि श्रीराम से पुनः अपने धनुष की टंकार सुनाने का आग्रह करता है ।[2] तो कहीं गोपालों के श्याम और प्यारे श्रीराम को पुनः अवतार लेने के लिए मनाता है ।[3]

समर्पण और बलिदान की जो भावना राष्ट्रीयता का प्रधान स्वर है वही रहस्य भावना के अन्तर्गत आने वाली समर्पण और बलिदान की भावना प्रायः राष्ट्रीयता का स्वर बन जाती है । चतुर्वेदी जी का भक्त हृदय अपने आराध्य राष्ट्र देवता की पूजा के लिए आत्मोत्सर्ग की प्रबल भावना लेकर चलता है । ऐसा लगता है कि कवि के जीवनमें एक

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी -हिमकिरीटनी पृ0 64 ।
2- माखन लाल चतुर्वेदी - माता पृ0 22
3- वही, पृ0 39

आकुल पिपासा है मर मिटने का जुनन है। जिसकी शान्ति के लिए जिसकी तृप्ति के लिए वह अपने उपास्य को ढूढता फिर रहा है हथेली पर सिर रखकर ।[1]

वह कभी भैरवी से मस्तक दल पर चढ़कर आने की विनय करता है तो कभी अपने आराध्य सखा से बलि स्वर माला गुथजाने की इच्छा व्यक्त करता है ।

कभी भैरवी के मस्तक दल पर
चढ़कर आने दे
कैसा सखे कलाला बलि स्वर
माला गुँथ जाने दे ।[2]

बीजुरी काजल आँज रही में विन्ध्याचल की व्यक्त प्रकृति के छायापट में आँकने वाले अव्यक्त असीम प्रेमसत्ता के प्रति कवि की आत्मविभोर रागदशा का एक चित्र द्रष्टव्य है -

"किस - किस छवि पर मैं आज धरा का रंग वार दूँ
किस शब्द-शब्द को दौड़ पड़ूँ नजरें उतार दूँ 9
कैसी है यह छटा
किस स्वर-स्वर बँटा अर्थ मिलकर आता है
कितने डोरे खुले
कि कितने बँधे गान है, शरमाता है [3]

1- श्री प्रमुदयाल अग्निहोत्री हिमकिरीटनी में समर्पण भावना, युगारम्भ सन् 1950
2- माखन लाल चतुर्वेदी- हिमतरंगिनी पृ0 47
3- बीजुरी काजल आँज रही - माखन लाल चतुर्वेदी

ठहरूँ? क्या बात कहूँ
दिन कैसे रात करूँ
मेघ झूम आये हैं
रिमझिम रिमझिम बरसन
यह मरोर यह थिरकान
कितने अलसाये हैं ?
उतर रहे हैं रंग शैल पर
किसे प्यारी हूँ
किस-किस छवि परआज धरा के रंग वार हूँ। [1]

विश्वात्मा प्रियतम के सिन्धुत्व की असीमता और अपने बिन्दुत्व की सीमा का बोध व्यक्त करने वाली ये पंक्तियाँ भी प्रेम दर्शन की प्रौढ़ता से मंडित है -

भला तरंगों में समुद्र को कौन वणिक है तौल सका है
सागर को खरीद लेगा ऐसी भी बोली बोल सका है
पलकें भरी कि बूँदें बोली अमित सिन्धु है अगम सिन्धु है
उमड़-उमड़ आता है मेरी द्रवता का यह सगा सिन्धु है। [2]

1- माखन लाल चतुर्वेदी- बीजुरी काजल आँज रही पृ0 37
2- वही पृ0 38

सारी छन्द छवियों में वही मस्ताना प्रियतम छाया हुआ है सर्वत्र उसी का श्रृंगार है अपने सलोने श्याम के प्रति एशिया की गोपियों की ओर चतुर्वेदी जी की इस पुकार एवं मनुहार में राष्ट्रीय रहस्य भावना का विराट स्वरूप दर्शनीय है -

बेणु की गूँजधारा मेरे सलोने श्याम
एशिया की गोपियों ने वेणि बाँधी है
गूँजते हो गान घिरते हो, अमित अभिमान
तारकों की नृत्य ने बारात साधी है
युगधरासे दूब धरा तक खीच मधुर लकीर
उठ पड़े है चरण कितने लाडले हुमसे
आज अणु में प्रणय से की प्रलय की टीका
विश्व शिशु करता रहा प्रणवाद जब तुमसे ।

× ×

यह उठ आराधिका सी राधिका रसराज
विकल यमुना के स्वरों फिर बीन बोली आज
क्षुधित कण पर कुपित फणि की नृत्यकार गणतन्त्र
सजर्ना के तन्त्र ले, मधु अर्चना के मन्त्र ।

× ×

जग उठे नेपाल प्रहरी हँस उठे गन्धार
उदार्ध ज्वारी उमड़ आये वसुन्धरा में प्यार
अभय वैरागिन प्रतीक्षा अमर बोले बोल
एशिया की गोप बाला उठे वेणी खोल ।"[1]

प्रणय से प्रलय की टीका करने वाले अणु के उस व्यापक संचरण में वेणी खोले एशिया की गोपबाला कि राष्ट्रीय क्रान्ति भारी रहस्य भावना अद्भुद ओजस्विता एवं रसात्मकता के साथ साकार हो उठी है ।

वैष्णवी की मधुरा भक्ति की तल्लीनता लिए हुए साजन के सम - रथ पर जाने को आतुर प्रणायिनीके हृदय की साध को देखते ही बनता है -

उनको सौ सौ मधु सासों पर
उच्छ्वास कहीं बन पाती मैं ?
सौ -सौ सपनों का सावन
भादों मास, कहीं बनपाती मैं ?
x x
जब रूप निगोड़ा हिरदै को
सूली पर टंगवाता होता

1- माखन लाल चतुर्वेदी - वेणुली गुंजे धरा पृ0 गीत सं0 70

तब गुन का गल-फंदा कसकर
साजन ने तन रथ जाती मैं ।[1]

प्रणय मन्दिर को दीक्षा पाये हुए प्रणयी का आत्मनिवेदन भी कितना मार्मिक है -

मेरी साधें पथ पर बिछी
हुई करती हों प्राण प्रतीक्षा
मेरी अन्तर निराशा बनकर
रहे प्रणयमन्दिर की दीक्षा
बस इतना दो तुम मेरे हो
कहने का अधिकार न खोऊँ
और पुतलियों में गा जाऊँ
जब अपने को तुममें खोऊँ ।[2]

आँसुओं से चरण कमल धो लेने की अभिलाषा और जोर-जोर से सिसकने का चित्र निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

मधुर यह मीत, मधुर यह भार
मधुरि में तू कितनी लाचार
विवश मैं तो वीणा कर तार [3]

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी - माता पृ0 12-13
2- माखन लाल चतुर्वेदी - हिमकिरीटनी गीत सं0 47
3- माखन लाल चतुर्वेदी - समर्पण पृ0 69

निश्चय ही चतुर्वेदी जी के काव्य में चित्रित यह बलि की बेदाग़ तरुण कलिका अपनी मृदु मरद से युगों को उत्सुक होने की प्रेरणा देती रहेगी। स्मृति का बसंत शीर्षक गीत में राष्ट्रदेव की प्रणयिनी की अल्हड़ भाव भंगिमाबरबस चित्त को आकृष्ट कर लेती है -

स्मृति के मधुर बसंत पधारो।

× ×

तोड़ूगी न लिखने दूँगी

दो छिन हिलने मिलने दूँगी

× ×

कलपा मत घनश्याम। कलापी

कर दो श्री दिशा वागलिनी

नहीं चली हम ही दो कलियाँ

मुसक सिसक होवें रंगरलियाँ

राष्ट्र देव रंगरंगी संभालो

कृष्णार्पण के प्रथम पधारो।[1]

प्रियतम की रूप माधुरी और वचन चातुरी में आत्म विस्मृत हृदय की छोड़भरी भावदशा का यह स्निग्ध चित्र भी दर्शनीय है -

---

1- माखन लाल चतुर्वेदी -समर्पण पृ0 11-12

तुम बोले तुम छोड़े रोझे, तुम दोखे अनदोखे आये

आँखे झपक -झपक अनुरागी लगा कि जैसे तुम कब आये

स्वर्ग की धारा से लिपटी जब गगन गामिनी शशि की धारा

उलझ गया मैं उन बोलों में मैंने तुमको नही सवारा

पाकर खो देने ।ा मन पर कितना लिखा विस्मरणगहरा

तुम ठहरे पर समयन ठहरा [1]

राष्ट्रदेव को प्रणायिनी की आतुरता भरी समर्पण भावना का सहज निश्छल एवं उज्ज्वल स्वरूप कुजकुटीरे यमुना तीरे शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों मे बड़ा होमनोहर और स्वाभाविक बन पड़ा है -

हो तल बेध समस्त खेत्र तज

मैं दौड़ी आऊँगी

नील सिन्धु जल धौत चरण

पर चढ़कर खोजाऊँगी ।-[2]

कवि को प्रणयानुभूति राग बोध को अनेक सरणियों में संचरण करती हुई रह-रहकर अपने राष्ट्र देवता के हो चरणों और प्राणों में विश्राम लेती है। यही चतुर्वेदी जी के काव्य का राष्ट्रीय रहस्यवाद है जिसकी मधुर स्वर लहरी हिमकिरीटनी के मैं अपने से डरती हूँ साजि-

---

1- माखन लाल चतुर्वेदी -समर्पण पृ0 17

2- माखन लाल चतुर्वेदी- हिमकिरीटनी पृ0 24

शोर्षक गीत में अमर हो उठो है। आराध्य के प्राणो में लहरने नित्य सुहागिनी प्रणयिनी को यह अनन्य समर्पणमयी रहस्यानुभति अपनी नित्य नूतन सहज स्निग्ध रमणीयता और रसात्मकता के साथ युगों तक गूंजती रहेगी -

जिस दिन रत्नाकर की लहरे
उनके चरण भिगो ने आये
जिस दिन शैल शिखरियाँ उनको
रजत मुकुट पहनाने आये
लोग कहे मैं चढ़ न सकूंगी
बोझी ली प्रण करती हूँ सखि
मै नर्मदा बनी उनके
प्राणों पर नित्य लहरती हूँ सखि ।-[1]

रहस्य भावना को राष्ट्रीय क्रान्ति के स्वरो में उड़लने वाले इस कवि को रचनाओं में जाने कितने सरस और रमणीय बिम्ब एवं प्रतीक अनुभूति की गहराई और कल्पना को रंगीनी के साथ प्रस्तुत हुए हैं । उनमे चित्रकार की तूलिका के साथ गायक की स्वर-साधना का वैभव एक साथ विद्यमान है । कवि को राष्ट्रीय वीणा कहकर अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी ने सच्चे अर्थों में उसके संगीत एवं माधुर्य को प्रकृति का पूर्वाभास

1- हिमकिरीटनी -माखन लाल चतुर्वेदी पृ0 24

दिया था । राष्ट्रीय रहस्य भावना से ओत-प्रोत उस कवि में अभिव्यक्ति की मनोहर भंगिमा जिस मादन एवं सम्मोहन को जगाती है वह सम्पूर्ण राष्ट्रीय काव्य धारा में दुर्लभ है ।

चतुर्वेदी जी के राष्ट्रीय काव्य में पूजा और उपासना का भी महत्वपूर्ण स्थान है। राष्ट्र मंदिर की पूजा- राष्ट्र देवता की आराधना का प्रबल आग्रह और आत्मोत्सर्ग का अपरिमेयबल उनकी कविता में कूट-कूट कर भरा है। भक्ति दर्शन हिन्दी के लिए नया नही है पर यह बिल्कुल नये प्रकार का भक्ति दर्शन है । यह एक जीवित जागृत राष्ट्र के प्रति भक्ति का अर्चन जिसका और कवि जीवन के सभी उपकरणी कोलेकर कविता की राह से आता है ।[1]

यही नही रत्नाकर की लहरें और शैल शिखारियाँ भी कवि के लिए इसी पूजा में निमग्न दिखाई देती है ।[2]

चतुर्वेदी जी की यह पूजा भावना उनकी रहस्यपरक राष्ट्रीयता कासच्चा और वास्तविक प्रतिरूप है ।

3- प्रेम मूलक राष्ट्रीय काव्य -

चतुर्वेदी जी ने प्रणय को राष्ट्र देवता के चरणो में समर्पित किया है । इसलिए उन्हे प्रणय एवं प्रलय का कवि कहा जाता है

1- रामेश्वर शुक्ल अंचल -रेखा-लेखा पृ0 141

2- माखन लाल चतुर्वेदी -हिमकिरीटनी पृ0 3

उन्होंने राष्ट्र की वेदी पर प्रायः राष्ट्र की तरूणाई की बात कही है देश के सूच्यग्र पर कुरबान हो उठती जवानी देश की मुस्कान पर बलिदान हो राजा और रानी आदि पंक्तियों में इसी बलिदान की ओर इंगित किया गया है ।[1]

तरूणाई को वह बोझा कहता है रूप उसके लिए बलि का मधुर खजाना है ।[2] इसलिए वह रूप और आकर्षण के छलों से बचता हुआ मधुर नीलमय देश नभ के तारों में अपना मार्ग ढूंढना चाहता है। मनुहार कविता में वह यौवन मद भर सखि को बलिदान की ओर प्रेरित करता है । यहाँ कवि ने श्रृंगार के सारे उपादानों को राष्ट्र के लिए समर्पित किया है । उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ विशेषकर बलिशाला ही हो मधुशाला उनके प्रेममूलक राष्ट्रीय काव्य का प्रतिनिधि स्वर कही जा सकती है -

बलिशाला ही हो मधुशाला
प्रियतम -पथ ही देश निकाला
प्राणों का आसव ही ढाला
गिरे न इसमें दाग री [2]

इस कविता के सुर ही सुर की मधुर चुनौती चढ़ना ही हो मान मनौती आदि शब्दों में भी बलिदान का स्वर ही प्रधान है। युग तरूण से

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी , हिमकिरीटनी पृ0 76

2- वही पृ0 6

कविता में मरण में जिन्दगी के गान गढ़ ले[1] में भी तरुणाई को यही पुकार की गयी है। जवानी के नाम चतुर्वेदी जी के निम्नलिखित उद्बोधन तो युगतरुण के लिए कवि के अमर संदेश है -

क- रुधिर का मोल पानी हो न जाये
न बलि-पथ में बहक जाये जवानी[2]

ख- प्रणय का रथ प्रलय के पथ चला दूँ
अहर्निशि नेह का दीपक जला दूँ।[3]

ग- पता है चुम्बनों का मूल्य सिर है ?
चढ़े सूली उसे प्रभु का दरस हो।[4]

घ- चढ़े आओ प्रणय के गान मेरे
बढ़े आओ प्रणय पहचान मेरे[5]

चतुर्वेदी जी ने प्रायः प्रेम और बलिदान का साथ-साथ व्याख्यान किया है। प्रेम और बलिदान के इसी समन्वय की ओर डॉ० नगेन्द्र ने इस प्रकार संकेत किया है -

---

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी - माता पृ० 47
2- वही पृ० 48
3- वही पृ० 47
4- वही पृ० 58
5- वही पृ० 48

माखन लाल जी के व्यक्तित्व में मधुर कवि और ओजस्वी सैनिक एक आलिंगन पाश में आबद्ध है उनमें भावुक नारी कर्मशील पुरूष का संयोग है। यहाँ ... एक ही व्यक्तित्व के दोनों तत्व मिल गये है। और प्रायः एक ही क्षण में व्यक्त हो उठते हैं।"[1]

उठो बहिना आज राखी बांध दो श्रृंगार कर दो उठो तलवारी - कि राखी बांध गयी झंकार कर दो [2] और किसी तरूण के प्रथम हृदय समर्पण के साहस सी ये साँसे [3] तथा बन्धन बलि का बन्दी गृह जिन पर बीती रहे विषम सौगाते आदि पंक्तियों में माधुर्य एवं ओज का भावुक नारी और कर्मशील पुरूष का - कवि और सैनिक का यही सम्मिलन है।

कैदी और कोकिला कविता में भी मृदुल वैभव की रखवाली कोकिल प्रलय का ही सन्देश देती है। और कवि उसके मध्यम से प्रेम और बलिदान का सन्देश देता है।

चतुर्वेदी जी की कविताओं में प्रेम और बलिदान प्रणय और प्रलय का संघर्ष भी दिखाई देता है। ऐसे स्थलों पर कवि अन्त में प्रलय को राष्ट्रीय भावनाओं की सीमाओं पर ले जाता है। विलास और

1- डॉ० नगेन्द्र - विचार और विश्लेषण पृ० 136
2- श्री माखन लाल चतुर्वेदी - समर्पण पृ० 97
3- वही पृ० 25

वैभव उसे आकृष्ट नहीं करते । पर राष्ट्र के आपत्ति काल में उसे विलास की जंजीरों में नहीं बांधा जा सकता । चतुर्वेदी की लेखनी पराधीन भारत में जब तोपें आग उगल रही थी घर-घर प्रलय उतर आया था उत्साही युवकों की टोलियाँ स्वातन्त्र्य आन्दोलन में मरण के पथ पर जा रही थी, लेखनी रस की धारायें उगलने में लगी थी नजरें प्यार बरसाने में मस्त हो रही थी जवानी छन-छन ढल रही थी और तबीयत प्रिय पर मचल रही थी । इस प्रकार की विषम परिस्थितियों में चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीयता प्रणय और प्रलय के द्वन्द्व को इस प्रकार व्यक्त करती है -

आग उगलती उधर तोप, लेखनी इधर रस धार उगलती,
प्रलय उधर घर-घर पर उतरा, इधर नजर है प्यार उगलती
उधर बुढ़ापा तक बच्चा है, इधर जवानी छन्-छन ढलती
चलती उधर मरण पथटोली उन परउधर तबीयत चलती [1]

भाव जगत का क्षेत्र श्रृंगार है तथा कार्य जगत का क्षेत्र राजनीति । मानव जब स्वस्थ मनोवृत्ति से परिपूर्ण होकर प्रथम क्षेत्र का आनन्द लेता है तो दूसरे क्षेत्र की ओर अग्रसर होता है । श्री चतुर्वेदी जी की इस राष्ट्रीय भावना में यही प्रवृत्ति दिखाई देती है । प्रणय और प्रलय की भावना श्रृंगार और वीररस का सम्मिश्रण उनके स्वस्थ मस्तिष्क की परिपक्वता का ही द्योतक है। यही कारण है कि गुप्त जी की तरह

1- माखन लाल चतुर्वेदी : समर्पण पृ0 8

मरण केवल सुन्दर ही नहीं बनता - मरण सुन्दर बन आयारी , सखि मेरे मन की माया - संकेत अपितु यौवन का श्रृंगार भी करता है और यहाँ राष्ट्रीयता का स्वर श्रृंगार के उपादानों में अलंकृत होकर ही व्यक्त हुआ करता है। कवि मरण और बलिदान को जवानी का श्रृंगार कहता है। मरण के मोल चढ़ती जवानी को वह इस प्रकार पुकारता है ।

प्राण रेखा खींचदे उठ बोल रानी
री मरण केमोलकी चढ़ती जवानी ।[1]

यही नहीं चतुर्वेदी जी की सिपाहिनी भी युद्ध का श्रृंगार करना चाहती है - जिरह बख्तर पहनकर, कलाइयों में पहनी चूड़ियों का उतार कर, तीर कमान लेने को प्रस्तुत हो जाती है - यही उसका श्रृंगार है। अपने प्रियतम से अपना ऐसा ही श्रृंगार करने के लिए चतुर्वेदी की सिपाहिनी निम्नलिखित शब्दों में आग्रह करती है -

चूड़ियां बहुत कलाइयों पर
प्यारे भुजदण्ड सजा दो
तीर कमानोंके श्रृंगार दो
जरा जिरह बख्तर पहना दो ।[2]

सिपाहिनी की दुर्गा और काली बनने की अभिलाषा और अपने प्रिय को प्रलयंकर शंकर के रूप में देखने की इच्छा राष्ट्रीयता -,प्रलय और

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी -हिमकिरीटनी पृ0 114
2- वही पृ0 140

बलिदान के जैसे फुंकरित शब्दों में व्यक्त हुई है यह निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

मेरे प्रणय और प्राणों के
और सिन्दूर रक्तिमा लाली
तुम कैसे प्रलयकर शंकर जो
न रहूँगी मैं दुर्गा काली [1]

चतुर्वेदी जी ने सुहागिनी नारी को केसरिया बाना पहिनाकर भी प्रस्तुत किया है -

देवि । केसरिया सुहागन का बने फिर साज
शत्रु का पानी चढ़े करवाल दल पर आज [2]

कहीं-कहीं चतुर्वेदी ने श्रृंगार के प्रसंगों को इस प्रकार राष्ट्रीय आवरण में प्रस्तुत किया है कि वे कवि की प्रणय और बलिदान की उत्कृष्ट भावना का प्रतिरूप बनकर उपस्थित हुए है अभिसारिका का यह रूप द्रष्टव्य है -

जंजीरे हैं या हथकड़ियाँ है
नेह सुहागन की लड़ियाँ है [3]

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी - हिमकिरीटनी पृ0 141
2- श्री माखन लाल चतुर्वेदी - युगचरण पृ0 16
3- श्री माखन लाल चतुर्वेदी - हिमतरंगिनी पृ0 85

इसी प्रसंग में कवि पानी की घड़िया जैसे शब्दों के द्वारा कवि ने राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर भी संकेत किया है ।

मुख्य रूप से राष्ट्रीय कवि होने तथा स्वातान्त्र्य संग्राम के सक्रिय सैनिक होने के कारण चतुर्वेदी जी ने श्रृंगार (प्रेम वैभव विलास) के प्रति उपेक्षा भाव भी व्यक्त किया है । ऐसे स्थल प्रेम चित्रण को हेय बताकर उन पर व्यंग्य करते हुए राष्ट्रीयता का संदेश देते हैं युग की पुकार के आगे श्रृंगार का साज कवि को कैसे सुहा सकता है -

" तुम क्या जानो, मेरे युग पर क्या-क्या बीत रही है
मुझको स्वांग बनाने का अवकाश नहीं है साथी
क्या साज़ श्रृंगार कि उसमें अब कुछ स्वाद नहीं है "।

राष्ट्रदेव की प्रणायिनी की आतुरता भरी समर्पण भावना का सहज, निश्छल एवं उज्जवल स्वरूप कुंज कुटीरे यमुनातीरे शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में बड़ा ही मनोहर और स्वाभाविक बन पड़ा है -

ही तल बेध समस्त खेद तज
मैं दौड़ी आऊँगी
नील सिंधु जल धौत चरण
चढ़कर खोजाऊँगी [2]

1- माखन लाल चतुर्वेदी- क्या-क्या बीत रही है ,पृ0 290

2- माखन लाल चतुर्वेदी हिमकिरीटनी पृ0 24

कवि को प्रणयानुभूति रागबोध को अनेक सरणियों से संचरण करती हुई रह रहकर अपने राष्ट्रदेवता के ही चरणों और प्राणों में विश्राम लेती है यही चतुर्वेदी जी के काव्य का रहस्यवाद है जिसको मधुर स्वर लहरी हिमकिरीटनी के मै अपने से डरती हूँ सखि "शोर्षक गीत मे अमर हो उठी है - आराध्य के प्राणो में लहरने वाली नित्य सुहागिनी प्रणयिनी की यह समर्पणमयी रहस्यानुभूति अपनी नित्य नूतन सहज स्निग्ध रमणीयता और रसात्मकता के साथ युगों तक गूँजती रहेगी ।

चतुर्वेदी के राष्ट्रीय आध्यात्मिक काव्य में पूजा और उपासना का भी महत्वपूर्ण स्थान है । राष्ट्र मन्दिर की पूजा राष्ट्र-देवता की आराधना का प्रबल आग्रह और आत्मोत्सर्ग का अपरिमेय बल उनकी कविता मे कूट कूट कर भरा है। भक्ति-दर्शन हिन्दी के लिए नया नही है पर यह बिल्कुल नये प्रकार का भक्ति दर्शन जीवन के सभी उपकरणों को लेकर कविता की राह से आता है ।[1]

कवि को पूर्ण विश्वास है कि वह अन्तर्यामी सर्वत्र व्याप्त है। वह अणु - अणु में एवं कण कण में विद्यमान है। उससे रहित कोई पदार्थ नहीं और कोई ऐसा स्थान नही जहाँ उसका जलवा न दिखाई दे कवि ने अपने प्रिय परमात्मा को सभी ओर देखा है और ऐसा अनुभव किया कि उनके अस्तित्व से रहित कोई स्थान नही है

1- रामेश्वर शुक्ल अंचल - रेखा लेखा पृ0 14।

और उनको सूरत ही विश्व के रूप में दिखाई देती है ।

इस प्रकार कवि ने सूर, तुलसी आदि संत कवियों की भाँति परमेश्वर के सामने अपने असीम पापों को स्वीकार किया है और उनसे मुक्त होने की कामना व्यक्त की है । सूर ने जैसे अपने - हौं पतितन कौटीको कहकर महापापी घोषित किया और अपने उद्धार के लिए प्रार्थना की वैसे ही कवि चतुर्वेदी जी भी कह रहे हैं -

हे देव ! तेरे दाँव ही निर्णय करेंगे आज
उस ओर तेरे पाँव है उसओर मेरे पाप ।

इस समर्पण और बलिदान के उद्घोषक कवि पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने प्रणय को प्रलय की वेदी पर समर्पित करके श्रृंगार को राष्ट्र प्रेम की सीमा में समेट दिया है ।

कवि की भगवद् भक्ति सम्बन्धी अभिव्यक्तियों में आधुनिक युग की नूतन पद्धति का समावेश दृष्टिगोचर होता है क्योंकि आधुनिक युग के कवियों ने जिस तरह रहस्यात्मक ढंग से उस अव्यक्त सत्ता के अस्तित्व का निरूपण किया है और जो साहित्यिक भाषा में रहस्यवाद के नाम से जाना जाता है उसी तरह चतुर्वेदी जी ने भी अपनी कितनी ही कविताओं में उस सर्वव्यापी सत्ता के अस्तित्व का रहस्यात्मक ढंग से निरूपण करके रहस्यवाद की नूतन परिपाटी का प्रयोग किया है ।

प्रकृति प्रेम मूलक राष्ट्रीय काव्य -

चतुर्वेदी जी के काव्य की मूलवर्तिनी धारा राष्ट्रीय ही है । अतः प्रेम अध्यात्म (भक्ति) मे ही समाहित हो गया है । उनके काव्य में हमे विशुद्ध प्रकृति चेतना नही मिलती ।[1]

प्रकृति की सौन्दर्य राशि से चतुर्वेदी जी परिचित है परन्तु जिन कविताओं मे प्रकृति को विषय बनाया गया है उनका अंत प्रायः राष्ट्रीय भावना में होता है इस प्रकार उनकी अधिकांश प्रकृति विषयक कविताए राष्ट्रीय काव्य की सीमा में आ जाती है प्रेम हो या अध्यात्म प्रकृति दर्शन हो अथवा कल्पना का लीला विलास माखनलाल जी की प्रत्येक मनोदशा में बलिदान की मधुरता किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहती है ।[2]

प्रकृति में भी यही बलिदान भावना स्पष्ट उभरकर सामने आई है। कलिका से कविता में चतुर्वेदी जी ने प्रारम्भ मे तो प्रकृति की ओर हरिउन्मुख रहते है परन्तु कविता का अन्त इस प्रकार राष्ट्रीय बलि भावना की अभिव्यक्ति मे होता है -

---

1- श्रीमाखन लाल चतुर्वेदी - समर्पण पृ0 98
2- डॉ0 रामरतन भटनागर- अध्ययन और आलोचना पृ0 248
3- रामधारी सिंह दिनकर, मिट्टी की ओर पृ0 149

मैं बलिका गान सुनाती हूँ
प्रभु के पथ को बनकर फकीर
माँ पर हँस - हँस बलि होने में
खिंच हरी रहें मेरी लकीर [1]

प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में भी कवि की मनः स्थिति राष्ट्रीय भावना तथा उससे सम्बन्धित विषयों की ओर ही लगी रहती है। उनकी अधिकांश प्रकृति सम्बन्धी कविताएं सन् 1930 के आस-पास जबलपुर सेन्ट्रल जेल में लिखी गयी है। अतएव एक तो स्मृति सम्बन्धी अनुभूति के कारण दूसरे परिस्थितियों की विषमता के कारण कवि की दृष्टि प्रकृति पर राष्ट्रीय परिस्थितियों का आरोप कर बैठती है। कैदी और कोकिला इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इस कविता में कवि ब्रिटिश शासन के अत्याचार और अपनी स्थित पर ही ध्यान केन्द्रित रखता है। इसलिए इसकी कोकिल क्रान्ति की वाहक ही बनकर आती है - उसकी हुंकार उसे सुनाई देती है।[2]

चतुर्वेदी जी प्राकृतिक उपादानों को प्रायः राष्ट्रीय प्रतीकों के रूप में ग्रहण किया है और उनके माध्यम से अपनी राष्ट्रीय भावनाओं समर्पण क्रान्ति और बलिदान को वाणी दी है। कलिका से कालिका

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी - हिमकिरीटनी पृ0 43
2- वही, पृ0 19

की ओर जवानी विद्रोही पुष्प की अभिलाषा आदि कविताओं में प्रतीकों का ही आश्रय लिया है । बलिदान और समर्पण की नितान्त प्रखर अभिव्यक्ति पुष्प की अभिलाषा में देखने को मिलती है ।

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ
मुझे तोड़ लेना बनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ पर जावें वीर अनेक [1]

कुछ कविताओं में प्रकृति के प्रति चतुर्वेदी जी का निषेधात्मक दृष्टिकोण भी मिलता है, जहाँ वे प्रकृति श्री की उपेक्षा करके राष्ट्र को बलिपथ की ओर प्रेरित करते हैं ।

हिमकिरीटनी संग्रह में कवि की हिमकिरीटनी कवि में युग की तरूणाई को कुरबानी के लिए ललकारा है - कलिका माध्यम से -

अरी व्यर्थ नहीं कि प्रियतम माँगता है दान
ले अमर तारूण्य अपने हाथ से कुरबान [2]

1- माखन लाल चतुर्वेदी - युगचरण पृ0 3।
2- श्री माखन लाल चतुर्वेदी - हिमकिरीटनी पृ0 149

री सर्जन । बनराजि श्रृंगार सम्बोधित करते हुए कवि का कलिका के प्रति निम्नलिखित उद्बोधन राष्ट्रीय काव्य का भास्वर स्वर है -

जब सिपाही उठे सेनानी उठे ललकार
मातृ-बंधन मुक्ति का जिस दिन मने त्योहार
जब कि जन-पथ लाल हो हो किसी की तलवार
आयेगा सिर काटने उस दिवस मालाकार

× ×

यह मधुर बलि हो विजय का मोल
मानिनी तब तक हृदय मत खोल [2]

राष्ट्रीय उद्बोधनों में इस प्रकार प्रकृति का उपयोग चतुर्वेदी के राष्ट्रीय काव्य की विशेषता है । सींच बनमाली । मानस खेत जो जिससे उगे जीवित जोश [3]। फल दिये या सिर दिये 9 तरु की कहानी गूंथकर युग में बताती चल जवानी [4] आदि पंक्तियाँ यही उद्बोधन देखने को मिलता है ।

1- श्री माखन लाल चतुर्वेदी : हिमकिरीटिनी पृ0 149
2- वही, पृ0 151-152
3- श्री माखन लाल चतुर्वेदी , माता पृ0 76
4- श्री माखन लाल चतुर्वेदी , हिमकिरीटिनी पृ0 113

कुछ कविताओं में अलंकरण रूप में किये गये प्रकृति वर्णनों द्वारा भी कवि ने राष्ट्रीय भावों को अभिव्यक्ति की है। तारे टूटने का यह प्राकृतिक रूपक विद्रोही से कितना साम्य रखता है -

वहाँ टूटा जो कैसा तारा।

× ×

अनिल चला कुरबानी गाने जग दुगतारक मरण सजाने
खोच खोच कर बदल लाने अलि पर इन्द्र धनुष पहिचाने
टूटे मेघों के जीवन से कोटितरल तरतारे
गरज भूमि के विद्रोही भू के जी में उकसाने [1]

चतुर्वेदी जी ने भारत के गौरव भूत हिमालय तथा रत्नाकर आदि का स्थान स्थान पर वर्णन किया गया है। यह सारा वर्णन राष्ट्र गौरव गान के माध्यम से राष्ट्रीय भावनाओं को अभिव्यक्त तो करता ही है राष्ट्र के तरूण वर्ग को बलि को गीत सुनाना भी उसका उद्देश्य रहा है जिस दिन रत्नाकर कोलहरे उनके चरण भिगाने आये, मैं नर्मदा बनी उनके प्राणों पर नित्य लहरती हूँ सखि [2] आदि पंक्तियों में राष्ट्र पर अपनी बलि देने का ही सन्देश है। इसी प्रकार तेरी कृति पर सजे हिमालय रजत मुकुट सा .... शस्त्र सज्जिता तरल तापति बने सहायक तेरी असिसी लटक चले कृष्ण कावेरी [3] आदि पंक्तियों में

1- हिमतरंगिनी पृ0 72-73
2- श्री माखन लाल चतुर्वेदी , हिमकिरीटिनी पृ0 3
3- श्री माखन लाल चतुर्वेदी, समर्पण पृ0 47

राष्ट्र रक्षा के लिए तरूणों को प्रकृति परिवेश में प्रस्तुत किया गया है प्रकृति का इस रूप में प्रयोग चतुर्वेदी जी के काव्य की विशेषता है।

निष्कर्ष –

समग्रतः चतुर्वेदी जी के काव्य में राष्ट्रीयता सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है । और कवि अपने प्रेम रहस्य भावना तथा प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में भी राष्ट्रीयता का परित्याग नहीं कर सका है । चतुर्वेदी जी के काव्य में राष्ट्रीयता संश्लिष्ट चेतना कभी-क्रान्ति कभी बलिदान कभी समर्पण और कभी सामयिक राष्ट्रवाद के स्वर में अभिव्यक्त हुई है। चतुर्वेदी जी के राष्ट्रीय काव्य में हमें विभिन्न रूप उपलब्ध होते है । श्रृंगार प्रकृति प्रणय और बलिदान आदि की भावनाओं के साथ-साथ अन्य उपादानो का भी उन्होंने राष्ट्रीय भावना के चित्रण में प्रयोग किया है और राष्ट्रीय भावना के चित्रण में उसका प्रयोग सुन्दर बन पड़ा है ।

राजनीतिक जीवन में सक्रिय भाग लेने के कारण तत्कालीन राजनैतिक नेताओं, विशेषकर लोक मान्य तिलक और महात्मा गांधी की प्रशस्तियाँ या उनके प्रति श्रद्धांजलियाँ भी उनके काव्य में मिल जाती है । उनका देश प्रेम व्यापक भावभूमि पर आधारित है और बलिदान की

अपेक्षा रखता है । इसलिए कवि चुम्बनों का मूल्य सिर है कहता है । भारत के अतीत गौरव का गान उनके काव्य में इतना नही मिलता जितना अंग्रेजी शासन के प्रति आक्रोश और पराधीनता से उद्भूत असंतोष । राष्ट्र की वंदना उन्होंने प्राय: की है। इसी प्रकार आराध्य के रूप में जैसे देव वंदना । राष्ट्र को वे इसलिए राष्ट्र देवता कहते हैं । उधर स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद उनकी कविताओं में नवीन राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति मिलती है – कहीं-कही स्वतन्त्रता की सम्भावनाओं की आपूर्ति पर उनमे व्यंग्य उभरा है । चीनी आक्रमण के कारण उत्पन्न परिस्थितियों के सन्दर्भ में लिखी गयी उनकी राष्ट्रीय कविताएं विशेष ओजपूर्ण है उनमें राष्ट्र के प्रति बलिदान काआह्वान है। इस प्रकार चतुर्वेदी जी का राष्ट्रीय काव्य मूलत: क्रान्ति और बलिदान काउद्घोषक है और उसमे कवि का अपना राष्ट्रीय व्यक्तित्व ही अनुस्यूत हुआ है ।

अष्टम् - अध्याय

माखन लाल चतुर्वेदी एवं दिनकर की राष्ट्रीय चेतना का तुलनात्मक अध्ययन

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व - निर्माण मे जिस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियों तथा पारिवारिक , सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान होता है उसी प्रकार अतीत एंव वर्तमान के महापुरुषों के व्यक्तित्व एवं पूर्ववर्ती तथा समकालीन साहित्यकारों के विचारों का भी विशिष्ट स्थान होता है । माखन लाल चतुर्वेदी का व्यक्तित्व भी इसका अपवाद नहीं हैं ।

माखन लाल जी के प्रारम्भिक जीवन को प्रभावित करने वाले व्यक्तियों में पं० माधवराज जी सप्रे का भी महत्वपूर्ण स्थान है । सप्रे जी से चतुर्वेदी जी का परिचय विचित्र रूप में हुआ था । सन् 1908 में चतुर्वेदी जी का एक लेख स्वदेशी आन्दोलन " विषय पर हिन्दी केसरी में प्रकाशित हुआ था । इसी हिन्दी केसरी द्वारा आयोजित निबंध प्रतियोगितामें चतुर्वेदी जी नें स्वदेशी आन्दोलन और बायकाट विषय पर अपना लेख प्रस्तुत कर प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया था। उनकी लेखनी की शक्ति का अन्दाजा लगाकर श्री सप्रेजी ने उन्हें बहुत अधिक प्रोत्साहित किया। इसीलिए माखन लाल चतुर्वेदी ने पहली ही भेंट में उन्हें अपना गुरूमान लिया था ।"[1]

1- श्री कृष्णदेव शर्मा का माखनलाल चतुर्वेदी से मौखिक वार्तालाप

तब से उनका सम्पर्क दिनो दिन बढ़ता हो गया ।
श्री गोविन्द नारायण हार्डिकर के अनुसार - माखन लाल के निर्माण में उनका {सप्रेजी} बड़ा हाथ रहा है । उन्हें माखन लाल जी के कोमल हृदय को उच्चतर बनाने में आशातीत सफलता प्राप्त हुई । वे माखनलाल को छोटी-छोटी व्यावहारिक बातों में भी स्नेह सिक्त कठोर नियंन्त्रण रखते थे, जिसके मूल में यही भावना रहती थी कि माखनलाल में किसी प्रकार की कोई कसर नही रहे । यही कारण है कि माखन लाल जी की श्रेष्ठता में जरा भी कोई कसर रहती तो सप्रे जी बेचैन हो जाते थे ।[1]

माखन लाल जी ने स्वीकार किया है - जब भी मैं याद करता हू मुझे लगता है कि मेरे जीवन की कमियाँ अपनी है और यदि उसमे कही कोई संस्कार दिखाई देते हैं तो उनका बहुत बड़ा श्रेय सप्रे जी को है । -[2]

कवि पर सप्रे जी की दार्शनिकता और विचारशीलता का यथेष्ट रूप में प्रभाव परिलक्षित होता है क्रान्तिकारी दल की ओर कवि को प्रवृत्त करने का कार्य सप्रे जी ने ही किया ।

सप्रेजी को कवि माखन लाल की बहुत चिन्ता रहती थी । यही कारण था कि मरने से पूर्व उन्होंने माखन लाल को गाल चूमकर बाहर भेज दिया था । जैसे ही माखनलाल खण्डवा आये, सप्रे जी का

1- श्री गोविन्द नारायण हार्डिकर : माखन लाल चतुर्वेदी एक अध्ययन पृ0 9
2- माखन लाल चतुर्वेदी से कृष्णदेव शर्मा का मौखिक वार्तालाप {4.5.64}

देहान्त हो चुका था । दुर्दैव की इस भयानक चोट सहन करने में कवि असमर्थ रहा, वह तुरन्त बीमार हो गया और अट्ठारह दिन तक बीमार रहा ।"[1] कवि ने सप्रे जी की महायात्रा पर एक कविता लिखी थी जो माता काव्य संग्रह में संकलित है। चतुर्वेदी जी ने स्वयं लिखा है- " उसे खोकर हम गरीब हैं., उसकी स्मृति हमसे बलि, सेवा और जाज्वल्य पुरूषार्थ की मांग कर रही है ।"[2]

सप्रे जी ने 'रस कुसुमार' और 'गीता रहस्य" नामक पुस्तकें कवि को भेंट में दी थी ।

सप्रे जी द्वारा अनुदित गीता रहस्य पुस्तक के एक अध्याय का अनुवाद चतुर्वेदी ने भी किया था ।

चतुर्वेदी जी ने अपनी साहित्य देवता पुस्तक स्वर्गीय सप्रे जी को इन शब्दों के साथ समर्पित की थी - मेरे जीवन के वाणी नियन्त्रक स्वर्गीय पण्डित माधवराव जी सप्रे जी के श्री चरणों में ।"[3]

2- माखन लाल चतुर्वेदी पर गणेश शंकर विद्यार्थी का विशेष प्रभाव रहा । कवि माखन लाल जी की प्रथम भेंट विद्यार्थी जी से सन् 1913 में लखनऊ हिन्दी साहित्य सम्मेलन में हुई थी जो मित्रता में

1- माखन लाल चतुर्वेदी से कृष्ण देव शर्मा का मौखिक वार्तालाप {4. 5. 64}

2- माखन लाल चतुर्वेदी : माधवराव सप्रे , संगम अप्रैल 1950

3- श्री माखन लाल चतुर्वेदी, साहित्य देवता, समर्पण

परिवर्तित हो गयी और आजीवन बनी रही । कवि माखन लाल जी का कहनाथा – स्वर्गीय सप्रे जी मेरे गुरू है किन्तु विद्यार्थी को मैं सखा भाव से देखता हूँ – अभिन्न सखाके रूप में । मैने उनसे कविता करने की प्रेरणा भी पाई है, क्योंकि वह मेरे कहने पर सबसे बड़ा काम और त्याग करने को तत्पर रहते थे । मैने विद्यार्थी पर कोई कविता नहीं लिखी है । कारण यह है कि विद्यार्थी पर कविता लिखते समय मैं अधिक भाव विभोर हो उठता हूँ ।"[1]

प्रभा के सम्पादन काल में एक बार माखन लाल जी ने चेतावनी नामक कविता श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के पास भेजी विद्यार्थी जी कानपुर से प्रताप का संपादन कर रहे थे । संपादकीय दुनिया में वे बड़े ऊँचे दर्जे के राष्ट्रभक्त और प्रतिभा के पारखी के नाते विख्यात थे । उन्होंने माखन लाल चतुर्वेदी की चेतावनी को देख उनमें छिपी हुयी चिनगारी को पहचान लिया और उसेअपने स्नेह सहयोग और आग्रह की फूंक से, चेताने का स्तुत्य प्रयास किया। इसलिए माखन लाल जी उनके स्नेह के कायल थे और उन्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे । हिमकिरीटनी का समर्पण उसका प्रमाण है ।

आत्मगोपन की प्रवृत्ति चतुर्वेदी जी में बहुत अधिकथी । वे विज्ञापनबाजी और प्रचार-प्रसार की तिकड़म से इतनीदूर थे कि उनकी

1– चतुर्वेदी जी से कृष्ण देव शर्मा का मौखिक वार्तालाप 3. 5. 64

अधिकांश रचनाएं उनकी डायरी में या बिखरे हुए पृष्ठों पर ही लिखी रहती थी । छपाने के लिए वे बहुत कम रचनाएं भेजते थे । विद्यार्थी जी जब भी खंडवा आते, माखन लाल चतुर्वेदी के संग्रह में से खोज खोजकर तुकबन्दियां अपने साथ ले जाते थे और उन्हें छाप दिया करते थे । यो चतुर्वेदी जी की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य करना असम्भव था पर विद्यार्थी जी एक अपवाद थे । उनके स्नेह का सम्मान करने के लिए चतुर्वेदी जी आजीवन उनसे कभी भी कुछ नहीं कह पाये । सच्चे स्नेह और श्रद्धा के सामने वाणी का मौन ही व्यक्तित्व का श्रृंगार हुआ करता है। विद्यार्थी जी के बारे में चतुर्वेदी जी की यही हालत थी ।

कवि गणेश जी को गणेश मानकर पूजता है जैसी कि भारतीय धर्म और शास्त्रों में गणेश की पजा होती है। सन् 1917 में विद्यार्थी जी चतुर्वेदी जी को प्रताप के सम्पादनार्थ कानपुर लेगये । कुछ समय पश्चात् चतुर्वेदी जी ऐसे बीमार हुए कि उनकी जान खतरे में पड़ गयी । उस समय विद्यार्थी जी ने यह आशंका करके कि वे कहीं सचमुच सदा के लिए आंखे न मूँद ले, उनकी स्मृति कोजीवित रखने के लिए दो काम किये - एक तो उनके कृष्णार्जुन युद्ध नाटक का प्रकाशन किया और दूसरा प्रभा पत्रिका का फिर से प्रकाशन ।[1]

1- श्री हरिकृष्ण प्रेमी माखन लाल चतुर्वेदी एक परिचय पृ0 92

जब गणेश जी जेल गये और प्रताप के प्रकाशन की समस्या आयी तो उसे चतुर्वेदी जी ने ही सुलझाया ।

कवि माखन लाल गणेश जी के यहाँ रहकर ही क्रान्तिकारियों कोसहायता किया करते थे ।

कवि माखन लाल ने स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी पर एक लेख 'गणेश शंकर एक संस्था' और एक भाव चित्र गणेश शंकर पूजा के नाम से लिखा है ।

कवि माखन लाल जी ने विद्यार्थी जी की मृत्यु पर लिखा- उस दिन न केवल एक परिवार ने अपना सर्वस्व खोया बल्कि हिन्दी संसार ने अपना जाज्वल्य वर्तमान खोया, भारतीय पत्रकार, जगत ने एक आदर्श खोया भिन्न-भिन्न क्षेत्रो में परिस्थितियों से जूझने वाले कार्य कर्ताओं ने अपना नेता और संरक्षक खोया और हिन्दू मुस्लिम मेल में आजाद भारत की झाँकी देखने वाले महात्मा गांधी ने साम्प्रदायिक क्रूरता की वेदी पर वहउपहार खोया जिसकी उज्जवल पवित्रता, बेदाग ईमानदारी और निर्मल समर्पण पर कुरबानी स्वयं कुरबान रही । मार्च की वह 25 वी तारीख क्या सन् 1931 से पहले भी कभी इतनी निष्ठुर हुयी थी ।"[1]

1- माखन लाल चतुर्वेदी : समयके पाँव , पृ0 57

3- सन् 1919-20 में माखन लाल चतुर्वेदी की जीवनधारा ने नया मोड़ लिया। महात्मा गांधी इस समय तक भारतीय राजनीति के रंगमंच पर सत्य, अहिंसा और असहयोग का अस्त्र लेकर उतर आये थे और भारतीय जनसमूह तिलक की क्रान्ति द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति की नीति से दूर हो चला था। काशी विश्वविद्यालय में भाषण करते समय महात्मा गांधी ने क्रान्तिकारियों से अनुरोध किया कि वे निःशस्त्र आगे आये। गांधी जी के आह्वान को सुन माखन लाल चतुर्वेदी भी अन्य क्रान्तिकारियों के साथ गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने की प्रतिज्ञा की। गांधी जी के प्रभाव से उन्होंने शशस्त्र क्रान्ति का विचार सदा के लिए त्याग दिया और एक आदर्श गांधीवादी की तरह खादी तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रति पूर्ण निष्ठा से जीवन बिताना शुरू कर दिया। गांधी जी की विचारधारा प्रचार और राष्ट्रीय-भावना का प्रसार करने के लिए उन्होंने अपनी कलम चलाई। 9 अक्टूबर 1920 के कर्मवीर की संपादकीय टिप्पणी में उन्होंने अंग्रेजों की डिप्लोमेसी की धज्जियां उड़ाते हुए उसे धोखे बाजी कूटनीति तथा भारत के लोगों को सरासर भ्रम में रखकर उनका शोषण करने की जालसाजी कहा तथा इस जंजाल से भारत की मुक्ति के लिए गांधी के असहयोग आन्दोलन को एक मात्र मार्ग बतलाकर उसकी पुष्टि करते हुए लिखा - भारत के लिए एक ही पथ है प्राण देकर स्वाधीनता प्राप्त

करना, डिप्लोमेसी नहीं। .... उसके लिए सच्चा मार्ग अहिंसात्मक असहकारिता ही है।"[1] चतुर्वेदी के विचारों पर गांधी जी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। कर्मवीर की टिप्पणियों में अंग्रेजी शासन की अनीति का पर्दाफाश करना पाठकों को सरकार के खिलाफ भड़काना और लोकमत को विदेशी शासन को उखाड़ फेकने के लिए उभाड़ना उनकी कलम का प्रधान गुण था। इस दृष्टि से उनके संपादकीय लेखों में एक भारतीय आत्मा की स्वातन्त्र्य प्राप्ति की झलक देखी जा सकती है।

चतुर्वेदी जी की अदालत में सत्याग्रही के नाते बयान शीर्षक कविता में गांधी जी द्वारा प्रदत्त सत्याग्रह तथा अहिंसा के सिद्धान्तों का ही वर्णन किया गया है।[2] दुर्गमपथ कविता में भी गांधी की अहिंसा नीति की ही व्याख्या है। गांधी के प्रति कवि की अगाध श्रद्धा भावना हृदय शीर्षक कविता में व्यक्त हुयी है।

4- माखन लाल चतुर्वेदी एक ओर तो गांधी वाद का अनुगमन करते थे और दूसरी ओर क्रान्तिकारियों के प्रति स्नेह और सहानुभूति रखकर उन्हें सब प्रकार से सहायता पहुँचाया करते थे।

1- माखन लाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व
डा० भगवानदास सि० पृ० 46

2- श्री माखन लाल चतुर्वेदी, माता, पृ० 82

:लिदानी वीरों के प्रति उनके सैनिक कवि के मन में इस प्रकार की आत्मीयता कोई अजीब बात नहीं थी । उधर वे असहयोग आन्दोलन और राष्ट्रीय हलचलों में प्रत्यक्ष कार्य करते थे । अपने भाषणों के क्रम में उन्होंने जबलपुर में फिर अंग्रेजी शासन के खिलाफ आवाज उठाई । परिणामस्वरूप 12 मई 1930 को उन पर पुनः राजद्रोह का अभियोग लगाया गया और जबलपुर में उन्हें एकमास की सजा हुई । राष्ट्रपिता महात्मागांधी ने जब इस समाचार को सुना तो उन्होंने केवल इतना ही कहा कि पंडित माखन लाल चतुर्वेदी स्वतन्त्र रहने की अपेक्षा जेल में जाकर अपने देश की अधिक सेवा कर रहे हैं ।

राष्ट्रपिता के उक्त शब्दों में बड़ा ही गंभीर संकेत है । माखनलाल चतुर्वेदी जेल के बाहर अपने भाषणों और लेखों से जनता में राष्ट्र प्रेम का प्रचार करते थे, पर जेल में जाकर अवश्य ही कोई न कोई अमर साहित्यिक कृति का निर्माण करेंगें - इससे भारत के इतिहास में राष्ट्र प्रेम के पोषक साहित्य की श्रीवृद्धि होगी और वह निःसंदेह सामयिक वस्तु न होकर स्थायी मूल्य की रचना होगी । गांधी जी की यह धारणा गलत नहीं सिद्ध हुई । जबलपुर में जेल में जाने से पहले, जब पंडित माखन लाल चतुर्वेदी विलासपुर जेल में थे तब उन्होंने 18 फरवरी 1922 को अपनी लोकप्रिय रचना एक फूल

को याह लिखो, जो सत्याग्रहियों के लिए सुबह शाम प्रार्थना जैसी काम में आती थी । गांधी जी भी उक्त कविता के मर्म से प्रसन्न थे ।

हिमकिरीटनी "झरना आदि रचनाएं भी जबलपुर सेन्ट्रल जेल में लिखी गयी थी । ये कविताएं अंग्रेजी शासन द्वारा सत्याग्रहियों के साथ किये जाने वाले व्यवहार की सच्ची तस्वीरें तो प्रस्तुत करती ही है किन्तु इनमें सत्याग्रही वीरों की मनोभावनाओं की भी पुनीत झांकी दिखाई देती है । ये माखन लाल चतुर्वेदी की स्वानुभूति और उनके जीवन रस से ओत प्रोत होने के कारण हिन्दी राष्ट्रीय कविताओं में अपना विशेष महत्व रखती है ।

5- वीर पूजा बंधन सुख, निःशस्त्र सेनानी, बलिपंथी से मरण त्यौहार सिपाही, सिपाहिनी, जालियां वालाबाग कैदी और कोकिला आदिचतुर्वेदी जी की कविताओं में गांधीवादी विचार धारा और अहिंसा-मूलक आन्दोलन का विशेष प्रमाण है । बंधन सुख कविता के द्वारा कवि ने सत्याग्रह की अहिंसा मूलक भावना का बड़ी समर्थ शैली वर्णन किया है।

गांधी जी के व्यक्तित्व और सत्य अहिंसा के सिद्धान्तों ने सारे देश में एक ऐसी जन जागृति को जन्म दिया जो विश्व के इतिहास में अद्वितीय है ।

भारतीय सत्याग्रहियों के आत्म विश्वास तत्व निष्ठा दुर्दमनीय उत्साह, त्याग, बलिदान और सर मिटने की चाह ने हिंसा और दमन के सहारे राज्य चलाने वाले अंग्रेजो को यह दिखा दिया कि भारत की यह पीढ़ी लाठी चार्ज, गोलीकाण्ड, जेल यातना, काला पानी या फाँसी के फंदों से घबराने वाली नहीं है। एक तरह से यह भारतीय राष्ट्रीय जागरण के नैतिक मनोबल को पोषक और अंग्रेजी शासन के नैतिक मनोबल को छिगाने वाला समय था। ऐसे समय में माखन लाल चतुर्वेदी ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं द्वारा जनजागरण की भावना को आकार दे राष्ट्र की सेवा की।

6- राष्ट्रीय भावना का आन्दोलनों की पृष्ठभूमि मे चित्रण करने वाले प्रथम कवि है। कवि ने सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लिया था और उसे भारत की स्वतन्त्रता में एशिया की मुक्ति, रक्षा और नेतृत्व की सम्भावना दृष्टिगोचर होती थी। वह भारतीय गणतन्त्र रूपी कृष्ण से आत्म समर्पण केवल पर नवसृजन और त्राण की साधना की अपेक्षा करता है जो कुपित फणी के क्षुधित फण पर नृत्य करने के समान कठिन है। कवि का आग्रह है कि मानव की सत्योपासक चेतना को सीमाबद्ध नहीं होना चाहिए। अतः 15 अगस्त सन् 1946 को स्वतन्त्र भारत में लिखी गयी अपनी प्रथम कविता में ही उसने कहा है -

सागर को बाँह लाये हैं
तट चुम्बित भू - सीमा
तू भी सीमा लाँध जगा एशिया
उठा भुज तीखा ।"[1]

चतुर्वेदी जी की यह राष्ट्र प्रेम की भावना विद्रोह की सीमा तक पहुँचती है। कवि सब ओर से विद्रोह की मस्ती में मस्त है । यद्यपि महात्मा गांधी की अहिंसा नीति से वह पूर्णतया प्रभावित है किन्तु क्रान्ति का एक प्रबल आवेग भी उसमें परिलक्षित होता है जहाँ कवि की एक ओर भावना है -

ले कृषक सन्देश कर बलि वन्दना
ध्वज तिरंगे की करो सब अर्चना
घूमता चरखा लिए गिरि पर चढ़ो
ले अहिंसाशस्त्र आगे ही बढ़ो ।"[2]

वहीं दूसरी ओर कवि प्रबलता के साथ भैरवी राग गुंजार मान परिलक्षित होता है -

---

1- युगचरण माखन लाल चतुर्वेदी पृ0 48
2- मरण त्योहार: माखन लाल चतुर्वेदी पृ0 119

विश्व है असिका 9 नहीं संकल्प का है
हर प्रलय का कोण कायाकल्प का है

इस प्रकार जो कवि सत्य अहिंसा का उद्घोष करता है और देश को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उन्हे अमोघ अस्त्र मानता है वही ललकारता हुआ कहता है -

जम्बुकेश चलो । जहाँ संहार है
वन्य पशुओं का लगा बाजार है
आज सारी रात कूकेंगे वहाँ
मोमदीपों का मरण त्यौहार है ।"[1]

7- माखन लाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीयता और वैष्णवता के साथ एकात्म स्थापित किया गया है ।

वैष्णव भक्तों ने अपने आराध्य की मानवी क्रीडाओं में अलौकिकता के दर्शन किये है किन्तु माखनलाल जीने अलौकिक को ही लौकिक बना दिया है। वे धरती और आकाश की लौकिक और अलौकिक की आँख मिचौनी का आनन्द लेना चाहते है । कवि की इस प्रवृत्ति ने उनके काव्य को विलक्षणता प्रदान की है ।

1- माखन लाल चतुर्वेदी - मरण त्यौहार पृ0 119

माखन लाल जी ने जीवन को कृष्ण तो कला को राधिका माना है। अतः इनका कला भी विरुद्ध धर्मों को सहज रूप में स्वीकार कर लेती है। उन्हें भावना और विचार -विचार और जीवन साँस और सूझ तथा बर्हिदर्शन तथा अन्तर्मुख अन्वेषण में विद्रोह ही नही दीखता। कला राधिका इन्हें परस्पर जोड़ने वाली कड़ी बन जाती इस विरुद्ध धर्म के सम्मिलन में कला कालजयी बनती है।

कवि ने सौन्दर्य के प्रदेश में जीवन और मरण को बहुत निकट से देखा है। यही सम्यक् दृष्टि है यही जीवन की सम्पूर्णता का साक्षात्कार है।

पंडित माखन लाल चतुर्वेदी का राष्ट्र पूर्णत्व की प्रतिमा है जिसे उन्होंने कृष्ण के रूप में स्वीकार किया है। कृष्ण विष्णु के अवतार माने जाते हैं। अतः कृष्णोपासना भी स्वराज्य यज्ञ का ही परवर्ती रूप माना जा सकता है। श्यामरंग चतुर्वेदी जी के अनुसार पूर्णत्व का सूचक है। उनका कहना है कि पानी अधिक हुआ कि नीला दिखा, हवा घनी हुई कि नीली दिखी, आकाश घना हुआ कि नीला दिखा। यह हमारा दृष्टिदोष है या दृष्टिघोष है कहना कठिन है किन्तु ऊपर की हर उड़ान को लोगों ने श्याम सुन्दर ही नाम दिया है। मेरे निकट तो श्याम सुन्दर मीठा, आकर्षणशील परम सत्य है।"[1]

1- वेणुली गूँजे धरा: माखन लाल चतुर्वेदी : भूमिका।

कवि को प्रकृति के हर व्यापार में श्री कृष्ण की नित्य लीला की प्रतीति होती है माखनलाल जी के शब्दों में - " जब वायु जोर से चलती है तो मुझे लगता है कि उसने वेणु ले ली है और जब अन्धड़ का सन्नाटा सुनता हूँ तो लगता है कि धरा गूंजने लगी है । यह धरा गूँजने वाले स्वर माखन लाल जी की अपनी मौलिकता है । उससे एक शाश्वत किन्तु नवीन अर्थ की उपलब्धि होनेलगती है । इसके माध्यम धरती और आकाश की दूरी समाप्त हो जाती है । यह उनके काव्य की सर्वथा मौलिक विशेषता है ।

7- माखन लाल जी ने परम्परागत वैष्णव प्रेम को नवीन आयाम दिया है । उनकी लोकबद्धता ने वैष्णव भावना को नयी दिशा प्रदान की है । अपनी इस विलक्षणता के कारण वे कबीर सूर मीरा इत्यादि सेअलग है। कबीर की सामाजिक चेतना उच्चकोटि की थी पर उसकी परिधि अध्यात्म के रोड़ो की सफाई तक ही प्रतीत होती है माखन लाल जी ने लोकबद्धता को लोक मंगल का रूप प्रदान किया । उन्होने उत्थान और पतन दोनो को लोकाभिमुख किया है -

> पतित पतित क्या ढूढ रहा है - रोज पतित होगी गंगा
> जो उठती की झांकि तीलाख - खेतों को उभरन हो पगा ।"[1]

1- आधुनिक कवि माखन लाल चतुर्वेदी पृ0 94 रामशंकर त्रिपाठी

लोक बाह्य वायवी पलायनवादी उत्थान की उच्चता कवि की दृष्टि में वरेण्य नहीं है किन्तु लोकोन्मुख पतन भी श्रेयस्कर है -

मैं उच्चता का शत्रु
संबल जगत् की मनुहार था
मुझको पतन स्वीकार था ।[1] तथा
तुम देवों से बतियाते यह
भू से मिलने को अकुलाती [2]

लोक मंगल की साधना में व्यष्टि का बलिदान ही कवि को इष्ट है । लोकजीवन की करुणा तो पतित पावनी है । वहाँ तो मधुर पाप भी पुण्य बन जाता है ।

माखन लाल जी की लोकबद्ध वैष्णव भावना ने अलौकिक को लौकिक बनाया है और यह लोक बिहार भी नित्य बिहार बन गया है।

सैद्धान्तिक रूप से तो सूर आदि वैष्णव भक्तों ने जगत् को कृष्णमय ही देखा था पर वे सदा अलौकिक की उपेक्षा ही करते रहे । वे इसकी छवि पर न्योछावर नहीं हो पाये । इसका रस लेना उन्हें रास नहीं आया । कबीर ने अवश्य ही उस सत्य को खुली आँखों से देखने और

1- आधुनिक कवि माखन लाल चतुर्वेदी पृ0 94
2- वही पृ0 118

उसके सुन्दर रूप को निहारने का साहस बतलाया था तथा उसे सहज समाधि कहा था किन्तु उसमें साधना का भाव ही अधिक था । कबीर की दृष्टि एक आत्मद्रष्टा की विरक्त ज्ञान दृष्टि है किन्तु माखनलाल जी की दृष्टि सच्चे वैष्णव की रस दृष्टि है । एक ब्रह्म के आनन्दमय स्वरूप की झाँकी पा रहा है तो दूसरा इसकी छवि के आनन्द में खो चुका है । माखनलाल जी की यह रस साधना वैष्णव भावना का मर्म उद्घटित करती है ।

माखन लाल जी ने निज - पर भेद रूपी अविद्या के नाश की संकोर्णता से मुक्ति की पीठिका बनाकर अनन्त की तरह मुक्त होने की साधना की और ब्रह्मय जगत् की रसात्मकता का भी जी भरकर आनन्द लिया । इस प्रकार उन्होंने और जगत और संसार दोनों को समझकर अपनी प्रबुद्ध वैष्णव भावना का परिचय दिय ा तथा सत्य की सौन्दर्य मयी तथा रसात्मक अभिव्यक्ति की उनकी इस वैष्णवता में नये के प्रति आवेग है, उन्मेष है जो क्रान्तिकारी कहा जा सकता है।

देश प्रेम के पथ में विक्षिप्त उन्मत्त क्रान्तिकारी के इन उद्गारों में राष्ट्रीय भक्ति भावना का मस्ताना चित्र बड़ा ही हृदयस्पर्शी बन पड़ा है -

जिसके पागलपन में एक
प्रणयिनी वंदन की हलचल है ।

× ×

जिसके पागलपन में बलिपथ
में भी मधुर ज्वार आता है ।[1]

8- चतुर्वेदी जी संस्कार से वैष्णव थे। वैष्णव भक्त को वैयक्तिक मुक्ति में विश्वास नहीं होता । वह इस जीवन में रहकर ही अपने प्रभु का सामीप्य लाभ करना उनका प्रसाद पाना चाहता है। माखनलाल ने अपनी वैष्णव भक्ति को स्वदेश भक्ति मे घुला दिया । मातृभूमि के लिए झेलीगयी यातना को वे अपने प्रभु की सेवा मानते थे ।

इस प्रकार उनकी वैष्णव भावनाराष्ट्र की गति और मति से जुड़ गयी । उनके आराध्य कृष्ण का मिथक राष्ट्र भावना का मिथक बन गया । अपने सलोने श्याम के प्रति एशिया की गोपियों की ओर से भारतीय आत्मा की इस प्रकार एवं मनुहार में विराट राष्ट्रीय भावना का रूप दर्शनीय है ।

वेणुलों गूंजे धरा मेरे सलोने श्याम
एशिया की गोपियों ने वेणु बांधी है
गूंजते हो गान घिरते हो अमित अभिमान
तारकों सी नृत्य ने बारात साधी है ।[2]

1- माखन लाल चतुर्वेदी समर्पण पृ0 11-12

2- वेणु लो गूंजे धरा: माखन लाल चतुर्वेदी पृ0 70

9- गाँधी जी। उन्होंने श्रीकृष्ण का बिन्दु देखा । अतः कृष्ण उनकी रचनाओं में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रेरक पुरुषोत्तम बन गये । हिमकिरीटनी में उन्होंने सम्पूर्ण भारत को एक कारागार के रूप में स्वीकार किया है । जिससे छुड़ाने के लिए कभी देश के यौवन को पुकारा है, कभी युगपुरुष को जगाया है और कभी मोहन जी मोहनदास गाँधी को जनता का नेतृत्व करने के लिए आहूत किया है । स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए शक्ति साधना का यही स्वरूप उस समय के लिए उपयुक्त था ।

अपने मौलिक चिन्तन के कारण चतुर्वेदी जी ने महाभारत के सूत्र संचालक मोहन (भगवान कृष्ण) और आधुनिक भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के नायक मोहन (मोहन दास कर्मचन्द्र गाँधी) में नाम साम्य, भावसाम्य तथा क्रिया साम्य देख अहिंसात्मक आन्दोलन की नीति का समर्थन किया -

> आज कोई विश्व दैत्य तुम्हें चुनौती दे
> और महाभारत न हो पाये सखे सुकुमार
> बलवती अक्षौहिणियाँ विश्व नाश करें
> शस्त्र में लगा नटी को कर सको हुंकार ।[1]

1- वेणु लो गूँजे धरा : माखन लाल चतुर्वेदी पृ0 70

निःशस्त्र क्रान्ति से ही चतुर्वेदी जी ने भारत माता की आराधना का सही मार्ग देखा। कवि ने युग पुरुष महात्मा गांधी के राष्ट्रव्यापी प्रभाव का एक सच्चा चित्र अंकित किया है -

तेरी कृति पर सजे हिमालय रजत मुकुट सा
सिंधु, इरावति बने सुहावन वैभव घट सा
गंगा यमुना बहें तुम्हारी उर माला सी
विहरित हरित स्वदेश करे, कृषि जल कमला सी
कमर बंद नर्मदा बने उठ सेनानायक।
शस्त्र सज्जिता तरल ताप्ती बने सहायक।[1]

9अ- राष्ट्रीय आन्दोलन में कारागृह कृष्ण गृह बन गया। चतुर्वेदी जी ने भारतीय भाषाओं में गांधी पर सबसे पहली कविता लिखी निःशस्त्र सेनानी ई। भारतीय पराधीनता मे वे द्रौपदी के चीरहरण की कल्पना करते है। कारागृह में कृष्ण का जन्म स्वाधीनता संग्राम के लिए प्रेरणा स्रोत बन जाता है।

9ब- चतुर्वेदी जी के दो प्रिय प्रसंग है -

1- कालीय मर्दन - जिससे वे उपनिवेशवादी शत्रु के मर्दन की कल्पना करते है। मरण की भयंकरता पर कला या सौंदर्य का नर्तन ही कालीय मर्दन है। इस विरुद्ध धर्माश्रयी सर्वरूप दैवत पर कवि ने अपना सर्वस्त्र न्यौछावर

1- माखन लाल चतुर्वेदी समर्पण युग पुरुष पृ0 126

कर दिया है और अपने सहकर्मियों से भी वह इसी समर्पण की माँग करता है ।

2- छिगुनी परगोवर्द्धन धारण - उसमें स्वाधीनता के लिए अपमानित देश के लिए साहस का शैल उठाने की प्रार्थना वे बनमाली कृष्ण से करते हैं और साम्राज्यवादी इन्द्र का दर्प मिटाने की बात करते हैं । अतः बनमाली और गिरधारी नाम उन्हें विशेष प्रिय है। कृष्ण अनासक्ति दर्शन के प्रतिपादक के रूप में बनमाली कहलाते हैं ।

अपने प्रबल राष्ट्र प्रेम के कारण चतुर्वेदी जी ने भगवान कृष्ण को भी भक्तिकालीन भगवान और रीतिकालीन छलिया के स्तर से सर्वथा भिन्न भावभूमि पर ला खड़ा किया और उनसे गिरधारी के रूप में प्रार्थना की -

उठा दो वे वारी करकंज देश को लो छिगुनी पर तान ।
और मैं करने को चल पड़ू तुम्हारी युगलमूर्ति का ध्यान ।

कृष्ण की मुरली की मोहक तान से चतुर्वेदी जी ने रणभेरी की ध्वनि की अपेक्षा की और उनसे शत्रुओं के बीच मरने मारने के लिए पानी वाली तलवार धारण का अनुरोध किया -

किंतु आज तो इस मुरली को रणभेरी का डंका कर लो
या करलो पानी वाली तलवार उदार मार लो मर लो

चतुर्वेदी जी का राष्ट्र पूर्णत्व की प्रतिमा है जिसे उन्होंने कृष्ण के रूप में स्वीकार किया है। राम और कृष्ण की श्याम वर्णता उनकी पूर्णता अथवा तदुदिदृष्ट उठान की सूचक है और मातृभूमि की शस्य श्यामलता राष्ट्र की पूर्णता की ओर गति की सूचना देती है। राष्ट्र की उठान उसके निवासियों की उठान है।

इस प्रकार एक पुराना मिथक यानि कि कृष्ण मिथक जातीय संघर्ष के स्रोत विद्रोह के प्रतीक में रूपान्तरित हो जाता है। भारत माता की समग्र कल्पना उन्होंने इसी कृष्ण मिथक की छाया में गढ़ी जिसके फलस्वरूप कृष्ण के जीवन के अनेक प्रसंग स्वाधीनता संग्राम के प्रसंगों में सार्थक होते गये।

10- राष्ट्रीय संस्कृति की भी उन्होंने वाणी दी कृष्ण राधा वृन्दावन वेणु सभी आधुनिक प्रतीक बनकर उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति के नूतन अध्याय बन गये। उन्होंने स्वाधीनता और स्वच्छन्दता का प्रतीक गोपियों को माना और सम्पूर्ण राष्ट्र को वृंदावन माना है -

उस वृंदावन पर बाग-बाग
उस वंशीवट पर तान-तान
जिसके सिर हिम मुकुट लसित
जिसके अंगों गंगा लिपटी

हिम नग से अमल कुमारी तक
शोभित मेरी यह पंचवटी ।[1]

इस प्रकार चतुर्वेदी जी नेगोपियों की स्वच्छन्दता को ही राष्ट्र को मुक्ति और स्वाधीनता का प्रतीक माना ।

11- हिमकिरीटनी के रूप में उन्होंने भारत माता की परिकल्पना की जो उनकी सर्वथा मौलिक और काव्यात्मक परिकल्पना है। हिमकिरीटनी में उन्होंने सम्पूर्ण भारत को एक कारागृह के रूप में स्वीकार किया है, जिससे छुड़ाने के लिए कभी देश के यौवन को पुकारा है, कभी युगपुरुष को जगाया है और कभी मोहन रूपी मोहनदास गांधी को जनता का नेतृत्व करने के लिए आहूत किया है । स्वातन्त्र्य प्राप्ति के लिए शक्ति साधना का यही स्वरूप उस समय के लिए उपयुक्त था । हिमकिरीटनी में समर्पण और बलिदान का मनोलुब्धकारी समाहार है जिसकी एक दिशा में प्रलयकर शंकर की संघर्षमयी पुकार है तो दूसरी ओर शिवशंकर की कल्याण मयी मनुहार । इसलिए कवि ने प्रलय और प्रणय को एक साथ स्वीकार किया है ।

12- हिमकिरीटनी संग्रह राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें सिपाही कविता देश के सैनिक को रामराज्य स्थापित करने के लिए त्रेतायुग खींच लाने का आग्रह किया गया है ।

1- आधुनिक कवियों का जीवन दर्शन: डॉ0 परशुराम शुक्ल विरही पृ0 151

रामराज्य के लिए वे शासकों मे अनासक्त राष्ट्र प्रेम की भावना चाहते थे, इसलिए उन्होंने रामराज्य रामराज्य चिल्लाने वाले भारतीय नेताओं के सामने राम और भरत के आदर्श से इधर राम ने दे दी ठोकर उधर भरत ने भी ठुकराया, तभी अवध के सिंहासन पर विजयी राम राज्य हर्षाया ।

13- रामनवमी पर चतुर्वेदी जी की लिखी हुयी कविताए भारत शीर्षक के अन्तर्गत महत्वपूर्ण है। राम से पुनः पधारने की कातर पुकार की गयी है और राम के पवित्र पावन रूप पर बल दिया गया है।

स्वतन्त्र भारत में उन्होंने सुग्रीवों को देखा विभीषणो को देखा, पर भरत और राम नही दिखे, उन्हें सदैव यही अनुभव हुआ कि पराधीन भारत में देश की स्वतन्त्रता के लिए जिन पीढ़ियों ने बलिदान किया अनेक यातनाएं सही, प्राणदान दिये, उनके बलिदानो का फल स्वार्थियों के बीच बँट गया । देश में गरीबी बेकारी और भुखमरी जहाँ की वहाँ है, स्वतन्त्र भारत के नेताओं में स्वार्थ की जितनी मात्रा है, उसका शतांश भी त्याग नही है और जिनमें त्याग है नैतिकता है वे बहुमत के अन्याय से उपेक्षित औरतिरस्कृत है ।

स्वतन्त्रता की सीता सदैव बलिदान की आकांक्षिणी रहती है यह शिव-पिनाक- भंजक धनुष राम के गृह का ही श्रृंगार हो सकती है । चतुर्वेदी की कैदी और कोकिला कविता विशेष देश भक्ति पूर्ण है ।

इस कविता के द्वारा कवि ने विदेशी शासन के प्रति अपने क्षोभ व्यक्त किया है । कोकिला को पुकार चतुर्वेदी जी के हृदय में बसे हुए मधुर कवि और बलिपंथी को एक साथ जन्म देती है ।

15- चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय चेतना की दो प्रमुख विशेषिताएं है जो उनको सभी राष्ट्रीय कवियों से भिन्न कर देती है -

1- राष्ट्रवादी क्रान्ति की उकसाहट जनवेदना और देश शत्रु पर क्रोध के साथ माधुर्य की अनुभूतियाँ ।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक होने के कारण उन्होंने अपने काव्य में आक्रोश और जोश को प्रकट कर देश के नवयुवकों को विद्रोह का शंख घोष करने के लिए आह्वान किया है । सूली का पथ, बलिपथ का अंगारा भुजदण्डों की रक्त वाहिनी अग्नि स्फुलिंग आदि शब्द उनकी कविताओं में प्रायः प्रयुक्त हुए है। क्रान्ति विद्रोह बलि प्रलय और अग्नि की यही हुंकार चतुर्वेदी जी के राष्ट्रीय काव्य की सम्पत्ति है ।

2- कविता की भाषा भी छायावादियों की भाषा से एकदम भिन्न और विशिष्ट है। उनकी भाषा में राष्ट्रवादी क्रान्ति के भावे की दहक के साथ-साथ कविता में कोमलता और माधुर्य का संचार भी है । उनकी वाणी में जनाकांक्षाएं बोलती हैं ।

3- इन दो के अतिरिक्त वैष्णव भावना का एकात्म भी उनकी मौलिकता है जो किसी अन्य राष्ट्रीय कविता में नही मिलती । उनकी इस मौलिक दृष्टि ने उनके काव्य को अभूतपूर्ण एवं विलक्षण भंगिमा प्रदान की है । उनका एशिया प्रेम भी सर्वातिशायनी वैष्णव भावना से अनुप्राणित है और वैष्णवी भंगिमा मे ही व्यक्त है -

वेणु लो गूँजे धरा मेरे सलोने श्याम
एशिया की गोपियों ने वेणि बाँधी है ।[1]

× ×

वेणी खोल एशिया की सब भूमि भाग बलाए छायी
तेरा माखन चोर जगा दे री भारती यशोदा माई ।

उनकी वैष्णव भावना की मौलिकता ने उन्हें राष्ट्र प्रेम एशिया की प्रति तथा विश्व प्रदान किया है ।

4- बलिदान वाद चतुर्वेदी जीकी राष्ट्रीय चेतना की विशिष्ट तत्व है। प्रेम प्रकृति समाज, राष्ट्रीयता, वैष्णव भावना और रहस्य जिज्ञासा आदि से संपृक्त बलिदानवाद उनके जीवन दर्शन को आंतरिक संगति देता है ।

चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीयता का केन्द्रीय तत्व बलिदान है। एक शब्द में उनकी राष्ट्रीयता बलिदानवादी राष्ट्रीयता है। बलिदान उसकी मूल प्रेरणा है उसका मूल स्रोत है बलिदान और समर्पण कवि के राष्ट्रीय

1- वेणुजी गूँजे धरा- माखन लाल चतुर्वेदी पृ0 99

काव्य के मूल स्वर हैं। दिनकर जी ने ठीक ही लिखा है -

प्रेम हो या अध्यात्म प्रकृति दर्शन हो, अथवा कल्पना का लीला विलास, माखन लाल जी की प्रत्येक मनोदशा में बलिदान की मधुरता किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहती है -
चतुर्वेदी जी ने स्वयं लिखा है - " राष्ट्र तो एक बाग है उसकी सीमा रक्षा के लिए सिर सौंपकर बलिदान दिया करते है जिससे संसार में वह अखण्ड राष्ट्र कहलाने योग्य होता है और वह मातृभूमि तभी गर्वीली होती है जब हम उसकी सेवा के लिए अपना सिर लगा सकें ।

5- बलिदान वाद का कोई निश्चित मतवाद नहीं है बल्कि अपने लक्ष्य या आदर्श के अनुरूप कुर्बानी करने की अटूट निष्ठा का विवेक है। बलिदर्शन में किसी महत्साध्य की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया जाता है । उसके अनिवार्य तत्व है-§1§ आदर्श निष्ठा §2§ कार्य प्रवृत्ति में अटूट आस्था §3§ साध्य सम्बन्धी अखण्ड विश्वास §4§ भावातिरेक ।

1- बलिदान का मूलाधार भावातिरेक ही है ।अतः वास्तविक बलिदान इष्ट सिद्धि के लिए किया गया आत्मोत्सर्ग है । अनिष्ठ निवारण के लिए की गयी हिंसा बलिदान नहीं है बल्कि बलिदान आत्मोपलब्धि है। इसके लिए विसर्जनशील मनोवृत्ति अनिवार्य है और भावातिरेक बलिदान का आधार है । बलिदानी अपने सुख के लिए दूसरों को दुख नहीं देता,

बल्कि वह दूसरो के सुख के लिए अपने जोवन को अर्पित कर देता है जो चतुर्वेदो जो के काव्य में मिलता है ।

2- दुख को स्वेच्छा से स्वोकार करना महत् उद्देश्य से प्रेरित होने के कारण संतोष प्रद होता है ।

स्वतन्त्रता के हमारे अहिंसक युद्ध में कई देश भक्त शहोद हुए भो है । वे बलि पथ पर इसलिए नहो चले थे कि उन्हें स्वतन्त्र हो पाने को कोई आशा थो बल्कि उन्होने कुर्बानो इसलिए दो थो कि प्रत्येक बलिदान देश को स्वतन्त्रता को दिशा में बढ़ा रहा था। चतुर्वेदो जो इसो बलि-पंथ के कवि है । कहना न होगा कि इस प्रवृत्ति के वे एक मात्र कवि है ।

3- बलिदानवाद एक उन्मुक्त जोवन दर्शन है जिसका मूल स्रोत मानवतावाद हो है । पर मानवहित के लिए इसमे उत्सर्ग को भावना हो प्रधान है और मानवतावाद में साध्य पर बल दिया जाता है और बलिदान वाद में साधक का पथ प्रधान हो उठता है साधन पथ के कार्यक्षेत्र में आकर दोनो समरूप हो जाते हैं ।

बलिदान विषय विचारणा का उद्गम अध्यात्मवाद में खोजा जा सकता है । आत्मा को खोज में तभो सफलता मिलतो है जब लौकिक चेतना निःशेष हो जाय । आत्मद्रष्टा वहाँ जागता है जहाँ संसार सोता है और जहां संसार जागता है वहा वह सोता है। तात्पर्य यह है कि जगत

की सत्ता जब तक सत्य जान पड़ती है तब तक आत्मा का दर्शन या साक्षात्कार नहीं होता है । अपने जागतिक अस्तित्व का बलिदान कर दिया जाय तो आत्मा अपने आप में सुस्थिर दिखाई पड़ती है । जिस प्रकार ममत्व का विनाश सत्य को सुलभ कर देता है उसी प्रकार उद्देश्य विशेष के लिए किया गया बलिदान अभीष्ट सिद्धि में सहायक होता है। त्याग का सर्वोच्च रूप होता है बलिदान । अतएव बलिदान का मूल स्रोत है अध्यात्मवाद की साधना प्रक्रिया ।

अध्यात्म साधना में वह ममत्व का नाश है और दाम्पत्य प्रेम के क्षेत्र में वह सहमरण की प्रवृत्ति है। स्वधर्म की रक्षा के लिए समाज में नाना प्रकार के बलिदान होते ही रहते है । बलिदानी सच्चा वीर होता है। उसका साहस और धैर्य अतुलनीय होता है । यह बात अलग है कि उसका वीरत्व युद्ध क्षेत्र में ही न दिखाई देकर धर्म, कर्म, दान, और दया के क्षेत्र में दिखाई पड़े अथवा प्रेमोपासना या ज्ञान योग के क्षेत्र में चतुर्वेदी जी की पुष्प की अभिलाषा में इसी प्रकार की उत्कट बलिदान भावना व्यंजित होती है -

मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावे वीर अनेक ।[1]

यही चतुर्वेदी जी रचना का मेरूदण्ड है। बलिपथी से हिमतरंगिणी माता आदिसंग्रह इसी दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं ।

1- माखन लाल चतुर्वेदी "युग चरण पुष्प की अभिलाषा, पृ0 80

1- राष्ट्र कवि दिनकर का व्यक्तित्व अनेक श्रेष्ठ व्यक्तियों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे प्रभावित था। तुलसी ने परोक्ष रूप से दिनकर के व्यक्तित्व को प्रभावित किया। तुलसी का राम चरित मानस दिनकर के साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक हुआ है। बाल्यावस्था में ही रामलीला को देखकर कवि के मन में काव्य के प्रति रुचि हुई है। कवि पर कबीर और तुलसी का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है, क्योंकि इन कविद्वय की भावपरक एवं प्रसादगुण युक्त अभिव्यक्ति दिनकर को भाव विभोर कर देती थी। चक्रवाल की भूमिका में दिनकर जी ने स्वयं लिखा है -

" जहाँ तक कविता का संबंध है मैंने पहले -पहल तुलसीकृत रामायण ही पढ़ी थी। ..... रामायण का गान करने में मुझे स्वयं आनंद आता था। "[1]

कविता लिखने की प्रेरणा उन्हे नाटक और रामलीला से प्राप्त हुई। वे नाटक और रामलीला की धुनों पर काव्य लिखने लगे। दिनकर जी ने स्वंय लिखा है -

जहाँ तक मुझे याद है कविता लिखने की प्रेरणा मुझमें नाटक और रामलीला देखकर उत्पन्न हुई। जब भी मैं नाटकवालों के मुख से कोई गीत सुनता, दूसरे दिन उसी धुन में एक नया गीत बना लेता।

1- चक्रवाल (भूमिका) दिनकर पृ0 24

ग ह भी प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के ही आस-पास की बात है जब मैं आठ-दस साल का रहा होऊँगा । तब सन् 1920 में कानपुर के प्रताप में एक भारतीय आत्मा की वह कविता छपी जिसे उन्होंने लोकमान्यतिलक की मृत्यु पर लिखा था। इस कविता का मुझ पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा ।[1]

इस कविता को इन्होंने कंठस्थ कर लिया उसके बादये हमेशा कविताएं पत्र पत्रिकाओं से ढूढ़कर पढ़ने लगे । हर पत्रिका मे ये राष्ट्रीय गीतों की ही खोज किया करते थे क्योंकि उस समय देश मे असहयोग आन्दोलन चल रहा था । छात्र सहोदर मे मासिक पत्रिका में प्रकाशित राष्ट्रीय कविताओं को ये कंठस्थ कर लिया करते थे ।

समकालीन काव्य ग्रन्थो ने भी इन्हे कुछ कम प्रेरित नहीं किया । इन्होंने भारत भारती जयद्रथ वध, शकुन्तला और किसान ग्रन्थों का अध्ययन किया । सबसे अधिक ये राम नरेश त्रिपाठी के पंथिक से प्रभावित हुए । इसे पढ़कर तो ये काव्य रस में आपाद मस्तक निमग्न हो गये [2]इन्होंने पथिक के अनुकरण पर वीरबाला और जयद्रथ बध के अनुकरण पर मेघनाथ बध नामक दो खण्ड काव्य लिखना आरम्भ किया । लेकिन दोनो अधूरे ही रह गये ।

कवि दिनकर ने स्वयं चक्रवाल की भूमिका में स्वीकार किया है-

1- चक्रवाल (भूमिका) दिनकर पृ0 25

2- पत्र-पत्रिकाओं से रस पाकर जब मैं समकालीन काव्य पुस्तकों की ओर बढ़ा तब मुझे भारत -भारती मिली जयद्रथ वध और शकुन्तला तथा किसान पढ़ने का अवसर मिला एवं जब श्री रामनरेश त्रिपाठी का पथिक निकाला मैं उस ग्रन्थ में आपाद मस्तक डूब गया पंथिक मुझे जितना पसन्द आया कोई ग्रन्थ नहीं रूचा था। चक्रवाल पृ0 25

अपनी तत्कालीन रुचि का स्मरण करने पर मुझे याद आता है कि छायावादी युग में भी मेरे सबसे प्रियकवि मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल सुभद्रा नवीन और रामनरेश त्रिपाठी ही थे। कालेज में मुझसे शैली और वर्ड सवर्थ दोनों के लिए उत्साह था और बंगला सीखकर तभी मैंने रवीन्द्र और नजरूल से भी परिचय बढ़ा लिया था। पीछे जब मैं नौकरी करने लगा तब मैंने उर्दू सीखी और इक्बाल तथा जोश का मैं भक्त बन गया। यह भी विचित्र बात है कि निराला जी की कविताओं से अधिक समीपता मेरी पंत जी की कविताओं से रही और प्रसाद से बढ़कर मैं मैथिलीशरण के पास रहा। इसके अतिरिक्त जो लोग मुझसे पहले या बाद में लिखते रहे, उनके बीच भी मेरी रुचिगत आत्मीयता श्री भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र बच्चन सुमन नेपाली और नागार्जुन से ही बैठती है।"[1]

3— सन् 1920 के पश्चात् का हिन्दी साहित्य गांधीवाद से विशिष्ट प्रभावित रहा है गांधीवाद का दर्शन वह प्राचीन दर्शन था जिसमे समस्त विश्व के उत्कर्ष की भावनाएं निहित थी मात्र उसका संस्करण नया था। बापू ही ऐसे प्रथम राजनीतिज्ञ थे जिन्होंने सत्य और अहिंसा के माध्यम से देश को स्वतन्त्र करने का बीड़ा उठाया। गरम लोहे से लोहा नही कटता यह बात गांधी जी समझ चुके थे। गांधी जी ने राजनीति के क्षेत्र में उदात्त आदर्श स्थापित किया। बापू का जब

1— चक्रवाल – दिनकर (भूमिका) पृ0 26-27

राजनीति में शिखर स्थान बन रहा था तब क्रान्ति के समर्थकों का भी पर्याप्त वर्चस्व था । देश में दोनो प्रकार की पद्धतियाँ स्वतन्त्रता के लिए अपनाई जा रही थी ।

दिनकर जी प्रारम्भ से ही क्रान्ति के समर्थक रहे और उन्होंने गांधी नीति को पराजितों की नीति ही माना है । गांधी जी ने जब एकाएक सत्याग्रह रोक दिया और देश में निराशा के घोर बादल छा गये तब कवि ने अपराजितों की पूजा, जैसे काव्य लिखकर गांधी नीति का विरोध किया महामानव की खोज काव्य में गांधीनीति और गांधी दर्शन का खुला खण्डन मिलता है। गांधीनीति का अंग्रेज जैसे दनुजों के बीच निभाना बड़ा कठिन लगता है ।

तृणाहार का सिंह भले ही फूले
परमोज्ज्वल देवत्व प्राप्ति के मद में
पर हिंस्रों के बीच भोगना होगा,
नख, रद के क्षय का अभिशाप उसे ही ।[1]

3- प्रारम्भ में कवि गांधीनीति को क्लीव धर्म ही समझता रहा । गांधी दर्शन उनकी दृष्टि में क्षमा और दया के सुघर बेल-बूटों से क्लीव धर्म को सजाने वाला धर्म था । उन्होंने धरती के उस अग्रदूत मानवेन्द्र की कल्पना की जिसके एक हाथ में अमृत कलश और धर्म की

1- हुंकर, दिनकर कल्पना की दिशा पृ0 66

ध्वजा हो, परन्तु जो झंझा सा बलवान् और काल सा क्रोधी भी हो, अचल के समान धीर होते हुए भी निर्झर सा प्रगतिशील हो ।"[1] कवि तो गांधी नहीं परशुराम को चाहता है ।

4- गांधी जी की अहिंसा नीति का विरोध दिनकर जी की पराजितों की पूजा कल्पना की दिशा हिमालय आदि कविताओं में देखा जा सकता है -

रे रोक युधिष्ठिर कौन यहाँ
जाने दो उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गाण्डीव गदा
लौटा दे अर्जुन भीम वीर "[2]

कवि दिनकर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय योगदान देते रहे । शिक्षा काल में ही 1924 में जबलपुर से निकलने वाले छात्र-सहोदर में अपनी रचनाएं लिखने लगे थे । कवि ने गांधी यतीन्द्रनाथ दास आदि पर हुए अत्याचारों के विरुद्ध अपने क्रोध और क्षोभ को व्यक्त करते हुए देश को अपनी राष्ट्रीयता का परिचय दिया । विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में -

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की वास्तविक शक्ति भारतीय जनता

1- युगचारण दिनकर - सावित्री सिन्हा पृ0 96-97

2- रेणुका दिनकर हिमालय पृ0 7

े जागरण में और महात्मा गांधी के नेतृत्व में थी । किन्तु नवयुवकों के भीतर जो जोश था, वह अहिंसा के घेरे में बन्द रहने के लिए तैयार नहीं था । उनका ध्यान सबसे अधिक रूसी क्रान्ति की ओर था देश में ऐसे नवयुवक असंख्य थे जो रूसी क्रान्ति से प्रेरणा लेकर भारत में सशस्त्र क्रान्ति करने का स्वप्न देखते थे । देश के अन्तर्मन में अहिंसा के विरूद्ध उग्र भावनाओं का ज्वार चल रहा था, उसे अत्यन्त सबल भाषा में अभिव्यक्त करने का काम दिनकर ने किया ।"[1]

दिनकर जी काव्य सृजन के आरम्भिक काल से ही क्रान्ति के उद्घोषक रहे हैं । दिनकर के हृदय में आविर्भूत क्रांति का विस्फोट उनकी राष्ट्रीय कविताओं में ओज और उत्तेजना के साथ अभिव्यक्त हो गया है। उनकी हुंकारमयी वाणी में ध्येय, पथ पर अग्रसर होने की प्रबल प्रेरणा विद्यमान है। उदाहरण के रूप में दिगंबरी शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ कितनी स्फूर्तिदायक एवं उत्साह वर्धिनी है जिनमें दुख दारिद्रय में तड़पने बिलखने वाली भगवान की संतान की पीड़ा से क्षुब्ध होकर उसकी सृष्टि के विध्वस के लिए सन्नद्ध कवि के दर्शन हमें होते है -

जरा तू बोल तो सारी धरा हम फूक देंगें
पड़ा जो पंथ में गिरि कर उसे दो टूक देंगें
कहीं कुछ पूछने बूढा विधाता आज आया

कहेंगे हाँ तुम्हारी सृष्टि को हमने मिटाया
जिलाकर पाप को टूटी धरा यदि जोड़ देंगे
बनेगा जिस तरह उस सृष्टि को हम फोड़ देंगे ।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में दिनकर ने एक उग्र प्रलयंकारी क्रान्ति पुरूष के रूप में अपना परिचय दिया है । हुंकार में कवि दिनकर ने उबलते हुए खून को स्वर दिया है और विद्रोह के गीत गाकर तूफान का आह्वान किया है। कवि अन्याय एवं अत्याचार के विरोध में सृष्टि को ही नही, स्वर्ग तक को जला देने के लिए एवं लूटने के लिए प्रस्तुत दिखाई देता है । हुंकार में कवि का ज्योतिर्धर रूप प्रकट हुआ है ।

स्वर्ग दहन " चाह एक भीख प्रणति, व्यक्ति, आदि रचनाओं में भी क्रांति के स्वर ही मुखरित हैं । कवि भीख भी मांगता है तो दहन को, जो अत्याचारी को जलासके । वह प्रणाम भी करता है तो देश के लिए शहीद होने वाले वीरो को ।

6- कवि दिनकर प्रारम्भ से ही कविता को क्रान्तिवाहिका के रूप में ग्रहण करता है कवि ऐसे स्वरो को गाना चाहता है जिससे सारी सृष्टि सिहर उठे । कवि देश में व्याप्त अत्याचार, आडंबर और अहंकार को दूर करने के लिए शंकर के तांडव नृत्य और तद्जन्य ध्वंस की कामना करता है -

1- चक्रवाल -दिगम्बरी- दिनकर पृ0 53

सुन शृंगी निर्घोष पुरातन

उठे सुप्तिद्वत में नव स्पंदन

विस्फारित लख काल नेत्र फिर

काँपे त्रस्त अतनु मन ही मन,

स्वर-स्वर भर संसार ध्वनित हो,

नगपति का कैलाश शिखर

नाचो हे नाचो नटवर ।

सन् 1947 में दिनकर जी सपरिवार वैद्यनाथ गये हुए थे । वहाँ उन्होंने देखा कि मंदिर का पुजारी शीत में कांपती हुयी ग्रामीण श्रद्धालु महिलाओं को मंदिर में प्रवेश नहीं दे रहा है पुजारी अपने धनवान यजमान को पूजा विधि पूर्ण किए बिना किसी अन्य व्यक्ति को प्रवेश नहीं देना चाहता था । क्रोधी दिनकर ईश्वर के मन्दिर में इस भेदभाव एवं सामन्तवादी रूप को देखकर आक्रोश करते है - हे भगवान दुनिया मुझे क्रान्तिकारी के रूप में जानती है , यदि मैं तुझ पराधीन की पूजा करूँ तो यह मेरे प्रशंसकों का अपमान है। इतना कहकर जल से भरा कलश महादेव के सिर पर दे मारा और बाहर आकर मार-पीट की तैयारी करने लगे ।[1]

1- रेणुका - रामधारीसिंह दिनकर पृ0 32

क्रान्ति को सशक्त अभिव्यंजना में दिनकर को आलोक धन्वा तांडव, दिगबंरो, विपथगा आदि रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है । इन रचनाओं में एक उग्र, क्रान्तिकारी के रूप में दिनकर जो हमारे सामने उपस्थित होते हैं ।

दिनकर जी शिवभक्त है परन्तु उनकी ईश्वर के प्रति जो श्रद्धा है वह अन्धी नहीं है । कहीं-कहीं परअन्याय अत्याचार कोदेखकर उनमें ईश्वरके प्रति विद्रोह करने की भावना भी जागृत हो जाती है । अभिषेक के लिए लाए हुए जल-घर को भगवान के सिर पर भी मार सकते है और जब वे बच्चों के दूध के लिए स्वर्ग लूटने के लिए जाते है तब छाती तानकर बूढ़े विधाता कोसावधान भी करते हैं ।"[1]

शिव बालक राम ने दिनकर का बड़ाही मनोरम किन्तु दृढ़ रूप व्यक्त किया है - " देदीप्यमान, प्रभा पुंज, जाज्वल्यमान ज्योतिपिण्ड का नाम दिनकर है । दिनकर भारत की राष्ट्रीय साधना का मूर्तिमान विग्रह है । समय की करवट और भूचाल और बवण्डर के हवाओं से भरी तरूणाई का नाम दिनकर है उसमें हमारी क्रान्तिकारी अपने यौवन के निखार पर है वह दहकते अंगारों पर निर्भय होकर चलना जानता है हथेली पर आग सुलगाकर सिर का हादित चढ़ाना जानता है उसकी वाणी में हमारा सुनहला अतीत फिर से जी उठा है ।"[2]

1- हुंकार दिनकर हाहाकार पृ0 23
2- दिनकर -शिव बालक राय पृ0 2

कवि की दृष्टि मे मानव में अपार शक्ति है विद्यमान है उसमे क्रान्ति का निर्दोष बन प्रलय मचा देने की शक्ति है उसकी हुकृति में दिशाओं को हिला देने वाली क्षमता है –

"सुनें क्या सिन्धु मैं गर्जन तुम्हारा ?
स्वयं युग धर्म की हुंकार हूँ मैं
कठिन निर्घोष हूँ भीषण अशनिका
प्रलय गाण्डीव की टंकार हूँ मैं "[1]

क्रान्ति की भावना ही मनुष्य को क्रान्ति धर्मी और अजेय बना देती है और उसकी भावना, कल्पना एवं चिन्ता सभी अग्निमय हो जाते हैं। क्रान्तिकारी कवि मानव को केवल मानव के रूप में देखना चाहता है–

धो डालो फूलो का पराग गालों से
आनंन पर से यह आनन ऊपर हटाओ तो,
कितने पानी मे हो, इसको जग भी देखे
तुम पल भर को केवल मनुष्य बन जाओ तो "[2]

समस्त दुर्बलताओं और विकृतियों के बावजूद कवि विजयी मनुष्य के चरित्र के प्रति अधिक आकृष्ट होता है। वह मानव के अन्दर छिपी सुसुप्त संवेदना को जगाने का प्रयास करता है, मनुष्य के विजयी और विद्रोही रूप के प्रतीक है भीष्म, कर्ण, परशुराम आदि। आज का युग लघु

1– हुंकार – दिनकर पृ0 86
2– नील कुसुम – दिनकर पृ0 59

मानव की प्रतिष्ठा का युग है । महामानव की कल्पना में कुछ समय तक कवि की कल्पना उलझी रही अवश्य लेकिन अनन्तर उसने लघु मानव की प्रतिष्ठा करके लघुत्व के महत्व का उद्घोष किया । भौतिकता से जो बड़े है उनके दृप्त फण पर लघु मानव का प्रतीक कृष्ण नृत्य कर रहा है । यह महाभारत के महामानव को ही नहीं छोड़ गोपाल कृष्ण के विजय का प्रतीक है। लघु मानव की विजय की घोषणा कवि ने इस प्रकार की है –

> "विषधारी । मत डोल कि मेरा आसन बहुत कड़ा है,
> कृष्ण आज लघुता में भी साँपों से बहुत बड़ा है,
> आया हूँ बाँसुरी बीच उद्धार लिए जन गण का
> फण पर तेरे खड़ा हुआ हूँ भार लिए त्रिभुवन का,
> बढ़ा बढ़ा नासिका रन्ध्र में मुक्ति-सूत्र पहनाऊँ
> तान तान फण व्याल कि तुझ पर मैं बाँसुरी बजाऊँ ।[1]

कवि दिनकर लोगों में स्वयं सोचने की रूढ़ि पैदा करना चाहते है और यही कवि की मौलिकता है नवीनता है आधुनिकता है ।

लोकहित की भावना को द्वन्द्वगीत में स्थान स्थान पर प्रश्रय मिला है । कवि लोकहित के मार्ग में आने वाले क्लेशों एवं दुखों का सानन्द स्वागत करता है । दिनकर ने स्वयं चक्रवाल की भूमिका में स्वीकार किया

1- नील कुसुम – दिनकर पृ0 12

है - " मै समय का पुत्र हूँ और मेरा सबसे बड़ा कार्य अपने युग के क्रोध और आक्रोश को अधीरता और बेचैनी को सबलता के साथ छन्दों में बाँधकर सबके सामने उपस्थित कर दूँ । मेरे पीछे और मेरे चारों ओर भारतीय मानवता खड़ी थी जो पराधीनता के पाश से छूटने को बेचैन थी ।

कवि दिनकर ऐसे अग्निपुत्र है, जिसने देश के सीने से धधकती हुई अग्नि को उसी तेजस्विता के साथ व्यक्त किया है जिस तेजस्विता के साथ ज्वालामुखी पर्वत में प्रज्वलित लावा उद्गीर्ण होता है । कवि के क्रान्ति गीतों मे रणरूद्ध भारत के मन में लावा भरा है ।

कवि दिनकर में निरन्तर क्रान्ति परक विचार धारा प्रवहमान हो रही है। उन्होंने अपने सशक्त क्रान्तिकारी उद्गारों से अपने युग का सही प्रतिनिधित्व किया है ।

कवि के वाणी में राणा और छत्रपति बुद्ध और महावीर अशोक और गाँधी फिर से जग गये है । चित्तौड़ की चिताओं की राख फिर धू-धू कर जलने लगती है - लिच्छवि और वैशाली के खण्डहर अपने वैभव की आभा से चमक उठते है, उदास गण्डकि में से विद्यापति के मधुर गान की रागिनी छिड़ जाती है वृन्दा धनश्याम का पता बताने लगती है और सरयू के तट पर खड़ी भिखारिनी अयोध्या में फिर पुरूषोत्तम राम के दर्शन होने लगते है । राजनीति में जो जयप्रकाश है साहित्य में वही

दिनकर है। बिहार की कोख धन्य हुई इन अग्रहतो को जन्म देकर ।"[1]

मजदूरों और कृषकों की समस्या का समाधान कवि साम्यवाद की स्थापना और क्रान्ति में ही ढूढता है क्रान्ति स्वयं दिगम्बरि और विपथगा बनकर कवि की राष्ट्रीयता में रूपायित हो जाती है। वह क्रान्ति कुमारी को जगाता है -

> उठ भूषण की भावतरंगिणी लेनिन के दिल की चिनगारी ।
> युग मर्दित यौवन की ज्वाला जाग-जागरी क्रान्ति कुमारी ।
> लाखों क्रौंच कराह रहे है, जाग आदि कवि की कल्याणी
> फूट-फूट तू कवि कंठो से, बन व्यापक निज युग की वाणी[2]

क्रान्ति के संदर्भ में कवि ने लाल क्रान्ति को भी अपने काव्यों में स्थान दिया है ।

क्रान्ति का विध्वसंक कवि जब देखता है कि देश के लिए क्रान्ति से ज्यादा श्रेयस्कर मार्ग गांधी का मार्ग ही है इसलिए वह गांधी को महामानव के रूप में देखना प्रारम्भ करता है। कलिंग विजय में उसने अशोक की अन्तिम परिणति का मार्ग अहिंसा में देखा और कुरूक्षेत्र में धर्म का प्रदीप जलाने का ही आदेश दिया ।

दिनकर के बापू के प्रति बदले हुए दृष्टिकोण को देखकर कुछ आलोचक उन पर अवसर के अनुसार स्वर बदल लेने का आक्षेप करते है ।

1- दिनकर - शिव बालक राय : पृ0 2
2- रेणुका - कस्मै देवाय -दिनकर पृ0 33

परन्तु कवि के भाव अवसर के कारण नहीं सच्ची आस्था के कारण ही बदले है । कवि को बापू के प्रति उनकी आस्था वैसी ही है जैसी किसी सिद्ध पुरूष के अलौकिक चमत्कार से अनास्थावादी नास्तिक को भी उसकी शक्ति में विश्वास करने के लिए बाध्य हो जाना पड़ता है ।[1] गांधी के प्रति उनके मन मे जो आक्रोश था वह द्रवित होकर करूणा और श्रद्धा में परिवर्तित हो जाता है । इस विराट के सामने उसके अंगारे भी लजा उठते है । वे गांधी के आध्यात्मिक और अलौकिक व्यक्तित्व की अर्चना करते हैं ।

गांधी की मृत्यु कवि के हृदय को डगमगा देती है । वह बार-बार बापू से लौट आने की प्रार्थना करता है । महाबलिदानऔर वज्रपात खण्डों में कवि अपना शोक रूदन में व्यक्त करता दिखाई देता है। यह बात सत्य है कि गांधीवाद में आस्था रखने वाले दिनकर का गांधी कांग्रेसियों का गांधी नही है वह तो कवि का वह गांधी है जिसकी पूजा कवि अंगारो से करता है ।

बापू काव्य में और अन्य कविताओं में कविगांधीवाद का गुणांकन अवश्य करता है पर गांधीवादी नही बन जाता । दिनकर की बंधन सुख सिपाही, सिपाहिनी राष्ट्रीय झंडे को भेंट, राष्ट्रवीणा कोमलता बंदी बाना मुक्ति उभरते कहाँ से आदि कविताओं में गांधी दर्शन की भावात्मक अभिव्यक्ति मिलती है।

1- युग चारण -दिनकर , सावित्री सिन्हा पृ0 142

1947 में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात देश गांधी की नीतियों का समर्थक बनकर विश्व को शांति और बन्धुत्व का संदेश दे रहा था उसी समय भूमि लिप्सा और साम्यवाद के मोहित रूप के विस्तार से अंध चीन ने देश पर एकाएक आक्रमण कर दिया । देश खलबला उठा । कवि की आस्था डगमगा उठी । कवि बोला कि आज परशुराम के अवतार की आवश्यकता है। परशुराम की प्रतीक्षा उनकी चीनी आक्रमण काल में लिखी गयी सबलतम कविता है। दिनकर की रेणुका कालीन हुंकार एक बार सुनाई दी है। गांधीवाद में उनकी आस्था थी वह टूटने लगी । उन्होंने एक बार पुनः देश के जन-जन में वह आग भर दी कि देश अपनी स्वतन्त्रता की अक्षुण्णता के लिए सभी भेद-भावों को भूलकर एकता के विराट सागर की तरह उमड़ पड़ा ।

दिनकर के काव्यों में व्याप्त राष्ट्रीयता की सरिता बड़ी प्रचंड प्रवाहिनी रही है । जिसके कल - काल ताण्डव में वर्तमान के कुरूपों को दूर करने के लिए ध्वंस के स्वर सुनाई देते हैं । स्वतन्त्रता के पश्चात् यह सरिता जैसे विशाल मैदान पाकर सौंदर्य के हिलोरे में झूल रही थी । चीनी आक्रमण के पश्चात् उसमें जैसे ज्वार आ गया हो ।

कवि दिनकर की मान्यता है कि अतीत के वीर चरित्रों की स्मृति,.वर्तमान को संजीवनी दे सकती है । इसलिए भारतमाता को परतन्त्रता से मुक्त देखने काइच्छुक कवि महावीरात्माओं का स्मरण

करता है । भारत को हिंसाचार एवं अस्पृश्यता की स्थिति से अवगत कराने के लिए उन्होंने अतीत के युगपुरुष बुद्धदेव का आह्वान किया है ताकि स्थिति में कुछ सुधार हो सके ।

दिनकर ने अपने आपको विशाल भारतीयजनता की अनुभूति को व्यक्त करने वाला स्वीकार किया है । दिनकर के काव्यों मे व्यक्त राष्ट्रीयता का स्वर वैसा ही उत्साही है जैसा राजनीति में इस युग के संवेदनशील नेता जवाहर ,सुभाष ,जयप्रकाश और नरेन्द्र देव की वाणी में व्यक्त हो रहा था- जिन्हे स्वराज्य प्राप्त किये बिना चैन नही था ।[1]

युग का यथार्थ चित्रांकन एवं क्रान्ति की आराधना इनके राष्ट्रीय चेतना की प्रमुख विशेषताएं है जो इन्हें सभी राष्ट्रीय कवियों से भिन्न कर देती है । रेणुका से हुंकार तक आते-आते क्रांति का यह स्वर स्थिरता एवं पूर्णता प्राप्त करता है। इस संबंध में रामवृक्ष बेनीपुरी का कथन है कि - हमारे क्रान्ति युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में इस समय दिनकर कर रहा है, क्रांतिवादी को जिन-जिन हृदयमंथनों से होकर गुजरना होता है, दिनकर की कविता उनकी सच्ची तस्वीर रखती है ।

1- युग चारण दिनकर ,सावित्री सिन्हा,पृ0 105
2- हुंकार की भूमिका (क्रान्ति का कवि) रामवृक्ष बेनीपुरी पृ0 2

वसुधैव कुटुम्बकम को भावना भी हमारी प्राचीन संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है जिसे दिनकर ने अपनी स्वातन्त्र्योत्तर कालीन कविताओं में चित्रित किया है। कवि ने इस सन्दर्भ में विशाल दृष्टिकोण का परिचय देते हुए राष्ट्रीयता को संकुचित पशु धर्म मानकर अन्तर्राष्ट्रीय भावना का समर्थन किया है। विषम और संघर्षमय परिस्थितियों में भी कवि ने भारतीय संस्कृति के गौरव को विस्मृत नहीं किया है। यही दिनकर की राष्ट्रीय भावना की उल्लेखनीय विशेषता है।

कवि दिनकर का विश्वास है कि जबतक व्यक्ति के सुधार का प्रश्न होता है मनोबल जयी होता है किन्तु जब समूह को पतित हो स्वेच्छाचारी हो अत्याचारी हो तब मनोबल का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे समूह को तलवार की ही भाषा समझ मे आती है। और वह उसी के द्वारा सुधारा जा सकता है। इसलिए दिनकर को उर्वशी की उपलब्धि के बाद परशुराम की प्रतीक्षा रही।[1]

दिनकर की राष्ट्रीयता अहिंसक क्रान्ति में नही रमती। उसके दीप्तियुक्त पौरूष और उग्र राष्ट्रीयता की झांकी हुंकार के स्वर्गदहन औरआलोक धन्वा नामक रचनाओ में मिलती है।

कवि दिनकर का विचार है कि स्वाधीनता की प्राप्ति ज्वलनशील क्रान्ति से ही सम्भव हो सकती है। उसे क्रान्तिकारी देवता

1- आधुनिक कवियों का जीवनदर्शन डॉ0 परशुराम शुक्ल बिरही
पृ0 151

में पूर्ण विश्वास है। हिंसा के द्वारा अहिंसा को रक्षा करने में वह संकोच का अनुभव नहो करता।[1]

कवि दिनकर ने भारत माँ को प्रतिष्ठा के रक्षार्थ आत्मार्पण के लिए सन्नद्ध अनेक वीरो के बलिदान को अपनी कविताओं में अमर बना दिया। कवि दिनकर का बलिदान व्यष्टिवादी न होकर समष्टिवादी है। उनके विचार से विश्व में करूणा-विनय को भावना का जन्म तभी संभव होता है जब व्यष्टि समष्टि के हित को बात सोचता है। उसके लिए कुछ त्याग को भावना रखता है -

झुक समष्टि के सम्मुख जिस दिन व्यष्टि दान देती है।
तभी व्यष्टि के भीतर करूणा- विनय जन्म लेती है।[2]

कवि ने एक ऐसे ही सैनिक कल्पना की है जो व्यष्टि को उतना अधिक महत्व नहो देता जितना समष्टि हित को सेवा धर्म निर्वाह वह अपने जीवन का परम कर्तव्य समझता है। व्यष्टि को अपने जीवन में समष्टि के आश्रित होना ही पड़ता है समष्टि के जीवन विकास में उसे जो सहायता मिलती है उससे उऋण वह उसकी सेवा करके ही हो सकता है।[3]

1- परशु राम की प्रतीक्षा -दिनकर पृ0 17
2- नीलकुसुम दिनकर पृ0 119
3- हुंकार, दिनकर पृ0 60

सामाजिक वेदना कवि हृदय में संवेदन बनती है तभी उसका काव्य मानवता को जन्म देता है । दिनकर ने दया विनय प्रेम एवं विवेक से मानवता की स्थापना को स्वीकार किया है । कुरुक्षेत्र मे अमानवीय तत्वों की समाप्ति और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठापन का सन्देश है ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि दुर्बल राष्ट्र की शोषित जनता को पुनः सामर्थ्यवान् बनाकर अस्मितापूर्ण जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करना ही दिनकर जी का लक्ष्य था । जिसकी सिद्धि के लिए वे जीवन पर्यन्त लड़ते रहे । व्यष्टि की भावना से ऊपर उठकर वे समष्टिगत कल्याण की भावना से वे जनजागरण के कार्य में अनवरत संलग्न रहे । दिनकर के काव्य में योद्धा की गंभीर गर्जना है अनल का ताप है सूर्य की प्रखरता है, दिनकर जी केवल रश्मि के ही कवि नहीं वरन् अनल के भी कवि हैं ।

उपसंहार

आधुनिक काल में राष्ट्रीयता का जो स्वरूप हमें दिखाई देता है, उसका बीज- वपन भारतेन्दु युग में ही हो गया था। भारत वन्दना, अतीत का गौरवगान, ब्रिटिश शासन की दमनकारी शोषणनीति का विरोध, आर्थिक दुर्दशा, स्वदेशी, आन्दोलन जातीय एकता आदि को अपनी रचनाओं का विषय बनाकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके समकालीन अनेक कवियों ने राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति की है। द्विवेदी युग में राष्ट्रीयता का स्वर और भी अधिक प्रखर हो उठा। इस युग के अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों ने पौराणिक कथाओं का आश्रय लेकर उसके माध्यम से तथा भाषिक एवं जातिगत एकता, स्वदेशी आन्दोलन जैसे विषयों पर स्फुट रचनाएं करके राष्ट्रीय जागृति का कार्य किया है।

कवि युग का प्रतिनिधि होता है। युगीन परिस्थितियां उसे प्रभावित एवं उद्वेलित करती है। समसामयिक घटनाओं का प्रभाव उसकी रचना प्रक्रिया परस्वभावतः अंकित होता है। लेकिन छायावादी कवि इसके विपरीत वास्तविकता से कोसो दूर थे। आत्मोन्मुखी होने के कारण वे देश की पराधीन दशा से उदासीन तथा जन सामान्य को

समस्याओं से विमुख होकर कोरी कल्पनाओं के लोक में विचरण कर रहे थे । परन्तु इस युग के श्री जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पं0 माखन लाल चतुर्वेदी , बालकृष्ण शर्मा नवीन जैसे कुछ कवियों ने अपनी चिन्तनधारा को समाजोन्मुखी बनाकर सामाजिक और धार्मिक विकृतियों के विरोध में क्रान्तिपरक राष्ट्रीय विचारों को अभिव्यक्ति की और भारत के अतीत गौरव, मातृभूमि वन्दना इत्यादि देशभक्ति विषयक कविताओं का सृजन करते हुए जन- जन के हृदय में स्वदेशाभिमान राष्ट्र प्रेम आदि भावों को जगाने का प्रशंसनीय कार्य किया ।

आधुनिक काल की राष्ट्रीयता को अधिकाधिक तीव्र एवं प्रखर बनाने का श्रेष्ठतम कार्य पं0 माखन लाल चतुर्वेदी एवं रामधारी सिंह दिनकर ने किया है ।

दिनकर का प्रादुर्भाव हिन्दी जगत में उस समय हुआ जब भारत ब्रिटिश शासन के दमन चक्र में आक्रान्त, त्राण की उत्कण्ठा मन में संजोए , मुक्ति की छटपटाहट में घुटनभरा जीवन जी रहा था । दिनकर का व्यक्तित्व ग्रामीण परिवेश में साधारण कृषक समाज के अभाव ग्रस्त वातावरण में विकसित हुआ है। उन पर अनेक राष्ट्र पुरूषों के व्यक्तित्व तथा पूर्ववर्ती कवियों के सशक्त कृतित्व का विशेष प्रभाव पड़ा है ।

दुर्बल राष्ट्र की शोषित जनता को पुन: सामर्थ्यवान बनाकर अस्मितापूर्ण जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करना ही दिनकर जी का लक्ष्य था जिसकी सिद्धि के लिए वे जीवन पर्यन्त प्रयत्नशील रहे। व्यष्टि की भावना से ऊपर उठकर समष्टिगत कल्याण की भावना से वे जन जागरण के कार्य में अनवरत संलग्न रहे। भारत के दलित गलित समाज का पुनरूत्थान सुधारवाद की मंथर गति से नहीं क्रान्ति की आंधी से ही सम्भव है - ऐसी इनकी मान्यता है। क्रान्ति के आमूल चूल परिवर्तन के प्रति आस्थावान रहे हैं। इन्होंने राष्ट्र के नव-जागरण नव संदीप्ति के हेतु भैरव हुंकार की आवश्यकता महसूस की है। देश की जर्जर अवस्था उसमें व्याप्त महान वैषम्य को देख इनका हृदय न केवल कड़क उठना चाहा है बल्कि एक ही अग्नि वाण से इस पाप-पुंज को भस्मीभूत कर देना चाहा है। राष्ट्र के पराधीनता रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए उन्होंने क्रान्ति का आह्वाहन किया है। क्रान्ति की अनुभूति के लिए जिस शौर्य और उत्साह की स्थिति की अपेक्षा होती है वह सब इन काव्य में विद्यमान है। तात्पर्य यह है कि क्रान्ति युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व इनकी कविता ने किया है। इनकी क्रान्तिकारी कविताओं का उद्देश्य है - पाप के पारावार को सावर्धनकरना। इनका सबसे बड़ा सम्बल है- आशा और निराशा के बीच स्थित इनका आत्म विश्वास। सच्चे कर्मयोगी में अन्धकार में भी कर्म की

ज्योति फैलाकर सबको जगा देने की क्षमता होती है । उपनिषदों की यह

ध्वनि- तमसो मा ज्योर्तिगमय, मृत्योमर्अमृत

गमय - इनके काव्य में स्पष्ट सुनाई पड़ती है ।

दिनकर जी धर्म से शैव है, हर हर बम का महोच्चार करते हैं । इनके शंकर जटा में नागिनी खोले, शृंगी फूंकते हुए तांडव नृत्य करते है । लेकिन इनके शंकर सगुण साकार नहीं बल्कि विप्लव और विनाश के विराट रूप है। ये भैरवी और भवानी की जय-जय कार करते हैं । इनकी भवानी लाल क्रान्ति की अधिष्ठात्री है वह जार और नीरो का रक्त पीकर छुम छनन करती हैं ।

दिनकर जी भारत की पद दलित पीड़ित एवं शोषित जनता के समर्थ प्रतिनिधि के रूप में हमारे सामने आते हैं । दिनकर जी ने राष्ट्रवन्दना, अतीत का गौरव-गान देश के नव-निर्माण के लिए क्रान्ति का आह्वान जातीय एकता, गांधीवाद , मानवता, युद्ध की समस्या, अन्तर्राष्ट्रीय विविध सामाजिक एवं राजनीतिक पहलुओं को अपनी रचनाओं में स्थान देकर उनके माध्यम से व्यापक एवं उदान्त राष्ट्रीयता का स्वर बुलन्द किया है ।

कुछ लोगों का यह आरोप है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद दिनकर जी की राष्ट्रीयता का स्वर सुप्त हो गया था इस बात से स्वतः निराधार सिद्ध हो जाता है कि दिल्ली की राजनीति में

निमग्न होने पर भी देश की समसामयिक परिस्थितियों के प्रति जागरूक रहकर दिनकर ने दिल्ली भारत का रेशमी नगर शीर्षक कविताओं में राष्ट्रवाद को मुखारित करते हुए अपनी अखंड राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है ।

दिनकर की रेणुका, हुंकार सामधेनी आदि काव्य कृतियों में सर्वत्र क्रांतिपरक भावनाओं का प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है । किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध की दारूण विनाश लीला एवं निष्फलता तथा गांधीनीति की अपेक्षाकृत सफलता से दिनकर स्वयं अपनी क्रान्ति परक भावनाओं के प्रति आशंकित हो गये । आरम्भ में दिनकर जी गांधी नीति के समर्थक नहीं थे, परन्तु बारदोली सत्याग्रह नोआखाली का हत्याकांड तथा नमक सत्याग्रह में गांधी जी की अप्रत्याशित सफलता देखकर गांधी जी के विचारों के प्रति वे आकर्षित हुए । वैसे वे गांधी जी को परमपूज्य महामानव के रूप में ही स्वीकार करते हैं । दिनकर जी की मान्यता थी कि युद्ध ही सारी समस्याओं के निराकरण का एक मात्र साधन है, परन्तु गांधीजी के प्रभाव में आने के पश्चात वे अपनी पूर्ववर्ती मान्यताओं पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य हो गये । वे शान्ति के समर्थक बने । परन्तु उनकी यह शान्ति, स्वीकृति उनकी मान्यताओं की आत्म पराजय नहीं है। शान्ति का वही रूप उन्हें स्वीकार्य है जिससे मानव समाज में समभाव एवं साहचर्य की स्थापना हो सके ।

वे भारतीय पूंजीवादी व्यवस्था तथा मध्यम वर्ग की जर्जरावस्था में परिवर्तन लाना चाहते थे ।

पंचशील के शान्ति पूर्ण सह अस्तित्व के सिद्धान्त पर चलने वाले भारत को सन् 1962 ई0 में अचानक चीनी आक्रमण का सामना करना पड़ा । इससे कवि दिनकर की राष्ट्रीय भावनाओं का सुप्त ज्वालामुखी फिर एक बार विस्फोट कर उठा, जिसकी परिणति परशुराम की प्रतीक्षा की रचना में हुई । जिसमें कवि दिनकर ने परशुराम जैसे रौद्र एवं फौलादी पुरुष की आवश्यकता पर बल दिया ।

दिनकर की रचनाओं में परिलक्षित होने वाली राष्ट्रीय भावना का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दिनकर की राष्ट्रीय कविताओं में योद्धा की गम्भीर गर्जना है, अनल का ताप है, सूर्य की प्रखरता है। दिनकर जी केवल रश्मि के ही कवि नहीं वरन् अनल के भी कवि है ।

दिनकर जी की समग्र काव्य कृतियों का अनुशीलन करने पर निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि दिनकर ऐसे दीपस्तम्भ है जिनसे दिग्भ्रमितों को दिशा निर्देश प्राप्त हुआ है। आज के सन्दर्भ में सदियों से पीड़ित प्रताड़ित अधम जातियों के अगुआ कर्ण के चरित्र की दिव्यता की पर्नस्थापना करके दिनकर जी ने सामाजिक कठोर वर्ण व्यवस्था को

समाप्ति पर बल दिया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव के नैतिक मूल्यों की गिरावट पर क्षोभ व्यक्त करके दिनकर जी ने जनमानस में सम्भाव पैदा करते हुए एक दिव्य राष्ट्रीय चेतना की ज्योति प्रज्जवलित की।

दिनकर जी ने अपनी काव्य कृतियों में श्रेष्ठ पौराणिक स्थलों एवं चरित्र नायकों को नव्य परिवेश में उद्‌भावना करके भारतीयों के मन में अपनी गौरवमयी प्राचीन संस्कृति के प्रति स्वाभिमान जागृत किया। दिनकर जी की राष्ट्रीय भावना उत्तरोत्तर विकसित होती गयी और उसकी परिणति अन्तर्राष्ट्रीयता में ही हो गयी। दिनकर जी युग कवि और युग चारण स्वीकार किये गये हैं। किन्तु दिनकर जी के काव्य के मूल्यांकन से यही ध्वनित होता है कि वे वर्तमान समस्याओं का निराकरण उज्जवल भविष्य के परिप्रेक्ष्य में करते हैं। अतः वे युग कवि औरयुग चारण ही नहीं अपितु भविष्य द्रष्टा चिन्तक कवि भी हैं।

दिनकर वह दिनकर है जो अपनी स्वर्णिम रश्मियों से सम्पूर्ण जगत को आलोकित करते रहेंगें। स्वयं कवि के शब्दों में -

मर्त्य मानव की विजय का तूर्य हूँ मैं
उर्वशी ! अपने समय का सूर्य हूँ मैं
अन्ध तम के भाल पर पावक जलाता हूँ
बादलों के सीस पर स्यन्दन चलाता हूँ।

1- उर्वशी- दिनकर तृतीयांक पृ0 41

हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना का जयघोष करने वाले कवियों में पं० माखन लाल चतुर्वेदी का नाम विशेष प्रसिद्ध है । इन्होंने द्विवेदी युग से कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु उस युग में इनको विशेष ख्याति नहीं हुई । वास्तव में सन् 1921-22 के असहयोग आन्दोलन के समय ही इनकी राष्ट्रीय भावना को मुखरित होने का सुयोग मिला । हिन्दी में राष्ट्रीय भावना का आन्दोलनों की पृष्ठ-भूमि में यदि किसी कवि ने चित्रण किया है तो चतुर्वेदी जी ही उनमें सर्वप्रथम कहे जा सकते हैं । आश्चर्य यह है कि इनके राष्ट्र-प्रेम की भावना विद्रोह की सीमा तक पहुँची किन्तु उन्होंने अपने हृदय की सरस एवं कोमल भावनाओं को उस विद्रोह में विलीन नहीं होने दिया ।

चतुर्वेदी जी का जीवन राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रभाषा के लिए एक समर्पित जीवन था जिसमें स्वार्थ या स्व लाभ को स्थान नहीं था । आत्मनिरपेक्ष भाव से राष्ट्र हित और राष्ट्र कल्याण के लिए जीवित रहना ही इन्होंने अपना लक्ष्य बना लिया था ।

राष्ट्रीयता का आधार बलिदान और समर्पण है। चतुर्वेदी जी के काव्य में स्थान-स्थान पर बलिदान के महत्व को स्वीकारने की प्रवृत्ति है। स्वतन्त्रता संग्राम के लिए जो एक सैनिक अनुशासन की आवश्यकताहोती है उस वातावरण के निर्माण में चतुर्वेदी सतत प्रयत्नशील रहे है ।

स्वाधीनता और स्वतन्त्रता चतुर्वेदी जी के जीवन का प्रधान उद्देश्य रहा है । व्यक्ति जागरण तथा स्वातन्त्र्य बोध के लिए कवि की लेखनी सतत प्रयत्नशील रही है और उसके लिए अभिव्यक्ति के माध्यम से भले फर्क आया हो पर उसकी केन्द्रीय ध्वनि सम रही है । कृष्ण के माध्यम से उन्होंने स्वतन्त्रता के लिए भारतीयों को जागृत किया है । कृष्ण को उन्होंने राष्ट्रनायक माना है। तथा सम्पूर्ण राष्ट्र को वृन्दावन ही माना है ।

माखन लाल जी ने जीवन को कृष्ण के कला को राधिका माना है। अतः उनकी कला भी विरूद्ध धर्मों को सहज रूप में स्वीकार कर लेती है । उन्हें भावना और विचार, विचार और जीवन साँस और सुख तथा बहिर्दर्शन तथा अन्तर्मुख अन्वेषण में विद्रोह ही नहीं दीख पड़ता है। कला राधिका इन्हें परस्पर जोड़ने वाली कड़ी बन जाती है । कवि ने सौन्दर्य के प्रदेश में जीवन और मरण को बहुत पास से देखा है । यही सम्यक दृष्टि है यही जीवन की सम्पूर्णता का साक्षात्कार है। वह ी काली मर्दन का आधार देखना चाहता है । मरण की भयंकरता का सौंदर्य का नर्तन ही काली मर्दन है । इस विरूद्ध धर्माश्रयी सर्वरूप दैवत पर कवि ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया है और वह अपने सहकर्मियों से भी इसी समर्पण की माँग करता है ।

कवि चतुर्वेदी जी ने सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लिया था और उसे भारत की स्वतन्त्रता में एशिया की मुक्ति रक्षण और नेतृत्व की सम्भावना दृष्टिगोचर होती थी । वह भारतीय गणतन्त्र रूपी कृष्ण से आत्म समर्पण के बल पर नवसृजन और त्राण की साधना की अपेक्षा करता है जो कि कुपित फणों के क्षुधित फण पर नृत्य करने के समान कठिन है।

माखन लाल जी का एशिया प्रेम भी सर्वातिशायनी वैष्णव भावना से अनुप्राणित है और वैष्णवी भंगिमा में ही व्यक्त है ।

इस संघर्षशील विश्व में चतुर्वेदी जी ने प्रेम के ज्वर के उफान की आराधना की है । वे अमित निर्माण और शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व के समर्थक है किन्तु चुनौती के समक्ष उत्तर और बलिदान के लिए राष्ट्र को सदैव कटिबद्ध रहने का सन्देश देते हैं ।

कवि का सम्पूर्ण जीवन वंशीधर की खोज में समर्पित है । भारत की स्वतन्त्रता का संघर्ष भी उसकी इस खोज का ही अंग था । उनके समर्पण में कहीं भी दैन्य आत्मग्लानि, हीनता या अश्रु विगलित याचना नहीं है। उनके वैष्णवी आत्म समर्पण में उपनिषदों के घोर का ओज सहज ही मिल गया है ।

आत्म समर्पण की दृष्टि से कबीर, सूर, मीरा, आदि से प्रेरणा प्राप्त करते हुए श्री माखन लाल जी ने परम्परागत वैष्णव प्रेम को नवीन आयाम दिया है। उनकी लोकबद्धता ने वैष्णव भावना को नयी दिशा प्रदान की है। अपनी इस विलक्षणता और मौलिकता के कारण वे कबीर, सूर मीरा इत्यादि से अलग है। चतुर्वेदी जी ने लोकबद्धता को लोकमंगल का रूप प्रदान किया।

इस प्रकार उनकी वैष्णव भावना राष्ट्र की गति और मति से जुड़ गयी। उनके आराध्य कृष्ण का मिथक राष्ट्रभावना का मिथक बन गया।

गांधी में भी उन्होंने श्री कृष्ण का बिन्दु देखा। अतः कृष्ण उनकी रचनाओं में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रेरक पुरुषोत्तम बन गये।

राष्ट्रीय संस्कृति को भी उन्होंने वाणी दी कृष्ण, राधा, वृन्दावन वेणु सभी आधुनिक प्रतीक बनकर उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति के नूतन अध्याय बन गये।

राष्ट्रीय आन्दोलनों में कारागृह कृष्ण गृह बन गया। चतुर्वेदी जी भारतीय भाषाओं में गाँधी पर सबसे पहली कविता लिखी नि:शस्त्र सेनानी भारतीय पराधीनता में वे द्रौपदी के चीर हरण को

कल्पना करते हैं । कारागृह में कृष्ण का जन्म स्वाधीनता संग्राम के लिए प्रेरणा स्रोत बन जाता है ।

स्वाधीनता के लिए, अपमानित देश के लिए साहस का शैल उठाने की प्रार्थना वे वनमाली कृष्ण से करते हैं । अतः वनमाली और गिरधारी नाम उनको विशेष प्रिय है । कृष्ण अनासक्ति दर्शन के प्रतिपादक के रूप वनमाली कहलाते हैं ।

इस प्रकार एक पुराना मिथक यानि कि कृष्ण मिथक जातीय संघर्ष के स्रोत, विद्रोह के प्रतीक के रूप में रूपान्तरित हो जाता है । भारत माता की समग्र कल्पना उन्होंने इसी कृष्ण मिथक की छाया में गढ़ी । हिमकिरीटनी के रूप में उन्होंने भारत माता की परिकल्पना की जो उनकी सर्वथा मौलिक एवं काव्यात्मक परिकल्पना है। हिमकिरीटनी संग्रह राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें सिपाही कविता में देश के सैनिकों को रामराज्य स्थापित करने के लिए त्रेतायुग खींच लाने का आग्रह किया गया है ।

चतुर्वेदी जी कैदी और कोकिला कविता विशेष देशभक्ति पूर्ण है। चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय चेतना की दो प्रमुख विशेषताएं है जो उन्हें सभी राष्ट्रीय कवियों से भिन्न कर देती हैं ।

1- राष्ट्रवादी क्रान्ति की उकसाहट जनवेदना और देश शत्रु पर क्रोध के साथ माधुर्य की अनुभूतियाँ ।

2– इनकी कविता की भाषा भी छायावादियों की भाषा से एकदम भिन्न है और विशिष्ट है। इनकी भाषा में राष्ट्रवादी क्रान्ति के लावे की दहक के साथ-साथ कविता में कोमलता और माधुर्य का संचार भी है । उनकी वाणी में जनाकांक्षायें बोलती है ।

इन दो के अतिरिक्त राष्ट्रीयता के साथ वैष्णव भावना का एकात्म भी उनकी मौलिकता है। वे पूर्णतः समर्पित किन्तु स्वाभिमानी वैष्णव गायक है । उनकी वैष्णव भावना की मौलिकता ने उन्हें राष्ट्र प्रेम एशिया की प्रीति तथा विश्व प्रेम प्रदान किया है। उनकी यह मौलिकता अन्य किसी राष्ट्रीय कविता में नही मिलती ।

बलिदानवाद उनकी राष्ट्रीय चेतना का विशिष्ट तत्व है । प्रेम प्रकृति समाज, राष्ट्रीयता वैष्णव भावना और रहस्य जिज्ञासा आदि से संयुक्त बलिदानवाद उनके जीवन दर्शन को आंतरिक संगति देता है ।

अतः उनकी काव्यकृतियों का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट रूपसे कहा जा सकता है कि वास्तविक बलिदान इष्ट प्राप्ति के लिए किया गया आत्मोत्सर्ग है। अनिष्ट निवारण के लिए की गयी हिंसा बलिदान नहीं है बल्कि बलिदान आत्मोपलब्धि है। इसके लिए विसर्जनशील मनोवृत्ति अनिवार्य है और भावातिरेक बलिदान का आधार है जो चतुर्वेदी जी की काव्य कृतियों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।

चतुर्वेदी जी की रचनाओं में 'नाश की त्योहार' और मरण की ज्वार कहा गया है। चतुर्वेदी जी को बलिपथ ही सुन्दर जान पड़ता है। स्वतन्त्रता की दिशा में कवि पूरे विश्वास के साथ अग्रसर होता है। चतुर्वेदी जी इस प्रवृत्ति के एक मात्रकवि है। त्याग का सर्वोच्च रूप बलिदान कहलाता है अतएव इसका मूल स्रोत है अध्यात्मवाद की साधन प्रक्रिया है पुष्प की अभिलाषा शीर्षक कविता में यही उत्कट बलिदान वाद व्यक्त है और यह चतुर्वेदी जी की रचना का मेरुदण्ड है। बलिपंथी से हिमतरंगिणी माता आदि संग्रह इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

परिशिष्ट -पुस्तकों की सूची

आधार ग्रन्थ - दिनकर विरचित काव्य कृतियाँ

§क§ प्रबन्ध काव्य - § मौलिक §

§1§	प्रणभंग	1929
§2§	कुरुक्षेत्र	1947
§3§	रश्मिरथी	1952
§4§	उर्वशी § गीति नाट्य §	1961

§ख§ मुक्तक रचनाएं

§1§	रेणुका - वर्ष प्रकाशन	1935
§2§	हुंकार	1938
§3§	रसवन्ती	1939
§4§	द्वन्द्वगीत	1940
§5§	सामधेनी	1947
§6§	बापू	1947
§7§	इतिहास के आँसू	1951
§8§	धूप और धुँआ	1951
§9§	नीम के पत्ते	1954
§10§	दिल्ली	1954
§11§	नील कुसुम	1954
§12§	नए सुभाषित	1957

§13§ परशुराम की प्रतीक्षा 1963

§14§ मुक्ति तिलक 1964

§15§ कोयला और कवित्व 1964

§16§ चक्रवाल

§ग§ मुक्तक रचनाएं §अनुदित§

§1§ सीपी और शंख 1957

§2§ आत्मा की आँखे 1957

§3§ हारे को हरिनाम 1970

§घ§ बालोपयोगी साहित्य

§1§ धूप और छाँह 1947

§2§ मिर्च का मजा 1951

§3§ सूरज का ब्याह 1955

§4§ चित्तौर का साका 1955

श्री माखन लाल चतुर्वेदी की कृतियाँ

§क§ काव्य साहित्य

§1§ हिमकिरीटिनी 1943

§2§ हिमतरंगिनी 1949

§3§ माता 1951

§4§ युगचरण 1956

§5§ समर्पण 1956

§6§ वेणु लो गूँजे धरा 1960

§7§ आज के लोक प्रिय हिन्दी कवि, माखन लाल चतुर्वेदी §1960§

§8§ आधुनिक कवि 1960

§9§ मरण ज्वार 1963

§10§ बीजुरी काजल आँज रही 1964

नाटक साहित्य

§1§ कृष्णार्जुन युद्ध 1968

कहानी साहित्य -

कला का अनुवाद 1954

गद्य साहित्य -

§1§ साहित्य देवता 1943

§2§ अमीर इरादे : गरीब इरादे 1960

§3§ समय के पाँव 1962

§4§ चिन्तक की लाचारी 1965

§5§ धूम्रवलय 1957

§6§ पाँव- पाँव

§7§ रंगों की बोली

सन्दर्भ ग्रन्थ

1- अथर्ववेद

2- आह्निक सूत्रावलि

3- ऐतरेय ब्राह्मण

4- यजुर्वेद

5- ऋग्वेद

6- वाचस्पत्यम - छठो भाग

7- विष्णु पुराण

8- बाल्मीकि रामायण

9- शतपथ ब्राह्मण

10- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ

हिन्दी

1- अध्ययन और आलोचना डॉ० रामरतन भटनागर

2- अकबर - राहुल सांस्कृत्यायन

3- आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना- डॉ० सुधाकर शंकर कलवड़े

4- आधुनिक हिन्दी निबन्ध - डॉ० राधाकृष्णन्

5- आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डॉ० नगेन्द्र

6- आधुनिक भारतीय संस्कृति का इतिहास डॉ० आर०पी० सिंह

7- आल्हाखंड आठवाँ संस्करण नवल किशोर प्रेस लखनऊ

8- आधुनिक काव्य धारा -डॉ० केशरी नारायण शुक्ल

9- आकाश गंगा - डा० रामकुमार वर्मा

10- आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि -रामधारी सिंह दिनकर

11- आधुनिक हिन्दी कविता में युगान्तर -डॉ० सुधीन्द्र

12- आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य- रामेश्वर लाल खण्डेलवाल

13- आधुनिक कवियों का जीवन दर्शन- डॉ० परशुराम शुक्ल विरही

14- आधुनिक प्रगीति काव्य- डॉ० गणेश खरे

15- आधुनिक हिन्दी काव्य - डॉ० राजेन्द्र मिश्र

16- आधुनिक कवि माखन लाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व डॉ० भगवान दास तिवारी

17- इतिहास क्या ? - ई० एच० कार

18- एक भारतीय आत्मा के राष्ट्रीय स्वर-डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री

19- कबीर ग्रन्थावली -सं० श्यामसुन्दरदास चौदहवाँ संस्करण

20- कबीर वचनावली - पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय-द्वितीय संस्करण

21- कविता कौमुदी - पं० रामनरेश त्रिपाठी

22- कुँकुम - बालकृष्ण शर्मा नवीन

23- कामायनी - जय शंकर प्रसाद

24- कवि की दृष्टि से सृष्टि शीर्षक लेख - दिनकर

25- कीर्तिलता-(विद्यापति) बाबूराम सक्सेना

26- गीतिका - निराला

27- गुरुकुल उपोद्घात - मैथिली शरण गुप्त

28- चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद

29- चेतन स्वदेशगीत - मैथिलीशरण गुप्त

30- जातीयता - अरविन्द घोष

31- जवाहर लाल नेहरू वाङ्‌मय - जवाहर लाल नेहरू

32- जायसी ग्रन्थावली - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

33- दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना- सुनीति

34- दिनकर की सृष्टि और दृष्टि - डा० छोटे लाल दीक्षित

35- दादू दयाल की बानी - प्रो० इलाहाबाद प्र० सं०

36- द्विवेदी काव्य माला -

37- दिनकर और सृष्टि और दृष्टि- डॉ० गोपाल कृष्ण कौल

38- दिनकर और उनकी साहित्य साधना-डॉ० अवधनारायण तिवारी

39- दिनकर की सृष्टि और दृष्टि- हरप्रसाद

40- दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि दिनकर - प्रे० कामेश्वर शर्मा

41- दिनकर का रचना संसार - डॉ० छोटे लाल दीक्षित

42- दिनकर के काव्य - लालधर त्रिपाठी

43- दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना- डॉ० जितराम पाठक

44- दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना- डॉ० सीता राम गोस्वामी

45- दिनकर काव्य कला और दर्शन - डॉ० प्रतिमा जैन

46- दिनकर - मन्मथनाथ गुप्त

47- दिनकर और उनकी काव्य कला- शेखर चन्द्र जैन

48- निराला और नव जागरण - डॉ0 राम रतन भटनागर

49- नेहरू दिव्य पुरूष - आनन्द शंकर जैन

50- नाम देव गाथा - प्र0 सं0 शासकीय व मुद्रण लेखन सामग्री-
बम्बई सन् 1971

51- पृथ्वीराज रासो - हजारी प्रसाद द्विवेदी सं0 सं0

52- पृथ्वीराज रासो- पद्मावती समय-पं0 विश्वनाथ प्रसाद गौण

53- प्रेमधन सर्वस्व - प्रेमधन

54- पथिक - रामनरेश त्रिपाठी

55- परिमल - निराला

56- पिघलते पत्थर - रांगेय राघव

57- बाल मुकुन्द निबन्धावली - प्रथम भाग

58- भारतेन्दु ग्रन्थावली - द्वितीय भाग

59- भारत दुर्दशा - डॉ0 कृष्णदेव शर्मा

60- भारतीय राष्ट्रीयता के अग्रदूत -डॉ0 कर्ण सिंह

61- भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि -ए0आर0 देसाई

62- भारत की राष्ट्रीय संस्कृति -आबिद हुसैनी

63- भारत वंदना- प्रेमधन सर्वस्व

64- भारतगीत -श्रीधर पाठक- द्वितीय संस्करण

65- भारत-भारती -मैथिलीशरण गुप्त

66- भारतेन्दु ग्रन्थावली - सम्पा0 ब्रजरत्नदास

67- माखन लाल चतुर्वेदी :व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सं0 प्रेमनारायण टन्डन

68- माखन लाल चतुर्वेदी -श्रीगोविन्द नारायण हार्डिकर

69- माखन लाल चतुर्वेदी - श्री माधव राव सप्रे

70- माखन लाल चतुर्वेदी - एक परिचय - श्री हरिकृष्ण प्रेमी

71- माखन लाल चतुर्वेदी -व्यक्तित्व एवं कृतित्व- डॉ0 भगवान दास तिवारी

72- माखन लाल चतुर्वेदी- ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ

73- माखन लाल चतुर्वेदी- डॉ0 रामाधार शर्मा

74- माखन लाल चतुर्वेदी - लक्ष्मण सिंह चौहान

75- माखन लाल चतुर्वेदी- सं0 पदुम लाल पुन्नालाल बख्शी

76- माखन लाल चतुर्वेदी :एक अध्ययन और आलोचन श्री पदुमलाल पुन्ना लाल बख्शी

77- माखन लाल चतुर्वेदी -व्यक्तित्व एवं कृतित्व -डॉ0 कृष्ण देव शर्मा

78- मातृ -वियोग पर - माखन लाल चतुर्वेदी

79- मंगल धर - मैथिली शरण गुप्त

80- महा कवि अकबर - रघुराज किशोर

81- मेवाड़ के प्रति - सोहन लाल

82- मर्म स्पर्शी - हरिऔध

83- राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध

डॉ० नन्ददुलारे वाजपेयी

84- राष्ट्रीयता - गुलाबराय

85- राष्ट्र भाषा एवं राष्ट्रीय एकता - दिनकर

86- राष्ट्रीय झंडे की भेंट - कवीन्द्र वेनी प्रसाद वाजपेयी मंजुल

87- राष्ट्रभारती - राष्ट्रीय शिक्षा- ग्रन्थमाला प्र० संस्करण

88- राष्ट्रीय वीणा- प्रथम भाग बद्रीनाथ भट्ट

89- रामधारी सिंह दिनकर -मन्मथनाथ गुप्त

90- राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना

डॉ० अवधनारायण तिवारी

91- रेखा- लेखा - डॉ० रामेश्वर शुक्ल अंचल

92- लोकोक्ति शतक - पं० प्रताप नारायण मिश्र

93- विश्वास बढ़ता ही गया- डॉ० शिव मंगल सिंह सुमन

94- व्यक्ति और वाड़्मय -डॉ० प्रभाकर माचवे

95- वीरकाव्य- डॉ० उदय नारायण तिवारी

96- शिवा-बावनी- भूषण छन्द

97- शुद्धकविता कीखोज - दिनकर

98- संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो -सं० हजारी प्रसाद द्विवेदी

99- सुजान चरित्र - सं० राधा कृष्ण दास

100- स्वदेशी कुण्डल- रायदेवी प्रसाद पूर्ण

101- स्वर्ण धूलि - सुमित्रानन्दन पन्त

102- स्कन्द गुप्त - जयशंकर प्रसाद

103- स्वतन्त्र I का जन्म स्थान- रायकृष्ण दास

104- सकित -अष्टम् सर्ग- मैथिलीशरण गुप्त

105- हमारी राष्ट्रीयता- गुलाब राय

106- हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद -राधा कुमुद मुकर्जी

107- हिन्दी कविता में युगान्तर- डॉ० सुधीन्द्र

1085 हिन्दी कविता में राष्ट्रीयभावना -डॉ० जितराम पाठक

109- हिन्दी के आधुनिक कवि -डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना

110- हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण - सं० पी०एल० वैद्य

111- हिन्दी साहित्य का आदिकाल -आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

112- हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय भावना का विकास- डॉ० के०के० शर्मा

113- हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना- डॉ० विद्यानाथ गुप्त

114- हिन्दी साहित्य का इतिहास -डॉ० नगेन्द्र

115- हिन्दी साहित्य के अस्सीवर्ष - डॉ० शिवदान सिंह चौहान

116- हिन्दी गद्य काव्य - डॉ० पद्म सिंह शर्मा कमलेश

कोश - ग्रन्थ

1- मानक हिन्दी कोश श्रीरामचन्द्र वर्मा

2- संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी- मोनियर विलियम्स

3- संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी भाग- 2 पी0के0 गौड़ तथा सी0 जे0 कार्वे

4- मानक हिन्दी कोश- भाग - पाँच श्रीराम चन्द्र वर्मा

5- हिन्दी साहित्य कोश(भाग दो) सम्पादक डा0 धीरेन्द्र वर्मा

6- हिन्दी साहित्य कोश भाग दो -डा0 शिव प्रसाद सिंह

पत्र- पत्रिकायें

1- कर्मवीर- सम्पादक - नवभारत टाइम्स (कृष्णदेव शर्मा)

2- ज्योत्स्ना -स्मृति अंक - दिनकर प्रो0 विजयेन्द्र स्नातक

3- धर्मयुग

4- आलोचन- काव्यालोचना विशेषांक - जनवरी1949 रामधारी सिंह दिनकर

मौखिक वार्तालाप एवं लिखित पत्र

1- माखन लाल चतुर्वेदी डा0 कृष्णदेव शर्मा का मौखिक वार्तालाप दिनांक 23-4-63

2- वृन्दावन लाल वर्मा- डॉ० कृष्णदेव शर्मा को लिखित पत्र

दिनांक 29-12-63

3- सुश्री विद्यावती कोकिल का डॉ० कृष्णदेव शर्मा को लिखित पत्र

दिनांक 16-2-64

4- श्री नारायण अग्निहोत्री का डॉ० कृष्णदेव शर्मा को लिखित पत्र

दिनांक 2-1-63

5- माखन लाल चतुर्वेदी से डॉ० कृष्णदेव शर्मा का मौखिक वार्तालाप

दिनांक 3-5-64

6- माखन लाल चतुर्वेदी से डॉ० कृष्णदेव शर्मा का मौखिक वार्तालाप

दिनांक 4-5-64

7- माखन लाल चतुर्वेदी से डॉ० कृष्णदेव शर्मा का मौखिक वार्तालाप

दिनांक 3-5-64